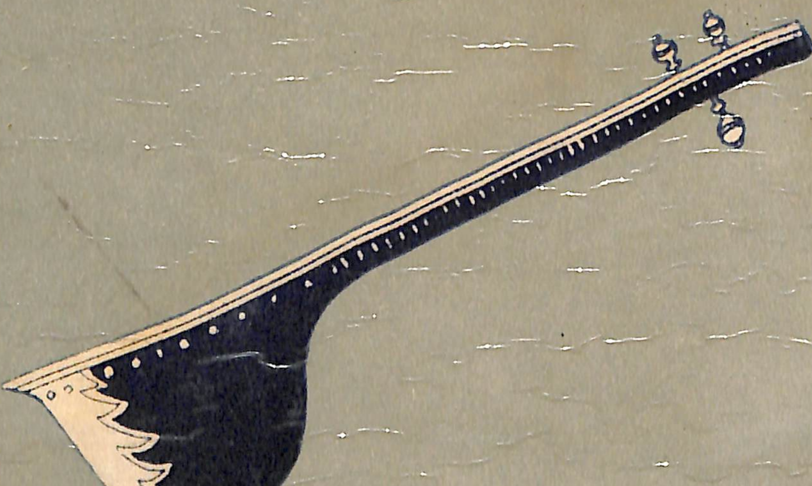
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व



डॉ॰ शिवबालक द्विवेदी

महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनितत्त्व

महाकवि भवभूति
के
नाटकों में ध्वनितत्त्व

लेखक

डॉ० शिवबालक द्विवेदी

एम० ए० (गोल्डमेडलिष्ट),

शास्त्री, पी-एच० डी०

संस्कृतविभाग

डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

आराधना ब्रदर्स

१५२ सी–गोविन्दनगर, कानपुर–६

ग्रन्थ : महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनितत्त्व
लेखक : डॉ० शिवबालक द्विवेदी
मुद्रक व प्रकाशक : आराधना ब्रदर्स १२४/१५२ सी ब्लाक
गोविन्दनगर कानपुर–२०८००६
संस्करण : १० मार्च, १९९० ई०
मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र

MAHAKAVI BHAVBHOOTI KE NATAKON MEN
DHVANITATTVA

Published By–Aradhana Brothers, Kanpur–6
By : **Dr. SHIV BALAK DWIVEDI**
Price– **150.00**

परमपूज्य पितामह

स्व० पं० रामेश्वरदयालु द्विवेदी

को

सादर

प्ररोचना

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ।।

आचार्य आनन्दवर्धन को ध्वनिप्रस्थान का प्रतिष्ठापक माना गया है। उन्होंने जिस ध्वनितत्त्व के विषय में प्रकाश डाला है उसका भावांकन उससे पूर्व ही हो चुका था, जिसका संकेत वे स्वयं करते हैं। –"बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः" (ध्वन्यालोक १।१)।

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को वस्तु, अलंकार और रस मुख्य रूप से इन तीन रूपों में देखा है और संयोग से ये तीनों ही तत्त्व पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों में चर्चित हैं। प्रमुख अन्तर प्रतिपादन शैली का है। यद्यपि ध्वनितत्त्व से सम्बन्धित विषयों का चिन्तन ध्वन्यालोक की रचना से पूर्व हो चुका था परन्तु आनन्दवर्धन से पूर्ववर्ती आचार्यों ने न तो ध्वनि शब्द का प्रयोग ही किया और न ही उस पर स्वतन्त्र विवेचनपरक कोई ग्रन्थ ही लिखा। आचार्य आनन्दवर्धन ने पुरातन आलंकारिकों, भामह, उद्भट, दण्डी, वामन आदि स्रोतों से प्रवाहित काव्यशास्त्र परम्परा का मन्थन कर ध्वनि रूप नवीन नवनीत प्रस्तुत किया जो ध्वनिप्रस्थान के नाम से प्रतिष्ठित हुआ। इस ध्वनितत्त्व को उन्होंने काव्य की आत्मा बतलाया है–

"काव्यस्यात्मा ध्वनिः" (ध्वन्यालोक १।१)

इस ध्वनि की प्रेरणा आचार्य आनन्दवर्धन को वैयाकरणों के स्फोटवाद से मिली है। अतएव वे "स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः" में "सूरिभिः" पद से वैयाकरणों का संकेत करते हैं। आचार्य मम्मट ने भी इसका समर्थन किया है।

ध्वनि के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं–"जहाँ अर्थ अपने स्वरूप को तथा शब्द अपने अभिधेयार्थ को गौण (अप्रधान) करके उस प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करते हैं, उस काव्यविशेष को बुधजन ध्वनि कहते हैं–

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥
(ध्वन्यालोक १।१३)

उन्होंने काव्य के अर्थतत्त्व को दो भागों में विभक्त किया है–(१) वाच्य और (२) प्रतीयमान–

योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः ।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ॥
(ध्वन्यालोक १।२)

इन दोनों अर्थों में प्रतीयमान अर्थ अत्यधिक व्यापी है । प्रतीयमान अर्थ की मीमांसा करते हुये ध्वनिकार कहते हैं कि प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो कि रमणियों के प्रसिद्ध मुख, नेत्र, श्रोत्र, ओष्ठ आदि अवयवों से भिन्न उनके लावण्य के समान महाकवियों की सूक्तियों में सुशोभित होता है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव
वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं
विभाति लावण्यमिवांगनासु ॥ १।४

यहाँ ध्वनिकार उस अर्थ की ओर संकेत करते हैं जो कविप्रतिभाजन्य सहृदयसंवेद्य महाकवियों की वाणी में वाच्याश्रित अलंकार आदि से भिन्न ललनाओं में अनेक अवयवों के अतिरिक्त लावण्य के सदृश कुछ अन्य विलक्षण वस्तु है । यह प्रतीयमान अर्थ उनकी अपनी सूझ है क्योंकि प्राचीन आचार्यों ने इसकी चर्चा नहीं की है । इस प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति शब्दानुशासन तथा अर्थानुशासन से सम्भव नहीं है । इसकी प्राप्ति तो सहृदय समीक्षक को ही सम्भव है । वस्तुतः यह कविता सुन्दरी का सौभाग्यसिन्दूर है । प्रतीयमान अर्थ को स्पष्ट करने के लिये आचार्य आनन्दवर्धन अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं–

१. वाच्य अर्थ आश्रय है और प्रतीयमान आश्रयी ।
२. यदि वाच्य अर्थ व्यंग्य है तो प्रतीयमान लावण्य ।
३. यदि वाच्य दीपशिखा है तो प्रतीयमान आलोक ।
४. यदि वाच्य वृक्ष है तो प्रतीयमान वसन्त ।
५. यदि वाच्य पांचभौतिक शरीर है तो प्रतीयमान जीवचेतन ।
६. यदि वाच्य ज्ञापक है तो प्रतीयमान ज्ञाप्य ।
७. यदि वाच्य तृतीय क्षण में नष्ट हो जाने वाला अनित्य शब्द है तो

प्रतीयमान शाश्वत नित्य स्फोट है।

८. यदि वाच्य पदार्थ है तो प्रतीयमान वाक्यार्थ।

९. यदि वाच्य नन्दनवन है तो प्रतीयमान उसका कल्पवृक्ष।

१०. यदि वाच्य लावण्य है तो प्रतीयमान उसका सौभाग्य।

११. यदि वाच्य भूषा है तो प्रतीयमान लज्जा।

१२. यदि वाच्य भृत्य है तो प्रतीयमान राजा।

ध्वनिकार ने ध्वनि शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने इसके पाँच अर्थ प्रस्तुत किये हैं–

१. वाचक शब्द, २. वाच्यार्थ, ३. व्यंग्यार्थ, ४. व्यञ्जना व्यापार और ५. समुदायरूप काव्य।

आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनिकाव्य को दो भागों में विभक्त करते हैं– १– ध्वनि २– गुणीभूतव्यंग्य।

वे ध्वनि के सर्वप्रथम दो भेद करते हैं– १- अविवक्षितवाच्यध्वनि २- विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि। अविवक्षितवाच्यध्वनि को लक्षणामूला ध्वनि भी कहते हैं। लक्षणा के उपादान और लक्षण के आधार पर अविवक्षितवाच्य के दो भेद हो जाते हैं– १- अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य २- अत्यन्ततिरस्कृत-वाच्य। ये दोनों भेद पदप्रकाश्य और वाक्यप्रकाश्य के भेद से प्रत्येक दो प्रकार के हो जाते हैं।

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि को अभिधामूला ध्वनि भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं– १- क्रमद्योतध्वनि २- अलक्ष्मक्रयद्योतध्वनि। इन्हीं को संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य और असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य भी कहते हैं। असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि आठ रूपों में विभक्त है– १- रस, २- भाव, ३- रसाभास, ४- भावाभास, ५- भाव-प्रशम, ६- भावसन्धि, ७- भावोदय, ८- भावशबलता। संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि दो भागों में विभक्त है– १- शब्दशक्तिमूलक २- अर्थशक्तिमूलक। शब्दशक्ति-मूलकध्वनि पद और वाक्य इन दो रूपों में व्यञ्जक है। अर्थशक्तिमूलकध्वनि के दो भेद हैं १- वस्तुध्वनि २- अलंकारध्वनि। वस्तुध्वनि वर्ग भी दो प्रकार का है– १- प्रौढोक्तिमात्रसिद्ध २- स्वतःसम्भवी। ये दोनों पुनः पद और वाक्य के भेद से दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। अलंकारध्वनि वर्ग के भी दो भेद हैं– १- अलंकार २- वस्तु। इस प्रकार अर्थशक्तिमूलक संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के आठ भेद होते हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन व्यंग्य और वाच्य के समप्राधान्य होने पर और व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य के अधिक चमत्कारी होने पर गुणीभूतव्यंग्य मानते हैं। उन्होंने गुणीभूतव्यंग्य के भेदों पर भी प्रकाश डाला है। आचार्य मम्मट

ने काव्यप्रकाश में एक हजार चार सौ पचपन ध्वनि भेदों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार उन्होंने छप्पन हजार सात सौ चौरासी गुणीभूतव्यंग्य के भेदों को निर्दिष्ट किया है।

महाकवि भवभूति सहृदय कवि, नाट्यशास्त्र के अप्रतिम आचार्य और काव्यशास्त्र के सुविदग्ध वेत्ता हैं। उन्होंने अपने रूपकों में प्रतीयमान अर्थ या ध्वनितत्त्व का सहज संयोजन किया है। इस ध्वन्यात्मक शैली के द्वारा कवि ने वर्ण्य-विषय की थोड़े से शब्दों में हृदयस्पर्शी अभिव्यञ्जना प्रस्तुत की है। कवि का यह व्यञ्जना व्यापार रूपकाराम में मनोरम प्रसूनसुरभि विकीर्ण कर रहा है। कवि ने अपने रूपकों में रसध्वनि, अलंकारध्वनि और वस्तु-ध्वनि का सम्यक् प्रयोग किया है।

इस ग्रन्थ में ध्वनितत्त्व की दृष्टि से महाकवि भवभूति के रूपकों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन की दृष्टि से इसे सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। इसके प्रथम अध्याय में महाकवि भवभूति एवं संस्कृतरूपक परम्परा पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में महाकवि भवभूति के रूपकों में रसध्वनि, तृतीय अध्याय में भावध्वनि, चतुर्थ अध्याय में अलंकार-ध्वनि, पञ्चम अध्याय में वस्तुध्वनि और षष्ठ अध्याय में गुणीभूतव्यंग्य का निर्वचन हुआ है। सप्तम अध्याय में अन्य व्यञ्जक वैशिष्ट्यों की प्रस्तुति है। इस कार्य की परिपूर्णता में सहयोग के लिए यह जन उन अवदातहृदय मनीषियों का सदैव अधमर्ण रहेगा जिनके शुभाशीर्वचनों से इस कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता का उन्मेष हुआ है। एतदर्थ सर्वप्रथम तत्रभवान् परम श्रद्धेय पूज्य गुरुवर स्वर्गीय डॉ० हरिदत्त शास्त्री के प्रति लेखक श्रद्धाव-नत है जिनका कृपाप्रसाद ही निमित्तनैमित्तिकक्रम की अपेक्षा किये बिना ही इस कार्य का सम्पादक रहा है। लेखक उनसे कदापि उऋण नहीं हो सकता। श्रद्धेय डॉ० कान्तिकिशोर भरतिया का लेखक सदैव कृतज्ञ रहेगा, जिन्होंने इस कार्य के लिए सदैव सम्प्रेरित किया है।

लेखक विद्वद्वरेण्य डॉ० राजदेवमिश्र कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय वाराणसी का हार्दिक कृतज्ञ है जिन्होंने अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी इस ग्रंथ पर सम्मति लिखने की कृपा की है पं. वैकुण्ठ नाथ शास्त्री, डॉ. बाबूराम पाण्डेय, डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, डॉ० ब्रजेशचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० विजयलक्ष्मी त्रिवेदी, डॉ० नलिनी शुक्ला, डॉ० शशि तिवारी, डॉ० जगदेवप्रसाद पाण्डेय डॉ० महेशनाथ नाथ चतुर्वेदी, डॉ० कृष्णकुमार अवस्थी, डॉ० घनश्याम तिवारी, डॉ० जगदीशप्रसाद निगम, डॉ० शारदा सेठ, डॉ० सुशीलकुमारी वर्मा, डॉ० क्षमा मिश्रा, डॉ० गोविन्द नारायण मालवीय, डॉ० शील निगम,

डॉ० शक्ति पाण्डेय, डॉ० सत्यनारायण त्रिवेदी, डॉ० कमलेशचन्द्र पाण्डेय, डॉ० रामकिशोर पाण्डेय, डॉ० देवनारायण मिश्र प्रभृति संस्कृतमनीषियों का सहयोग रहा है। लेखक इन सबका कृतज्ञ है।

आराधना ब्रदर्स के प्रकाशक हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अभिरुचि ली है, अन्त में कवियों, लेखकों, समीक्षकों, एवं बुधजनों के समक्ष अधोविन्यस्त पद्य को प्रस्तुत कर अपने कथ्य को पूर्ण करते हैं–

दुर्मोषो दोषसङ्घः क्षणमपि न दृढा मानुषी शेमुषीयम्,
प्रूफोऽसौ द्विस्त्रिवारं नयनविषयतां यातवान् नैव शुद्धः।
विद्वांसो दोषदृष्टौ दधति च नितरां तुष्टिपुष्टि तदाहम्,
जोषं जोषं विदोषं कलयितुमखिलं जोषमेवानतोऽस्मि॥

होलिकोत्सव,
२०४६ वि० सं०

डॉ० शिवबालक द्विवेदी
संस्कृतविभाग
डी० ए० वी० कालेज
कानपुर

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

महाकवि भवभूति और संस्कृत रूपक परम्परा

(क) संस्कृत रूपकों का उद्भव एवं विकास

मानव सच्चिदानन्द ब्रह्म की अव्यक्ता, त्रिगुणात्मिका माया शक्ति के द्वारा आविर्भूत होता है। सच्चिदानन्द ब्रह्म का अंश होने के कारण उसकी आनन्द में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अतएव वह परमानन्द की प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहता है। वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट काव्यप्रयोजन के निरूपण में 'सद्यः परनिर्वृतये'[1] को सादर प्रस्तुत करते हैं। रूपक 'सद्यः-परनिर्वृति' के परमसाधन के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भरतमुनि का अभिमत है कि रूपक दुःखार्त, श्रमार्त एवं शोकार्त जनों को परमविश्रान्ति प्रदान करने वाला है—

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।[2]

विपश्चिद्वर आचार्य धनञ्जय रूपकों को 'आनन्दनिष्यन्दी'[3] बतलाते हैं। कविकुलगुरु कालिदास रूपक की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि 'मुनियों का अभिमत है कि दृश्यकाव्य एक ऐसा चाक्षुष यज्ञ है जो देवताओं को भी अत्यन्त सुहावना लगता है। भगवान् शिव ने उमा के साथ विवाह करके अर्धनारीश्वर शरीर में ताण्डव और लास्य के द्वारा इसके दो भेद कर दिये हैं। इसमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुण एवं अनेक रसों में प्रवाहित होने वाले लोकचरित के दर्शन होते हैं। अतएव भिन्न-भिन्न रुचियों के लोगों के लिए रूपक ही एक ऐसा (दिव्य) समारोह है, जिसमें सभी को एक सा आनन्द मिलता है।'[4]

महाकवि कालिदास के उपर्युक्त कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रूपक प्रत्येक प्रकार के लोगों को आनन्दित करने में सक्षम हैं। अतएव इस प्रकार के सहज हृदयस्पर्शी एवं आनन्दनिष्यन्दी रूपकों में जनसाधारण

की प्रवृत्ति सर्वथा स्वाभाविक है। लोकानुरञ्जन की शक्ति से समुपबृंहित नाट्यविद्या की उत्पत्ति का प्रश्न नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि के ही सदृश अद्यापि विवादास्पद है। सम्प्रति इस नामरूपात्मक जगत् के सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधारायें प्रचलित हैं–(१) ह्रासवाद और (२) विकासवाद।

भारतीय मनीषी एवं उनके समर्थक ह्रासवादी हैं। उनका अभिमत है कि सर्वविध विकसित, समृद्ध एवम् सभ्य संसार का शनैः शनैः ह्रास हो रहा है। ऐहिक एवं आमुष्मिक उपलब्धियों का अवमूल्यन हो रहा है। सम्प्रति हम सागर का परित्याग कर मृगतृष्णा में अनुराग कर रहे हैं। पाश्चात्त्य विपश्चित् एवं उनके समर्थक विकासवादी हैं। उनका कथन है कि आदिमानव अज्ञानी, असभ्य एवं असमृद्ध रहा है, उसने शनैः शनैः विकास कर इस समृद्धि, सभ्यता एवं संस्कृति को प्राप्त किया है। उनकी दृष्टि में उपलब्धियों का अवमूल्यन नहीं प्रत्युत और विकास हो रहा है, हम शनैः शनैः आगे बढ़ रहे हैं।

उपर्युक्त दो पक्षों को प्रस्तुत कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि या तो इन पूर्ण विकसित कलाओं को परमात्मा ने याथातथ्येन आविर्भूत किया है या फिर मानव जाति ने इनका शनैः शनैः विकास किया है। जो कुछ भी हो इनका किसी न किसी रूप में मानव जाति के साथ आदिकाल से सम्बन्ध रहा है और प्रस्तुत चिन्तन में हमें यही अभीष्ट है। यदि ह्रासवादी दृष्टिकोण को अपनाया जाये तो यह सिद्ध होता है कि परमात्मा ने जिस प्रकार नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि की है उसी प्रकार पूर्ण विकसित नाट्यविद्या की सृष्टि की है। नाट्यविद्या के सन्दर्भ में भारतीय मनीषी इसी में आस्था रखते हैं और प्रकारान्तर से इसे ही 'दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त' नाम से प्रस्तुत करते हैं। अधिकांश आधुनिक विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं, अतएव यह विषय विवादास्पद हो जाता है और अनेक विद्वान् विकासवादी दृष्टि से भिन्न-भिन्न अभिमत प्रस्तुत करते हैं। यहाँ हम संक्षेप में उन समस्त विषयों पर विचार करेंगे–

१. **दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त**–नाट्यविद्या के उद्भव के विषय में शुभंकर विरचित संगीत दामोदर में लिखा है कि एक समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे ऐसे वेद की रचना करें जिसके द्वारा जनसाधारण मनोरंजन कर सके। इन्द्र की इस अभ्यर्थना से ब्रह्मा ने चारों वेदों से आकर्षण कर नाट्यवेद की रचना की। भगवान् शिव ने ब्रह्मा को नाट्यवेद का उपदेश दिया था। ब्रह्मा जी ने भरतमुनि को और भरतमुनि ने इसका प्रचार मनुष्यलोक में किया। इस प्रकार शिव, ब्रह्मा एवं भरत नाट्यवेद के

प्रयोजक हैं ।[5]

भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि समस्त देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजनार्थ किसी विद्या की रचना करें, जिस पर संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने चारों वेदों से क्रमशः ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर प्रख्यात नाट्यवेद नामक पंचम वेद की रचना की ।[6] आचार्य धनञ्जय ने भी इसके साथ अपनी सहमति प्रकट की है ।[7] भारतीय मनीषियों की यह अवधारणा है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर इस नाट्य का अभिनय हुआ था ।[8]

२. **संवादसूक्त सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त के प्रतिपादक विद्वानों का अभिमत है कि भारत के प्राचीनतम ग्रन्थरत्न ऋग्वेद में कतिपय ऐसे सूक्त हैं जिनमें संवाद मिलते हैं । यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी, सर्मा-पणि इन्द्र-मरुत्, विश्वामित्र-नदी, इन्द्र-इन्द्राणी, अगस्त्य-लोपामुद्रा आदि प्रमुख संवाद हैं । सामवेद में संगीत, यजुर्वेद में अभिनय और अथर्ववेद में रसों की स्थिति है । यही तत्त्व शनैः शनैः परिष्कृत एवं विकसित होते हुए नाटक के स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं ।[9]

३. **वीरपूजा सिद्धान्त**–पाश्चात्य विपश्चित् डॉ० रिजवे का मत है कि रूपकों की उत्पत्ति में वीर पुरुषों के प्रति समादर का भाव कारण है ।[10] दिवंगत वीर पुरुषों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने की रीति ग्रीस, भारत आदि देशों में पुरातन काल से प्रचलित रही है । रूपकों का अभिनय दिवंगत आत्माओं की प्रीति के लिए हुआ करता था । डॉ० रिजवे के इस सिद्धान्त से अधिकांश विद्वान् सहमत नहीं हैं ।

४. **प्रकृतिपरिवर्तन सिद्धान्त**–सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० कीथ ने प्रकृतिपरिवर्तन से नाटक की उत्पत्ति मानी है ।[11] उनका अभिमत है कि प्रारम्भ में प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप देने के लिए अभिनय किया गया होगा । डॉ० कीथ का भी यह मत सुप्रतिष्ठित न हो सका ।

५. **पुत्तलिकानृत्य सिद्धान्त**–जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० पिशेल ने संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानी है ।[12] उनका भी यह मत सर्वमान्य न हो सका ।

६. **छायानाटक सिद्धान्त**–पाश्चात्य विद्वान् डॉ० लूडर्स एवं कोनो का अभिमत है कि रूपक का उद्भव एवं विकास छाया नाटक से हुआ है ।[13] महाकाव्य का एक उद्धरण देते हुए वे लिखते हैं कि महाकाव्य में शौभिक

छाया नाटकों की छायामूर्तियों के व्याख्याकार थे, परन्तु सम्प्रति उपलब्ध दूतांगद छाया नाटक अधिक प्राचीन नहीं है। अतः विद्वानों की इस मत पर भी अधिक आस्था नहीं है।

७. **मेपोलनृत्य सिद्धान्त**–कतिपय विद्वानों का अभिमत है कि जिस प्रकार पाश्चात्त्य देशों में मई मास में वसन्त सौन्दर्य से प्रभावित होकर एक लम्बा बाँस गाड़कर लोग उसके चारों ओर उछलते-कूदते और नाचते-गाते हैं, उसी प्रकार भारत में इन्द्रध्वज नामक महोत्सव मनाया जाता था। इसी से शनैः शनैः नाटकों का विकास हुआ है।[14] इस मत से भी विद्वान् सहमत नहीं हैं।

इन उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने लोकप्रिय स्वांग सिद्धान्त तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धान्त को नाटक के उद्भव का बीज माना है। वेबर एवं विण्डिश प्रभृति विद्वान् संस्कृत नाटकों का उद्भव यूनानी नाटकों के प्रभाव से मानते हैं।[15] परन्तु उनके इस मत से विद्वान् पूर्णतया असहमत हैं। प्रो० जागीरदार ने नाटकों का उद्भव सूत के द्वारा माना है।[16] उनका अभिमत है कि सूत परिभ्रमण करते हुए वीरगीतों तथा लोक-कथाओं के आधार पर अभिनय करके लोगों का मनोरंजन किया करते थे। उनके ये अभिनय ही नाटक के बीज हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूपक के उद्भव का प्रश्न अत्यन्त ही विवादास्पद है। प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार नाट्यवेद के रचयिता ब्रह्मा हैं और उसके लोक में प्रचारक भरतमुनि हैं। आधुनिक विचारक उससे भिन्न मत रखते हैं। उपर्युक्त मतों में से कोई मत नाटक के उद्भव का कारण रह सकता है परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अमुक सिद्धांत ही नाटक की उत्पत्ति का कारण है।

नाटक की स्थिति के विषय में प्राचीन भारतीय साहित्य के अन्तःसाक्ष्य से सहयोग लिया जा सकता है। नाटक के प्रमुख अंग संवाद, संगीत, नृत्य एवं अभिनय का वेदों में किसी न किसी रूप में अस्तित्व मिलता है।[17] रामायण तथा महाभारत प्रभृति आर्षकाव्यों में नाटकीय तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख है।[18] अयोध्याकाण्ड में राम के राज्याभिषेक के समय पर नट-नर्तकों की उपस्थिति का उल्लेख है। रामायण में 'नाटक' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[19] महाभारत में भी सूत्रधार[20] नट-नर्तक[21] आदि शब्दों का उल्लेख है। हरिवंशपुराण में रामायण और कौबेररम्भाभिसार नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख मिलता है।[22] मार्कण्डेयपुराण में भी नाटक शब्द का प्रयोग हुआ है।[23] सुप्रसिद्ध वैयाकरण महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में नट-सूत्रों का स्पष्ट उल्लेख किया है।[24] महर्षि पतञ्जलि के महाकाव्य में कंस-

वध तथा वलिबन्ध नामक नाटकों का उल्लेख हुआ है ।[25] आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'कुशीलव' शब्द का प्रयोग किया है ।[26] वात्स्यायन के कामसूत्र में भी कुशीलव आदि शब्दों का प्रयोग पाया जाता है ।[27] जैन और बौद्ध साहित्य में भी नाटकों के अभिनय का वर्णन हुआ है । आचार्य भरत नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य माने जाते हैं । उनके नाट्यशास्त्र में कोहल, शाण्डिल्य, वात्स्य, धूर्तिल आदि आचार्यों का उल्लेख मिलता है । भरत का नाट्यशास्त्र नाट्यसम्बन्धी विषयों से परिपूर्ण विशाल कलेवर का ग्रन्थ है । इससे यह ज्ञात होता है कि इनके समय तक अनेक नाटकों की रचना हो चुकी थी तथा नाट्यकला का पर्याप्त विकास हो चुका था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिष्कृत संस्कृत नाटकों का विकास ईशा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध से प्रारम्भ हो जाता है तथा शनैः शनैः ये नाटक और अधिक परिष्कृत एवं विकसित होते चले जाते हैं ।

(ख) संस्कृत नाटककारों में महाकवि भवभूति का स्थान

संस्कृत की उपलब्ध नाट्यकृतियों में महाकवि भास के नाटकों को आद्य रचनाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । प्रतिपादन शैली की दृष्टि से भास के नाटक अन्य नाटकों से कुछ भिन्न हैं । महाकवि भास अपने नाटकों में सर्वप्रथम 'सूत्रधार' की योजना करते हैं जबकि अन्य नाटककार नान्दीपाठ से शुभारम्भ कर तब सूत्रधार को प्रस्तुत करते हैं । महाकवि भास के नाटकों का प्रारम्भिक वाक्य है—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।' इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय नाटक के प्रारम्भ में देवाराधन के रूप में सामान्य स्तुतिपाठ विहित होगा जिसमें सम्भवतः नाटक के सभी पात्र सम्मिलित होकर स्तुति करते होंगे । इसी स्तुतिपाठ को महाकवि भास ने 'नान्दी' शब्द से अभिहित किया होगा । इस मांगलिक नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है और वह सर्वप्रथम देवस्तुति और उसी के साथ मुद्रालंकार के द्वारा कथानक-पात्र-आदि की सूचना भी दे देता है । महाकवि भास की इस योजना के मूल्यांकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने नाटकीय पात्रों की संयुक्त 'देववन्दना' में अपने को सम्मिलित नहीं किया और सूत्रधार के उपस्थित होने पर मंगलाचरण कर लिया जो कि भारतीय परम्परा के अनुकूल है । इस सूत्रधारकृत मंगलाचरण की योजना को ही कतिपय समीक्षक नान्दी कहने लगे, जबकि इसे नान्दी मान लेने पर 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' के साथ आपाततः विरोध हो जाता है । परवर्ती नाटककारों ने सर्वप्रथम मंगलाचरण किया और इसे ही 'नान्दी' के नाम से

अभिव्यक्ति, सहृदयों के भावात्मक मन:संवेगों, काव्यशास्त्रीय एवं नाट्यशास्त्रीय औदात्त्य का प्रतिफलन तथा ललित कलाओं के संगुम्फन का अप्रतिम समाहार है। आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक, स्थूल एवं सूक्ष्म, वन्य एवं ग्राम्य, देव एवं मर्त्य का ऐसा कलात्मक एवं रागात्मक समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है।

महाकवि अश्वघोष एक सफल नाटककार भी रहे हैं, इसकी पुष्टि उनके खण्डित नाट्यग्रंथ शारिपुत्रप्रकरण, अन्यापदेशीरूपक तथा गणिकारूपक से होती है। मध्य एशिया (तुर्फ़ान) की बालुकाराशि में प्राप्त उनकी नाट्यकृति से यह प्रमाणित होता है कि काव्यग्रन्थों की तरह उनके नाटकों की ख्याति भी स्वदेश की सीमाओं को पार कर चुकी थी। भाषा-शैली में अश्वघोष भास से पूर्णतया प्रभावित हैं। मौलिक भेद कथावस्तु का है। भास का कथ्य अश्वघोष की तुलना में पर्याप्त व्यापक है। जहाँ भास धार्मिक क्षेत्र से तटस्थ रहकर काव्यमार्ग में प्रवृत्त होते हैं वहीं अश्वघोष की काव्यसाधना उनकी ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक धर्मनिष्ठा से जकड़ सी जाती है। यही कारण है कि भास ने वस्तुसंघटन के लिए रामायण, महाभारत, पुराण एवं कथा साहित्य आदि क्षेत्रों का चयन किया है, जिससे उनके नाटकों में वैविध्य एवं वैचित्र्य के दर्शन होते हैं। इसके विपरीत बौद्ध धर्म के प्रचारक होने के कारण अश्वघोष का इतिवृत्त चयन बुद्ध और उनके कतिपय अनुयायियों तक ही सीमित हैं। धर्म प्रचारक होने के कारण जटिल विषय को सरल एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में अश्वघोष भास से भी आगे बढ़ जाते हैं। उनकी नाट्यकृतियों के खण्डित होने के कारण उनका अभीष्ट प्रचार-प्रसार नहीं हो सका।

संस्कृत नाटकों की विकास-परम्परा को महाकवि शूद्रक एक नवीन रूप प्रदान करते हैं। भास के द्वारा समारोपित जिस नाट्यविटप को महाकवि कालिदास कलात्मक रस के द्वारा अभिसिंचित करते हैं उसी को महाकवि शूद्रक स्वाभाविक रूप से विकसित करते हैं। उनके मृच्छकटिक प्रकरण में सामाजिक प्रतिच्छवि झलक रही है। उनके मृच्छकटिक-दर्पण में समाज का सहज स्वरूप प्रतिबिम्बित हो रहा है। अपने प्रकरण को निसर्ग रूप प्रदान करने के लिए वे बिना किसी हिचक के समाज के छोटे से छोटे वर्ग को भी प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने धूर्त, चोर, जुआरी, वेश्या, क्रान्तिकारी, पुलिस-अधिकारी, ब्राह्मण, संन्यासी आदि विविध प्रकार के पात्रों की योजना करके सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र खींचा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने कलापक्ष से पूर्णतया मुँह मोड़ लिया है। रससंयोजन में वे सिद्धहस्त

हैं। भाषा का लालित्य एवं माधुर्य भी श्लाघ्य है। वे अपने प्रकरण में सभी का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसका निर्वाह महाकवि कालिदास प्रभृति रससिद्ध कवि नहीं कर सके हैं। यद्यपि इनके मृच्छकटिक की आधारशिला कविवर भास के करकमलों द्वारा दरिद्रचारुदत्त के रूप में रक्खी गयी थी तथापि इन्होंने अपने गम्भीर चिन्तन-मनन, सूझबूझ एवं प्रतिभा के द्वारा उसे मौलिक रूप में उपन्यस्त किया है। 'कवयः क्रान्तिदर्शिनः' सूक्ति को चरितार्थ करते हुए इन्होंने कतिपय नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का अतिक्रमण कर दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त को नायक तथा वसन्तसेना नामक गणिका को नायिका बनाया। इन्होंने समाज के सभी प्रकार के पात्रों को संयोजित कर समाज के सभी वर्गों का यथार्थ-चित्रण किया है। इनके समग्र चित्रण में मानवहृदय सहज रूप में स्पन्दित हो रहा है। सार्वदेशिक पात्रों के चरित्र-चित्रण की प्रधानता रखने वाला इनका प्रकरणरत्न संस्कृत साहित्य में अप्रतिम स्थान रखता है। इनकी नाट्यकला महाकवि भास की अपेक्षा प्रौढ़ तथा महाकवि कालिदास की तुलना में संतुलित कलात्मकता के कारण अधिक आकर्षक एवं लुभावनी है। संस्कृत नाटक साहित्य के दो महारथियों (कालिदास और भवभूति) की तरह इनकी शैली वर्णनात्मिका नहीं है। इसीलिए ये अपने ढंग के अनूठे ही हैं। सम्प्रति सुरभारती के सर्वतोमुखी प्रचार-प्रसार के लिए आप जैसे कवि-रत्न की महती अपेक्षा है।

महाकवि श्रीहर्ष परम्परागत नाट्यशैली के कलाप्रधान कवि हैं। इनकी कीर्तिकौमुदी को विखेरनी वाली तीन नाट्यकृतियाँ है–नागानन्द (नाटक), प्रियदर्शिका एवं रत्नावली (नाटिकायें)। श्रीहर्ष की प्रसिद्धि का प्रमुख श्रेय रत्नावली नाटिका को है जो कि अनेक गुणों से अलंकृत इनकी सर्वोत्कृष्ट नाट्यकृति है। इनकी कृतियों में नाट्शास्त्रीय प्रतिबद्धता सर्वतोभावेन मुखरित हो रही है। रत्नावली नाटिका तो नाट्यशास्त्रीय कला का चरम परिपाक है। नाट्यशास्त्रीय प्रतिबद्धता के कारण इनकी कवितासुन्दरी के स्वाभाविक विलास में न्यूनता आ गई है। स्थान-स्थान पर कृत्रिम प्रसाधन सामग्री उसके स्वाभाविक लावण्य, तारुण्य एवं विलास को विकृत सी कर रही है। गतिशीलता के रहते हुए भी नाट्यशास्त्रीय प्रतिबद्धता इन्हें कालिदास और शूद्रक से दूर ढकेल देती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि भास, कालिदास एवं शूद्रक की तरह ये नवीन मौलिक नाट्यविधा की संरचना में सफल नहीं हो सके हैं। हाँ, इनका संस्कृत नाटक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने का योगदान सर्वथा अभिनन्दनीय है।

इस प्रकार उपर्युक्त संस्कृत नाटककारों एवं उनकी नाट्यप्रवृत्तियों के

अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि भवभूति से पूर्व ही वस्तु, शिल्प, कला एवं भाव की दृष्टि से नाट्यविद्या चरम उत्कर्ष तक पहुँच चुकी थी। नाट्यभारती के परमाराधक त्रिक (भास, कालिदास एवं शूद्रक) ने अपने दिव्य मुक्ताभावों को पिरोकर उसे ऐसे उज्ज्वल हार से विभूषित किया है कि उसके समक्ष विलक्षण प्रतिभाशाली श्रीहर्ष प्रभृति कवि शिरोमणि नहीं ठहर सके। उसकी दिव्यदीप्ति के समक्ष उनके प्रज्ञाचक्षु हतप्रभ हो गये। संक्षेप में कह सकते हैं कि महाकवि भास के समय से संस्कृत नाट्य-विद्या के विकास के जिस युग का शुभारम्भ हुआ, वह उत्तरोत्तर विकसित होती हुयी कालिदास और शूद्रक में चरम परिपाक को प्राप्त कर लेती है। महाकवि कालिदास के कलात्मक नाटकीय संवेगों ने सहृदयों के हृदय को स्पन्दित कर दिया। उन्होंने जिन शाश्वत एवं चिरन्तन भावों को नाट्यविद्या के द्वारा प्राणवन्त किया उनकी अक्षुण्णसत्ता अप्रतिम एवं अपरिहार्य है। अतएव हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास के द्वारा प्रतिष्ठित नाटकीय मूल्यों के समक्ष किसी दूसरे नाटककार के लिए नये मूल्यों की स्थापना या प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकना अत्यन्त ही दुष्कर था। कविताकामिनी के विलास महाकवि कालिदास की इस चुनौती का सामना कवितावनिताविभूति महाकवि भवभूति करते हैं। यहाँ यह कथन भी अप्रासंगिक न होगा कि कालिदास के पश्चात् भवभूति के अतिरिक्त मुद्राराक्षस के रचयिता कविवर विशाखदत्त ही ऐसे कवि हैं जो कि संस्कृत नाट्यपरम्परा में कतिपय नवीन मूल्यों की स्थापना करने में सक्षम हुए हैं। वे अपनी कृति में नवीन मूल्यों की स्थापना तो करते हैं परन्तु महाकवि कालिदास के द्वारा प्रतिष्ठापित नाट्यमार्ग से लोहा लेने में कतराते हैं, अतएव उस मार्ग का परित्याग कर एक नये मार्ग से निकल जाते हैं। कदाचित् उन्हें भय था कि कालिदास से टकराकर नाट्यजगत् में प्रतिष्ठा पा सकना अत्यन्त दुष्कर होगा। महाकवि भवभूति ही एकमात्र ऐसे साहसी कवि हैं जो कालिदास की नाट्य-कला को चुनौती देते हैं। भवभूति कालिदास के द्वारा प्रतिष्ठापित नाट्य-मार्ग को अपनाकर उनसे आगे बढ़ने के लिए प्रवृत्त होते हैं। महाकवि कालिदास ने तीन नाट्य ग्रंथों की रचना की है–(१) मालविकाग्निमित्र, (२) विक्रमोर्वशीय और (३) अभिज्ञानशाकुन्तल। महाकवि भवभूति भी तीन ही नाट्य ग्रंथों की रचना करते हैं–(१) महावीरचरित, (२) मालती-माधव और (३) उत्तररामचरित। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जर्मन कवि गेटे उसकी प्रशंसा करते हुए तृप्त नहीं होते–

"And all by which the soul is charmed
enraptured feasted fed ?
wouldst thou the earth and Heaven it self
on one sole name combine
I name the, O Shakuntala
and all atonce is said."

संस्कृत रूपान्तर श्री वासुदेवविष्णुमिराशी–

'वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद्, ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ।।

समीक्षकों का अभिमत है कि अभिज्ञानशाकुन्तल महाकवि कालिदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है। उसमें भी चतुर्थ अंक में भी श्लोकचतुष्टय सर्वश्रेष्ठ हैं–

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः, तत्र श्लोकचतुष्टयम् ।।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल तथा उसका भी चतुर्थ अंक अत्यधिक प्रशंसित रहा है। फलस्वरूप महाकवि भवभूति ने शाकुन्तल एवं उसके चतुर्थ अंक को ही अपने लिये चुनौती माना। यही कारण है कि वे शाकुन्तल के समक्ष उत्तररामचरित को प्रस्तुत करते हैं और इसके द्वारा कालिदास से आगे निकलने का प्रयत्न करते हैं। उत्तर-रामचरित वस्तु, नेता एवं रसादि समस्त नाटकीय तत्त्वों से समुपबृंहित होने के कारण सरस, सुन्दर, स्वाभाविक एवं कलात्मक है। इसमें स्थान-स्थान पर प्रौढ़ता एवं पाण्डित्य का सुन्दर पुट मिलता है। भाषा की कलात्मकता, सरसता, प्रौढ़ता एवं मधुरता श्लाघ्य है। कथावस्तु के परिवर्तन भी मौलिक एवं रोचक हैं। भावाभिव्यंजन व्यापार भी सर्वथा स्पृहणीय है। रसपरिपाक की दृष्टि से भी यह कृति अत्यन्त ही उत्कृष्ट मानी गयी है। भवभूति के इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर कदाचित् समीक्षकों ने ये उद्गार प्रस्तुत किये हैं–

"नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा ।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।"

जैसा कि बतलाया जा चुका है महाकवि भवभूति कविकुलगुरु की तुलना में अधिक विभूति अर्जित करने की दृष्टि से उत्तररामचरित की रचना

करते हैं। एतदर्थ वे उनसे प्रत्येक दृष्टि से आगे बढ़ने के लिए सचेष्ट हैं। यहाँ हम एकाध विषय की चर्चा करेंगे। कालिदास के विमलयश का कारण शाकुन्तल का चतुर्थ अङ्क है। महाकवि भवभूति उनसे अधिक उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए उस वैशिष्ट्य को उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क में ही प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार भवभूति कालिदास से एक पग आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं और अपने नाटक के तृतीय अङ्क के द्वारा महाकवि कालिदास के चतुर्थ अङ्क को अभिभूत करने की चेष्टा करते हैं।

महाकवि कालिदास ने शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क में नायिका शकुन्तला को महर्षि दुर्वासा के द्वारा शाप दिलाकर करुण विप्रलम्भ शृंगार का बीज बोया था। महाकवि भवभूति उक्त कार्य उत्तररामचरित के प्रथम अङ्क में ही करके नायिका सीता का निर्वासन भी करा देते हैं और द्वितीय अङ्क में सीता की संस्थिति का भी संकेत कर देते हैं। अतएव उनका करुण विप्रलम्भ शृंगार इसी अङ्क में अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयद्रावक परिपाक की चरमावस्था तक पहुँच जाता है। महाकवि कालिदास शकुन्तला की विदावेला का कारुणिक दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जिसका सम्बन्ध आश्रमवासी ऋषियों तक ही परिसीमित नहीं है, अपितु प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य है। इधर महाकवि भवभूति दम्पति को विचित्र रूप में प्रस्तुत कर उनके हृदयस्पर्शी कारुणिक भावों को प्रस्तुत करते हैं, जिनका प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर अपूर्व सामंजस्य ला देते हैं। इन दोनों अङ्कों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों दोनों में उत्कृष्टता लाने की होड़ जैसी है तथा दोनों ही मानवमानस के स्पर्श के लिए बाल की खाल निकालते हैं, परन्तु दोनों की मौलिकता में भेद है। जहाँ एक ओर तपोवन पोषिता, ग्राम्यव्यापारानभिज्ञा, भोले-भाले पशुपक्षियों की सहचरी शकुन्तला पूर्ण प्रशान्त आश्रम का परित्याग कर भौतिक पर्यावरणों से युक्त, सांसारिक वैभव-विलासों से संयुक्त राजप्रासाद की ओर प्रस्थान कर रही है, वहीं दूसरी ओर राजकीय वैभव-विलास का परित्याग कर, अनेक यातनाओं को भुगत कर प्रियतम वियोग के महान् कष्ट का अनुभव करती हुयी सीता वनाञ्चल में दिखलायी गयी है।

शकुन्तला की विदायी से वनवासी, वीतरागी, तपस्वी कण्व भी सन्तान प्रेम से अत्यधिक व्याकुल हो जाते हैं। महर्षि कण्व वीतरागी होते हुए भी मानव हैं अतः उनका खिन्न होना स्वाभाविक है। परन्तु महाकवि भवभूति तो विजातीय तथा प्रकृति के साथ सच्चे सन्तान स्नेह को प्रतिपादित कर कालिदास से एक पग और आगे बढ़ जाते हैं। सीता अपने पूर्वपोषित पुत्रक करिकलभ पर विपत्ति देखकर अधीर हो आर्यपुत्र राम को पुकारने लगती

है–'आर्यपुत्र परित्रायस्व मम पुत्रकम्।' उनका अलौकिक सन्तान प्रेम इसी से परिलक्षित हो रहा है कि वे राम के द्वारा निर्वासित होने पर भी सन्तान-स्नेह से अभिभूत होकर उन्हें ही पुकारने लगती हैं। राम भी पुत्रक करिकलभ को देखकर द्रवित हो उठते हैं। वासन्ती के द्वारा सीता के पुत्रक गिरिमयूर के दिखलाये जाने पर राम हर्षोद्रेक से प्रफुल्लित हो उठते हैं और उनके द्वारा पोषित कदम्ब वृक्ष को वे विस्मृत नहीं कर पाते। इसी प्रसंग से सीता को अपने लाड़ले कुशलव की याद आ जाती है और वे वात्सल्य प्रेम से अभिभूत होकर असंसारिणी होती हुई भी संसारिणी बन जाती हैं। इस पवित्र अपत्य प्रेम की मीमांसा करते हुए महाकवि भवभूति लिखते हैं–

"प्रसवः खलु प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।"

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते॥[30]

महाकवि कालिदास के शाकुन्तल में शकुन्तला की विदावेला पर हरिण उनके वस्त्र से लिपटता है, जिस पर महर्षि कण्व कहते हैं–

'यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते॥[31]

इधर वासन्ती भी हरिणों के प्रति सीता के प्रगाढ़ प्रेम का वर्णन करती हुयी कहती है–

नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।
अत्र स्थिता तृणमदाद्वनगोचरेभ्यः
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म॥[32]

शकुन्तला की विदावेला पर महर्षि कण्व आश्रमस्थ वृक्षवनस्पतियों से अनुज्ञा माँगते हैं–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥[33]

उत्तररामचरित में भी वनदेवता वासन्ती वृक्षों, पवन तथा पक्षियों से राम के स्वागत के लिए निवेदन करती है–

ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः ।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः ॥"[34]

जिस प्रकार महर्षि कण्व का शोक शकुन्तला के पतिगृहगमन से बढ़ता ही चला जाता है और उनका गला रुँध जाता है, वे कहते हैं–

"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेदुःखैर्नवैः ॥[35]

उसी प्रकार ऋषिकल्प रामचन्द्र का शोक किसी भी प्रकार रोके नहीं रुकता और वे कहने लगते हैं–

वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः ।
हित्वा भित्त्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार–
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ॥[36]

तथा–

हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं, ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विश्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥[37]

जहाँ महाकवि कालिदास की शकुन्तला आश्रम को छोड़ते समय यह कहती है कि अयि तात ! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए, जिस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अधीर कण्व इस प्रकार कहते हैं–

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ॥[38]

वहीं उत्तररामचरित में तमसा के द्वारा धैर्य की बात कहे जाने पर राम अपने शोक को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–

देव्याः शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
प्रणष्टमपि नामापि न च रामो न जीवति ॥[39]

इस प्रकार अनेक दृष्टियों से महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित का तृतीयाङ्क कालिदास के चतुर्थ अङ्क से कुछ आगे ही पहुँच जाता है । यद्यपि दोनों के विषयप्रतिपादन में भेद है परन्तु अपने-अपने क्षेत्र में एक दूसरे को

चुनौती दिये हुए हैं। यदि महाकवि कालिदास शकुन्तला के आश्रम तथा गुरुजनों के विछोह से करुणरस की स्थिति ला देते हैं तो महाकवि भवभूति अपने तृतीय अङ्क के द्वारा पाठकों को करुणरस में इतना अधिक निमज्जित कर देते हैं कि वे नाटक के प्रधान रस के अन्वेषण में भ्रान्त होने लगते हैं। यदि कालिदास वात्सल्यरस संवलित करुणरस को उन्मीलित करते हैं तो भवभूति विप्रलम्भानुप्राणित करुणरस की योजना करते हैं। महाकवि कालिदास करुणरस की योजना के मध्य भारतीय संस्कृति की उदात्त भावभूमि प्रस्तुत करते हैं जो कि औचित्य एवं सामाजिक दृष्टि से उचित है परन्तु उनका यह कार्य करुणप्रवाह में कुछ अवरोध सा उपस्थित कर देता है, इसके विपरीत भवभूति सम्पूर्ण तृतीय अङ्क में विना किसी अवरोध के करुणरस की मन्दाकिनी प्रवाहित करते चले जाते हैं। इस अङ्क में रस की दृष्टि से भी महाकवि भवभूति का पलड़ा महाकवि कालिदास की अपेक्षा कुछ गुरुता रखता है। अतएव यह कथन युक्ति-युक्त एवं समीचीन है–

भवभूतेस्तु सर्वस्वमुत्तरं चरितं मतम्।
तत्रापि च तृतीयोऽङ्कः तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥[40]

(ग) महाकवि भवभूति का जीवनपरिचय

सुरभारती की सेवा-परायण भारतीय मनीषियों ने अपने अहम्भाव का मनागपि प्रदर्शन नहीं किया है। इसी उदात्तभावना से संप्रेरित होकर उन्होंने अपनी अमरकृतियों में भी अपना परिचय नहीं दिया है। किसी किसी मनीषी ने तो अपनी कृति के साथ अपना नाम तक नहीं जोड़ा। फलस्वरूप उसके वास्तविक प्रणेता का नाम भी नहीं ज्ञात हो सका। महाकवि कालिदास प्रभृति अप्रतिम प्रतिभा ने अपने वंश, स्थितिकाल, स्थान, राजाश्रय आदि की चर्चा नहीं की। जिससे उनके विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक कह सकना अत्यन्त कठिन हो रहा है। सौभाग्य से महाकवि भवभूति ने अपनी कृतियों में अपने सम्बन्ध में कुछ लिखा है, जिससे उनके विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। इधर भवभूति के जीवन एवं स्थितिकाल के विषय में पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विपश्चित् प्रायः वैमत्य नहीं रखते।

जन्मस्थान

महाकवि भवभूति ने अपनी तीनों नाट्यरचनाओं की प्रस्तावनाओं में अपने जन्म के सम्बन्ध में कुछ विवरण प्रस्तुत किये हैं। महावीरचरित की प्रस्तावना में वे लिखते हैं–"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। मालती-

माधव में कवि इसे कुछ और स्फुट रूप में प्रस्तुत कर देता है–"अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम् ।" इस प्रकार कवि के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि भवभूति ने दक्षिणापथ के विदर्भ-प्रान्तान्तर्गत पद्मपुर नामक नगर को गौरवान्वित किया था ।

मालतीमाधव के सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य जगद्धर ने पद्मपुर का अर्थ पद्मावती किया है ।[41] पद्मावती मालतीमाधव की नायिका मालती की जन्म-भूमि थी, जहाँ माधव विद्याध्ययन के लिए भेजा गया था । जनरल कनिंघम ने ग्वालियर राज्य में सिन्धु नदी के तट पर स्थित 'नरवार' नामक स्थान को ही पद्मावती माना है ।[42] एम० बी० गर्दे ने डबरा से १२ मील दूर नरवार के समीपवर्ती पद्मपवाया नाम की ग्रामटिका को पद्मावती बतलाया है ।[43] माधव व्यङ्कटेश लेले भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि पद्मावती ही भवभूति का जन्मस्थान पद्मपुर है ।

डॉ० भण्डारकर जगद्धर के उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हैं कि पद्मावती ही पद्मपुर था, जो भवभूति का जन्मस्थान था । उनका कथन है कि नागपुर के निकटवर्ती चन्द्रपुर या चांदा के आसपास अब भी कतिपय कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीय शाखा के आपस्तम्ब सूत्र वाले ब्राह्मण परिवार विद्यमान हैं, अतः चांदा जनपद का पद्मपुर नामक ग्राम ही भवभूति का जन्मस्थान रहा होगा ।[44] महामहोपाध्याय वासुदेवविष्णु मिराशी ने डॉ० भण्डारकर के उपर्युक्त मत का खण्डन किया है । उनका अभिमत है कि एक तो पद्मापुर नाम पद्मपुर से भिन्न है, दूसरे यह गाँव नया बसा है और उसको भवभूति का जन्मस्थान सिद्ध करने के लिए कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है ।[45] वे भवभूति का जन्मस्थान भण्डारा जिले के आमगांव स्टेशन से लग-भग ढाई मील पर स्थित पद्मपुर को मानते हैं । वहाँ कुछ प्राचीन अवशेष भी प्राप्त हुए हैं । वहीं प्राचीनकाल में वाकाटक राजाओं की राजधानी थी । उसके आसपास अत्यधिक भयावह जङ्गल भी है । सम्भवतः उन्हीं से प्रभावित होकर भवभूति ने अपने नाटकों में भयानक जङ्गलों का वर्णन किया है ।[46] डॉ० काणे मिराशी के उक्त मत से सहमत नहीं हैं ।[47] इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मपुर के सम्बन्ध में विद्वानों में वैमत्य है । इस मत के रहते हुए भी हमारी अवधारणा है कि भवभूति को दक्षिणापथ का ही होना चाहिए । उन्होंने अपने तीनों नाटकों में दक्षिण के वनों, नदियों एवं स्थानों का अत्यन्त ही आत्मीयता के साथ वर्णन किया है । गोदावरी के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा है अतएव वे महावीरचरित एवं उत्तररामचरित के अतिरिक्त मालती-माधव में भी गोदावरी का वर्णन अत्यन्त आत्मीयता एवं प्रीतिपूर्वक करते हैं ।

इससे यह सिद्ध होता है कि महाकवि भवभूति का जन्मस्थान दक्षिणापथ में स्थित कोई पद्मपुर नामक स्थान रहा है।

वंश परम्परा—महाकवि भवभुति ने अपनी नाट्यकृतियों की प्रस्तावना में अपने वंशादि के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् विवरण दिया है। उन्होंने अपने वंशादि का परिचय सर्वाधिक महावीरचरित में दिया है। महावीरचरित की प्रस्तावना के अनुसार[48] उनके पूर्वज काश्यपगोत्र के ब्राह्मण थे। वे कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा में परम श्रद्धा रखते थे। ब्राह्मण भोज के समय अपनी उपस्थिति के द्वारा सम्पूर्ण पङ्क्ति को पवित्र कर देते थे। (पाङ्क्तपावन) वे वैदिक विधि के द्वारा पञ्चाग्नि में हवन करते थे। चरणगुरु (वेद की विशिष्ट शाखाओं के अध्येताओं के गुरु) थे। वे चान्द्रायण कृच्छ्र प्राजापत्यादि व्रतों के अनुष्ठाता और सोमयज्ञादि सम्पन्न कर सोमरस का पान करते थे। वे ब्रह्मवादी एवं ब्रह्म तत्त्व के उपदेष्टा उदुम्बर नामधारी ब्राह्मण थे।[49] वे श्रोत्रिय विप्र तत्त्व चिन्तन के निमित्त वेदादि शास्त्रों का अध्ययन अनुशीलन करते थे। यज्ञादि सत्कृत्यों एवं पूर्त (तड़ागादि निर्माण) कार्य के लिए धन का संग्रह करते थे। सन्तान प्राप्ति की इच्छा से ही परिणय में प्रवृत्त होते थे और तपस्या की ही इच्छा से आयु का आदर करते थे।[50]

इस पवित्र कुल में 'महाकवि' अभिधान के एक सुप्रतिष्ठित पुरुषरत्न हुए थे जिन्होंने वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उनकी पांचवीं पीढी में महाकवि भवभूति का जन्म हुआ। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का अभिधान नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। भवभूति ने अपने 'विद्वत्कुल' वाक्य (तर्कशास्त्र) एवं प्रमाण (पूर्वमीमांसा) प्रभृति शास्त्रों में विशिष्ट वैदग्ध्य प्राप्त किया।[51] जिसप्रकार ऋषियों में अङ्गिरा श्रेष्ठ माने जाते हैं उसी प्रकार परम हंसों में श्रेष्ठ यथार्थनामा ज्ञाननिधि इनके गुरु थे।[52]

महाकवि भवभूति के नाम के विषय में विद्वानों में वैमत्य हैं। इस वैमत्य का कारण स्वयं कविवर भवभूति के द्वारा अपने नाम के सम्बन्ध में प्रस्तुत 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम' यह वाक्यखण्ड है। महाकवि भवभूति ने इस वाक्य खण्ड का प्रयोग तीनों नाटकों की प्रस्तावना में किया है। 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः' पद की व्युत्पत्ति विभिन्न मनीषियों ने इस प्रकार की है—

(क) श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं यस्य सः। भवभूतिरिति व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम्। —त्रिपुरारि

(ख) श्रीः सरस्वती कण्ठे यस्य सः श्रीकण्ठः। तद्वाचकं पदं लाञ्छनं

चिह्नं यस्य सः । नाम्ना श्रीकण्ठः । प्रसिद्ध्या भवभूतिरित्यर्थः । जगद्धर ।

(ग) श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं नाम यस्य सः । 'लाञ्छनं नामलक्षणोः' इति रत्नमाला । पितृकृतनामेदम् ।......साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः । इति श्लोकरचनासन्तुष्टेन राज्ञा भवभूतिरिति ख्यापितः । —वीरराघव ।

(घ) श्रीकण्ठ इति पदं नाम लाञ्छनं व्यवहारः यस्य श्रीकण्ठाख्य इत्यर्थः । श्रीकण्ठस्य पदे पदावेव लाञ्छनं विरुदं यस्येति वार्थः । शिवपादाब्जनिरत इति यावत् ।......भवात् शिवात् भूतिः भस्म सम्पद् यस्य ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण विभूतिर्दत्ता, तदाप्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धो जात इति च परावरविदो विदन्ति । —घनश्याम

(ङ) श्रीः 'ऋचो यजूंषि सामानि सा हि श्रीः स्मृता सताम्' । इति श्रुत्युक्ता त्रयो लक्षणा वाक् कण्ठे यस्य सः श्रीकण्ठः इति पदं लाञ्छनं चिह्नं यस्य तथाभूतः । तत्कालिकैः जनैः भवभूतेः श्रीकण्ठपदेन व्यवह्रीयमाणत्वात् । —भट्ट जयकृष्ण श्रीकृष्ण घाटे ।

(च) 'कालिदासस्य दीपशिखेव भारवेरातपत्रमिव, माघस्य घण्टेव उत्तररामचरितप्रणेतुश्च भवभूतिरित्युपाधिश्चैवमेव संगच्छते' ।

—शेषराजशास्त्री

इसप्रकार भवभूति के टीकाकारों ने उनके नाम के प्रश्न को और अधिक जटिल बना दिया है । वे प्रायः भवभूति का नाम श्रीकण्ठ मानते हैं और इसके लिए यह तर्क देते हैं कि भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ था अतः पुत्र का नाम श्रीकण्ठ होना स्वाभाविक है । परन्तु उनका यह तर्क युक्ति-युक्त नहीं है क्योंकि कवि ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में 'भवभूति–र्नाम' पद का प्रयोग किया है, 'श्रीकण्ठोनाम' का नहीं । कवि ने भवभूति के साथ नाम पद का प्रयोग इतनी दृढ़ता से किया है कि वह कवि के अभिधान के रूप में भवभूति को ही लक्षित किया है । कवि के 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः' एवं 'भवभूतिर्नाम' पदों पर सहज में ही विचार करने पर उनका वास्तविक नाम भवभूति ही प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर भवभूति का उल्लेख हुआ है, श्रीकण्ठ का नहीं । श्री शेषराज शास्त्री ने जो यह तर्क दिया है कि कालिदासादि की दीपशिखादि उपाधि की तरह श्रीकण्ठ की उपाधि भवभूति है, युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि कालिदास भारवि एवं माघ की उपाधियों का प्रयोग उनके नाम के स्थान पर नहीं हुआ, फिर भवभूति के साथ ही ऐसा क्यों हुआ कि उनके वास्तविक नाम के स्थान पर औपाधिक अभिधान का प्रयोग होने लगा । श्री शास्त्री का उक्त मत कवि की भवभूति संज्ञा में बाधक न होकर साधक होने लगा है । तात्पर्य

यह है कि जिस प्रकार कालिदासादि की महत्त्वपूर्ण उपाधियाँ दीपशिखादि उनके वास्तविक नाम का स्थान नहीं ग्रहण कर सकीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि कवि का वास्तविक नाम भवभूति था और श्रीकण्ठ (अपने कण्ठ में सरस्वती को धारण करने वाला व्यक्ति) यह उपाधि रही होगी। कवि के द्वारा प्रयुक्त 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः' पद भी इसी भाव का व्यञ्जक है।

चित्सुखाचार्य ने तत्त्वप्रदीपिका में भवभूति और उम्बेक में एकत्व की ओर संकेत किया है।[53] माधव व्यङ्कटेश लेले भी इसी मत के समर्थक हैं।[54] शंकर पाण्डुरङ्ग पण्डित ने 'गउडवहो' की भूमिका में मालतीमाधव की एक प्राचीन प्रति के तृतीय अंक की पुष्पिका को उद्धृत कर भवभूति और उम्बेकाचार्य की एकता प्रतिपादित की है।[55] डा० पी० वी० काणे अनेक प्रबल प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि भवभूति और उम्बेक ये दो नाम एक ही व्यक्ति के हैं।[56] आचार्य बलदेव उपाध्याय इस प्रकार लिखते हैं–'यह तो माना जाने लगा है कि जिस प्रतिभाशाली विद्वान् ने नाटकों में अपना नाम भवभूति रखा, उसी ने मीमांसाशास्त्र के ग्रन्थों में अपना उम्बेक नाम दिया तथा उसी ने कालान्तर में भगवान् शंकराचार्य के द्वारा अद्वैत मत में दीक्षित होने पर सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रख्याति प्राप्त की। म० म० मिराशी[57] एवं डॉ० अयोध्याप्रसाद सिंह[58] भवभूति और उम्बेक दोनों को पृथक् मानते हैं। डॉ० गंगासागर राय लिखते हैं कि वर्तमान स्थिति में हम इतना ही कह सकते हैं कि भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति थे, पर सुरेश्वर और विश्वरूप के साथ भवभूति की एकता निश्चित नहीं है।[59]

समय–महाकवि भवभूति ने अपनी नाट्यकृतियों में अपने आश्रयदाता किसी राजा आदि की चर्चा नहीं की है। इसी प्रकार वे अपने समसामयिक या पुराने किसी कवि का नामोल्लेख भी नहीं करते, जिससे उनके समय निर्धारण में कुछ सहायता मिल सके। यह अवश्य है कि उनके जन्मस्थान एवं नाम के सम्बन्ध में जितना विवाद है उतना समय निर्धारण के सम्बन्ध में नहीं। उनके समय निर्धारण के सम्बन्ध में अन्तः साक्ष्य एवं बहिः साक्ष्य इतने स्पष्ट मिल जाते हैं कि उनके समय निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं रहती हैं। यहाँ हम अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर उनके स्थितिकाल पर विचार कर रहे हैं।

(क) अन्तः साक्ष्य–महाकवि भवभूति कविकुलगुरु कालिदासकी रचनाओं से प्रभावित हैं, अतः वे कालिदास के परवर्ती थे। 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्-गद्यस्य जीवितम्'[60] इस गद्य शैली का निर्वचन करने वाले दण्डी का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। भवभूति की नाट्यकृतियों में

उसी शैली में गद्य प्रस्तुत हुआ है। इस प्रकार भवभूति दण्डी के भी परवर्ती ठहरते हैं। महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रारम्भ में वासवदत्ता, सेतुबन्ध, भास, कालिदासादि प्रसिद्ध कृतियों तथा कवियों का उल्लेख किया है परन्तु वहाँ भवभूति की चर्चा नहीं की है। भवभूति यदि बाणभट्ट से पूर्ववर्ती या उनके समसामयिक होते तो बाणभट्ट उन्हें आदर्श कवियों की श्रेणी में अवश्य रखते। एतदतिरिक्त भवभूति ने कहीं-कहीं बाण के अनुकरण पर लिखा है। मालतीमाधव के अन्तिम अंकों में कादम्बरी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। कविवर बाणभट्ट का समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। इस समय तक भवभूति की स्थिति स्पष्ट नहीं होती है।

इन अन्तः साक्ष्यों की अपेक्षा बहिः साक्ष्य भवभूति के समय निर्धारण में अधिक सशक्त एवं निश्चयात्मक हैं।

बहिः साक्ष्य–काश्मीरी कवि कल्हण ने भवभूति को कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा का आश्रित माना है।[61] काश्मीर नरेश ललितादित्य ने यशोवर्मा को पराजित किया था।[62] श्री शंकर पाण्डुरङ्ग पण्डित ने ललितादित्य के राज्याभिषेक का समय ६९५ ई० माना है। राजतरङ्गिणी में ललितादित्य का शासनकाल ६९३ से ७३६ ई० माना है। यशोवर्मा के समसामयिक राजकवि वाक्पतिराज ने प्राकृतकाव्य 'गउडवहो' में एक सूर्यग्रहण का उल्लेख किया है जिसके दूसरे दिन ललितादित्य ने यशोवर्मा को पराजित किया था। डॉ० याकोवी ने इस ग्रहण की तिथि १४ अगस्त सन् ७३३ ई० निर्धारित की है। डॉ० याकोबी की यह गणना यशोवर्मा के राज्यकाल से मेल खाती हैं। डॉ० काणे 'गउडवहो' का रचनाकाल ७४० ई० के लगभग मानते हैं। राजकवि वाक्पतिराज ने 'गउडवहो' काव्य में महाकवि भवभूति के काव्यगुणों का अत्यधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि वे महाकवि भवभूति से विधिवत् परिचित एवं प्रभावित थे।[63] यह सिद्ध होता है कि महाकवि भवभूति ने 'गउडवहो' से पूर्व ही अपनी नाट्यकृतियों की रचना कर ली थी। आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकारसूत्र में महाकवि भवभूति के पद्यों को अवतरित किया है। वामन का समय ८ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। आचार्य धनञ्जय ने, जिनका समय १० वीं शताब्दी है, अपने दशरूपक में भवभूति के तीनों नाटकों से अनेक उदाहरण दिये हैं। आचार्य मम्मट ने भी अपने काव्यप्रकाश में भवभूति के पद्य दिये हैं। आचार्य मम्मट का समय ११०० ई. के लगभग है। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में मालतीमाधव से श्लोकों को उद्धृत किया है और अपनी कृति बालरामा-

यण में स्वयं को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार बतलाया है।[64] राजशेखर का समय दशम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। ये कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल के आचार्य थे। महेन्द्रपाल के ९०३ तथा ९०७ के कुछ अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इसी आधार पर राजशेखर का उक्त समय निश्चितप्राय है। आचार्य महिमभट्ट ने अपने व्यक्तिविवेक नामक ग्रन्थ में उत्तररामचरित के दो श्लोक उद्धृत किये हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी अपनी कृतियों में भवभूति के पद्यों को सादर उद्धृत किया है। इन दोनों ही आचार्यों का स्थितिकाल ११ वीं शताब्दी है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि ८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ११ वीं शताब्दी तक और उसके अनन्तर भी अनेक कवियों ने महाकवि भवभूति का किसी न किसी रूप में स्मरण किया है अतः भवभूति का समय ७ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर ८ वीं शताब्दी के मध्य भाग तक निश्चित होता है। मैक्समूलर, मैक्डानल, बेवर, विन्सेण्टस्मिथ प्रभृति पाश्चात्य विपश्चित् भी भवभूति का समय यहीं मानते हैं।[65] अतएव महाकवि का स्थितिकाल ७ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से ८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक निश्चित हो जाता है।

राजाश्रय–भोजप्रबन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि महाकवि भवभूति धाराधीश राजा भोज की सभा में विद्यमान थे। परन्तु इस कथन में तथ्य नहीं है क्योंकि बल्लाल ने भोजप्रबन्ध में ऐसे अनेक महाकवियों को राजा भोज की सभा में उपस्थित कर दिया है जिनके स्थितिकाल में शताब्दियों का अन्तर है। आचार्य धनञ्जय ने कविवर भवभूति के अनेक पद्यों को अपने दशरूपक में उद्धृत किया है। इससे धनञ्जय का भवभूति से पूर्ववर्तित्व सिद्ध होता है। धनञ्जय का स्थितिकाल महाराज मुञ्ज के शासनकाल (९४७–९९४) ठहरता है। तैलपनरेश के द्वारा मुञ्ज की हत्या हो जाने पर सिन्धुराज सिंहासनासीन होते हैं और सिन्धुराज के अनन्तर भोजराज। राजा भोज का समय ११ वीं शताब्दी माना जाता है। इसप्रकार राजा भोज की सभा में भवभूति की स्थिति तर्कसंगत नहीं ठहरती। महामहोपाध्याय वी. वी. मिराशी अपने एक लेख में यह बतलाते हैं।[66] कि विदर्भ में वाकाटकों के पश्चात् मध्य प्रान्त में कलचुरी और तत्पश्चात् चालुक्यवंशीय राजाओं का शासन हो गया था। उस समय वहाँ छोटे-छोटे राजा शासन करने लग गये थे जो विद्वानों और कवियों को उनके अनुरूप सम्मान देने में असमर्थ रहे होंगे जिसके लिए भवभूति राजाश्रय के लिए पद्मावती, कन्नौज आदि स्थानों की ओर चले आये होंगे।

महाकवि भवभूति ने अपने नाट्ग्रंथों में किसी भी राजा का वर्णन नहीं किया है। यदि वे राजा के आश्रय में रहे होते तो किसी न किसी प्रकार से उसका स्मरण अवश्य करते। उन्होंने अपने नाटक की प्रस्तावना में कालप्रियानाथ की यात्रा में उनके अभिनीत होने की चर्चा की है। यहाँ भी किसी भी राजा की ओर प्रत्यक्ष या परोक्ष संकेत नहीं किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उन्हें किसी भी राजा का आश्रय नहीं प्राप्त हुआ था—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैव यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥[67]

मालतीमाधव के इस श्लोक से यह ध्वनित हो रहा है कि तत्कालीन समाज में उन्हें समाज में समुचित स्थान नहीं प्राप्त हुआ था तो वे किसी राजा के आश्रित रहे हों, यह सम्भव नहीं है। कविवर कल्हण अपनी राजतरंगिणी में यह स्पष्ट लिखते हैं कि महाकवि भवभूति कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा की सभा में विद्यमान थे। उपर्युक्त दो विरोधी तथ्यों के विद्यमान हो जाने पर यह निर्णय किया जा सकता है कि यह सम्भव हो सकता है कि महाकवि भवभूति ने जब अपने नाट्यग्रंथों की रचना की होगी तब उन्हें किसी भी राजा का आश्रय नहीं प्राप्त हुआ होगा परन्तु जब उनके नाटकों की कीर्तिकौमुदी महाराज यशोवर्मा तक विकीर्ण हो चुकी होगी तो उन्होंने भवभूति को अपनी सभा में सादर बुलाकर सम्मानित किया होगा।[68]

कार्यक्षेत्र—महाकवि भवभूति का जन्मस्थान विदर्भ प्रान्तान्तर्गत माना गया है। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा पद्मपुर में ही हुई होगी। डॉ. वेल्वलकर का अभिमत है कि भवभूति प्रारम्भिककाल में ही अपनी जन्मभूमि को छोड़कर अध्ययन के लिए अपने गुरुवर ज्ञाननिधि के समीप उज्जैन या पद्मावती चले गये थे।[69] यह तो निश्चितप्राय है कि भवभूति ने अपने जन्मस्थान का परित्याग किया था। प्राचीन समय में उज्जैन विद्या का केन्द्र रहा है। भवभूति ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में कालप्रियानाथ शब्द का प्रयोग किया है। सम्भव है कि उज्जैन नगर की विभूति ने भवभूति को नाटकों के प्रथम अभिनय प्रेरणा महाकाल की यात्रा में करने की दी हो। इससे भवभूति का उज्जयिनी में पहुँचना सिद्ध होता है। अधिकांश विद्वान् उज्जयिनी के महाकाल को ही कालप्रियानाथ मानते हैं। उनका यह भी अभिमत है कि भवभूति के तीनों नाटकों का प्रथम अभिनय उज्जयिनी में ही हुआ होगा। ऐसा मान लेने पर यह सिद्ध हो जाता है कि महाकवि भवभूति का अधिकांश

जीवन उज्जयिनी में ही व्यतीत हुआ होगा। माधव व्यङ्कटेश लेले का विचार है कि भवभूति के कालप्रियानाथ का आधुनिक रूप कालपी है।[70] शारदा-रञ्जनराय भी उत्तररामचरित की भूमिका में इसी बात का समर्थन करते है। महामहोपाध्याय वी. वी. मिराशी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि कालप्रिय में एक विशाल सूर्य का मन्दिर था जहाँ यात्रा के लिए दूरदेश से लोग आया करते थे उसी यात्रा के प्रसंग में भवभूति के नाटक अभिनीत हुए होंगे। कालपी से कन्नौज ७५ मील दूर है। कालपी में नाटकों के अभिनीत होने के पश्चात् उनकी कीर्तिकथा कन्नौज के सम्राट् यशोवर्मा की कर्णातिथि हुई होगी और तभी उन्होंने भवभूति को राजसभा में बुलाकर सम्मानित किया होगा।[71]

जयकृष्ण श्रीकृष्ण घाटे लिखते हैं कि भगवान् शिव कालप्रियनाथ नाम से भवभूति के निवासस्थान पद्मपुर में ही विद्यमान थे। पण्डित प्रवर घनश्याम ने उत्तररामचरित की टीका में वासन्ती के द्वारा उपन्यस्त 'हन्त मातर्जीवाम' की टीका में लिखा है 'यह द्राविड स्त्री की स्वभावोक्ति है,' ऐसा कहकर कवि ने अपना द्राविडत्व सूचित किया है। इसी प्रकार तृतीय और षष्ठ अङ्कों में भी वे भवभूति को द्राविड देश से सम्बद्ध बतलाते हैं। महाकवि भवभूति ने मालतीमाधव के नवम अङ्क के विष्कम्भक में पद्मावती का सुरुचि-पूर्ण वर्णन किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अपने जीवन का कुछ भाग पद्मावती में अवश्य व्यतीत किया होगा।

(घ) **महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व**—महाकवि भवभूति संस्कृत रूपक साहित्य के कवियों की प्रथम श्रेणी में पाङ्क्तेय हैं। उन्होंने अपने अनुपम वैदुष्य एवं नैसर्गिकी प्रतिभा के द्वारा सुरभारती का साज-शृंगार किया है। उनका रससिक्त वाङ्मय युगयुगों से सहृदयों को अनिवर्चनीय आनन्द से आप्यायित करता आ रहा है। वैदिककाल से लेकर अपने समय तक के जिन चिरन्तन एवं शाश्वत भावों को वे चित्रित कर गये हैं, वे सदैव जीवन्त बने रहेंगे। उनके नाटकों में जीवन की समस्त अनुभूतियों को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे वस्तुतः सहृदयता, सौन्दर्य एवं प्रेम के कला प्रधान कवि हैं। उन्होंने मानव जीवन की अनुभूति का सशक्त एवं सजीव अनुवचन कर पूर्ण सौन्दर्य की प्रभुता से परिपूर्ण जीवन उसके हृद्य तत्त्वों को ऐन्द्रिय आलोक में प्रेषित कर उन्हें रससम्पृक्त पदावली में प्रस्तुत कर सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे संस्कृतरूपकक्षेत्र में अपनी बहुमुखी प्रतिभा, अद्भुत काव्यकला, सरस रसव्यञ्जना एवं मौलिक उद्-भावना शक्ति के द्वारा कहीं-कहीं कालिदास के समीप और कहीं-कहीं उनसे भी

आगे बढ़ जाते हैं। वे अद्वितीय शब्द शिल्पी और व्यञ्जना व्यापार के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्होंने इन दोनों ही कलाओं के द्वारा अपनी कवितावनिता की विभूति को प्रोद्भासित किया है। उनकी समस्त नाट्ययोजनायें नाटकों की सिद्धि के लिए हैं।

महाकवि भवभूति में अगाध पाण्डित्य और असाधारण प्रतिभा का मणिकाञ्चन योग है। इसके द्वारा उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में नयी सरणियों की सृष्टि की है। वे वेदवेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्हें वेद वेदाङ्गादि विषयों में प्रवृत्ति उनके पूर्वजों से विरासत में मिली है। उत्तम कुल में जन्म होने से बुधवर ज्ञाननिधि जैसे गुरुवर के सान्निध्य से, तपः पूत सदाचार से, अद्वितीय वैदुष्य और विलक्षण प्रातिभचक्षु से उनके व्यक्तित्व में अप्रतिम निखार आ गया है। उनके रूपकों के अनुशीलन से उनके विलक्षण व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। वे स्वभाव से अत्यन्त ही उदार एवं गम्भीर प्रतीत होते हैं। अपनी नाटककृतियों के लिए वे पूर्ववर्ती कवियों के ऋणी हैं। अतः उत्तररामचरित की नान्दी के द्वारा उनका स्तवन कर आनन्दानुभूति करते हैं।[72]

उन्हें अपने वैदुष्य एवं प्रतिभा पर पूर्ण निष्ठा है अतएव वे बिना किसी हिचकिचाहट के लिख देते हैं कि यह देवी सरस्वती जिन ब्राह्मण (भवभूति) की वशवर्तिनी की तरह अनुसरण करती है।[73] उन्हें इसका हार्दिक क्लेश है कि सर्वथा समुचित व्यवहार करने पर भी अवचनीयता नहीं रह सकती है। उन्हें पुरातन ऋषियों पर अगाध श्रद्धा है। वे लिखते हैं कि लौकिक महापुरुषों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है परन्तु आद्य ऋषियों की वाणी का अर्थ स्वयं अनुसरण करता है।[74] उनका दाम्पत्य प्रेम का आदर्श सर्वोपरि है। अहेतुक पक्षपात की कोई प्रतिक्रिया नहीं है। प्रेम के लिए बाह्य हेतुओं की अपेक्षा नहीं है। पति-पत्नी के उत्कृष्ट प्रेम के चित्रण में वे अनुपमेय हैं। उनके कारुणिक भाव कठोर प्रस्तर को भी पिघला देते हैं और वज्र को भी खण्ड-खण्ड कर देते हैं। उनका वात्सल्यभाव भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। अपत्य को उन्होंने दम्पति की आनन्दग्रन्थि के रूप में उपन्यस्त किया है।

कर्तृत्व—काव्य में नाटक को रमणीय माना गया है (काव्येषु नाटकं रम्यम्)। काव्य के श्रव्य स्वरूप की अपेक्षा दृश्यस्वरूप अधिक कलात्मक एवं हृदयस्पर्शी होता है। कविकुलगुरु कालिदास इसे भिन्न रुचि वाले लोगों का एक समाराधन बतलाते हैं।[75] यही कारण है कि महाकवि भवभूति ने अपनी कला को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए प्रतिभावल्लरी का वपन

आनन्दनिष्यन्दिरूपकों में किया है जिससे वह पल्लवित एवं पुष्पित होती हुई सहृदयों को मधुर मकरन्दरस प्रस्तुत करती है और जनसामान्य को भी परमविश्रान्ति प्रदान करती है।

महाकवि भवभूति की अब तक तीन नाटक कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं–

१. मालतीमाधव (प्रकरण)

२. महावीरचरित (नाटक)

३. उत्तररामचरित (नाटक)

इनके अतिरिक्त सुभाषित ग्रन्थों में भवभूति के नाम से कुछ ऐसे पद्य पाये जाते हैं जो कि उनके उक्त नाटकों में नहीं आये हैं। उनके इन पद्यों में वर्ण्यविषय वैविध्य है। भाषाशैली की दृष्टि से ये पद्य भवभूति के ही लगते हैं। उदाहरण के लिए कतिपय पद्य प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) किं चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया,
करोति गोभिः कुमुदावबोधनम्।
स्वभाव एवोन्नतचेतसां सतां,
परोपकारव्यसनं हि जीवितम्॥

–गंगाधर भट्ट, रसिकजीवन ३।६५

(ख) देवाद्यदि तुल्योऽभूद् भूतेशस्य परिग्रहः।
तथापि किं कपालानि तुलां यान्ति कलानिधेः॥

–शार्ङ्गधरपद्धति, ७४९

(ग) अतिपटलैरनुयातां सहृदयज्वरं विलुम्पन्तीम्।
मृगमदपरिमललहरी समीर पामरपुरे किरसि॥

वही, ७९१

(घ) निस्ससार करघातविदीर्णध्वान्तदन्तरुधिरारुणमूर्तिः।
केसरीव कटकादुदयाद्रेरंकलीनहरिणो हरिणांकः॥

सदुक्तिकर्णामृत १।८०।२

(ङ) भुवां धर्मारम्भे पवनचलितं तापहतये
पटच्छत्राकारं वहति गगनं धूलिपटलम्।
अमी मन्दराणां दवदहनसन्देहितधियो
न ढौकन्ते पातुं झटिति मकरन्दं मधुलिहः॥

–सदुक्तिकर्णामृत २।१५७।१।

इन पद्यों के अतिरिक्त भवभूति के नाम से हमें कतिपय ऐसे पद्य प्राप्त होते हैं जो हमें भवभूति की लुप्त रचनाओं पर विचार करने के लिए बाध्य

कर देते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक का अवलोकन करें—

गाढग्रन्थिप्रफुल्लदगल—विफलफणापीठनिर्यद्विषाग्नि—
ज्वालानिष्ठप्तचन्द्रद्रवदमृतरसप्रोषितप्रेतभावाः ।
उज्जृम्भा बभ्रुनेत्रद्युतिमसकृदसृक्कृष्णालोकयन्त्यः,
पान्तु त्वां नागनालग्रथितशवशिरः श्रेणयो भैरवस्य ॥ १।१३।२।

यह श्लोक भाषा-शैली की दृष्टि से भवभूति विरचित ही प्रतीत होता है। महाकवि भवभूति ने अपने मालतीमाधव प्रकरण में 'चूडापीडकपाल' इत्यादि पद्य की इसी प्रकार रचना की है। उसमें भी कवि ने 'पान्तु त्वाम्' का प्रयोग किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि भवभूति ने मालतीमाधव के सदृश ही किसी नाटक की रचना की होगी। सदुक्ति-कर्णामृत में इसी प्रकार का एक और नान्दीपरक श्लोक प्राप्त होता है—

वैकुण्ठस्य करङ्कपङ्कनिहितं स्रष्टुः कपालं करे
प्रत्यङ्गं च विभूषणं विरचितं नाकौकसां कीकसैः ।
यस्य स्थावरजङ्गमस्य जगतः शुभ्रं तनौ बिभ्रतः
कल्पान्तेषु कपालिनो विजयते रौद्रं कपालव्रतम् ॥

—सदुक्तिकर्णामृत १।१८।३

भवभूति के इस अप्राप्य नाटक की पुष्टि शार्ङ्गधरपद्धति में प्रस्तुत निम्नलिखित श्लोक से भी होती है—

निरवद्यानि पद्यानि यदि नाट्यस्य का क्षतिः ।
भिक्षुकक्षाविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत् ॥

—शार्ङ्गधरपद्धति, १४७

इस श्लोक में प्रयुक्त नाट्य पद से यह ध्वनित होता है कि शार्ङ्गधर ने इस श्लोक को महाकवि भवभूति के नाटक से उद्धृत किया है।

भवभूति के अनेक टीकाकारों का कथन है कि उन्हें निम्नलिखित श्लोक के द्वारा भवभूति की उपाधि प्राप्त हुई थी—

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव ।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूति-सिताननौ ॥

सदुक्तिकर्णामृत में यह श्लोक इस पाठान्तर के साथ प्रस्तुत किया गया है—

कां तपस्वी गतोऽवस्थामिति स्मेराविव स्तनौ ।
वन्दे गौरीघनाश्लेषभवभूतिसिताननौ ॥

—सदुक्तिकर्णामृत १।२२।४

प्राचीन टीकाकारों के उक्त मत से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि भवभूति ने इन प्रसिद्ध तीन नाटकों के पूर्व किसी नाटक की रचना अवश्य की होगी जिसमें सम्भवतः उन्होंने यह पद्य उपन्यस्त किया होगा, क्योंकि कवि ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावनाओं में भवभूति पद का प्रयोग किया है। कतिपय विद्वानों का अभिमत है कि उन्होंने 'गाढग्रन्थि' इस मंगलाचरण-परक श्लोक से किसी महाकाव्य की रचना की होगी और उसी में 'तपस्वी काम्' इत्यादि श्लोक का प्रयोग किया होगा, जिससे उन्हें भवभूति की उपाधि मिली होगी। परन्तु महाकवि भवभूति के द्वारा महाकाव्य की रचना का समर्थन शार्ङ्गधरपद्धति का 'निरवद्यानि पद्यानि' इस श्लोक के द्वारा नहीं होता है। पुनश्च 'गाढग्रन्थि' इत्यादि श्लोक भवभूति के मालतीमाधव प्रकरण का नान्दी से सादृश्य रखता है। अन्यच्च संस्कृत साहित्य में विरचित महाकाव्यों का प्रारम्भ स्रग्धरा जैसे बड़े छन्दों से नहीं हुआ है और इसके विपरीत अनेक नाटक स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित छन्दों से प्रारम्भ हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि महाकवि भवभूति का अप्राप्य ग्रन्थ महाकाव्य न होकर कोई नाटक ही रहा है। इसके अतिरिक्त नाटकों की नान्दी में एक से अधिक श्लोकों के द्वारा मंगलाचरण की परम्परा रही है। जबकि महाकाव्यों में प्रायः एक ही श्लोक के द्वारा इष्टदेवता का स्तवन हुआ है। या फिर वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण हुआ है। उदाहरण के लिए रघुवंश, किराता-र्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित आदि महाकाव्य तथा अभिज्ञान-शाकुन्तल, मृच्छकटिक, वेणीसंहार, रत्नावली आदि नाटकों को देखा जा सकता है। सदुक्तिकर्णामृत में भवभूति की कृति से उद्धृत दो श्लोक प्रस्तुत किये गये हैं जो कि मंगलाचरणात्मक हैं। इन उपर्युक्त कारणों से तथा श्लोकों की प्रकृति से यह निश्चितप्राय है कि प्राप्य तीन नाटकों से भिन्न महाकवि भवभूति की यदि अन्य कोई रचना रही है तो वह नाटक ही सिद्ध होती है। परन्तु प्रामाणिक सामग्री के अभाव में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि महाकवि भवभूति ने किसी अन्य प्रसिद्ध नाटक की रचना की होगी। हाँ, उनके नाम से प्राप्य पद्यों के द्वारा उनके किसी अज्ञात नाटक की कल्पना अवश्य की जा सकती है।

सन्दर्भ-

१. काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास कारिका २
२. नाट्यशास्त्र १।११४
३. आनन्दनिष्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय ।।
दशरूपक १/६
४. देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।।
मालविकाग्निमित्र १/४
५. इहाऽनुश्रूयते ब्रह्मा शक्रेणाऽभ्यर्थितः पुरा।
चकाराऽऽकृष्य वेदेभ्यो नाट्यवेदं तु पञ्चमम् ।।
उपवेदोऽथ वेदाश्च चत्वारः कथिताः स्मृतौ।
तत्रोपवेदो गान्धर्वः शिवनोक्तः स्वयम्भुवे ।।
तेनाऽपि भरतायोक्तस्तेन मर्त्ये प्रचारितः।
शिवाऽब्जयोनिभरतास्तस्मादस्य प्रयोजकाः ।।
—शुभङ्करप्रणीत सङ्गीतदामोदर
शेषराजशर्मा रेग्मी के द्वारा सम्पादित उत्तररामचरित की भूमिका से उद्धृत।
६. एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवः ।।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।। —नाट्यशास्त्र १।१५-१६
७. उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगामन्नाट्यवेदं विरञ्चि-
श्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः।
शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म कः कर्तुमीष्टे
नाट्यानां किन्तु किञ्चित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि ।।
दशरूपक १।४
८ संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय पृ. ८६
९. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय
१०. दि ड्रामाज एण्ड ड्रामाटिक डान्सेज आव नान यूरोपियन रेसेज—

विलियम रिजवे, पृ. १६३।

११. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय पृ. ८७

१२. वही,

१३. वही,

१४. वही,

१५. हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर—वेबर पृ. २०७

१६. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर—आर० बी० जागीरदार पृ. ४२–४३

१७. नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं·········।—यजुर्वेदसंहिता ३०।६१

१८. नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः ।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धनो राष्ट्रवर्धनाः ॥
—वाल्मीकिरामायण २।६७।१५।

१९. वादयन्ति तथाशान्ति लासयन्त्यपि चापरे ।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ॥
—वाल्मीकिरामायण २।६९।४।

२०. इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा । —महाभारत १।५१।१५।

२१. आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः । —महाभारत २।१५।१४।

२२. रम्भाभिसारं कौबेरं नाटकं ननृतुस्ततः ।
शूरो रावणरूपेण रम्भावेषं मनोवती ॥
—हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व ९३।२८।

२३. कदाचित् काव्यसंलापगीतनाटकसम्भवैः ।
—मार्कण्डेयपुराण २०।४ (२)।

२४. (क) पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ।—अष्टाध्यायी ४।३।११०।
(ख) कर्मन्दकृशाश्वादिनिः —तत्रैव ४।३।१११।

२५. ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति । —महाभाष्य

२६. 'एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिक-चारणास्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियो गूढजीवाश्च व्याख्याताः'
—कौटिल्य-अर्थशास्त्र-टीकाकार पं० रामतेज शास्त्री द्वितीय अधिकरण, अध्याय २७, पृ. २०१।

२७. कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः ।
—कामसूत्रम्—वात्स्यायन, १।४।२८।

२८. 'प्रभातरलं' से शकुन्तला की असाधारण गौरद्युति की वर्णव्यञ्जना की गयी, उसमें मनुष्य या देवता की नहीं, आकाशचारिणी अप्सरा

की सौन्दर्यदीप्ति है, इसलिए अलौकिक है ।

—परिक्रमा—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

२९. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

—प्रसन्नराघव अङ्क १। श्लोक २२

३०. उत्तररामचरित ३।१७

३१. अभिज्ञानशाकुन्तल ४।१४

३२. उत्तररामचरित ३।२१

३३. अभिज्ञानशाकुन्तल ४।६

३४. उत्तररामचरित ३।२४

३५. अभिज्ञानशाकुन्तल ४।६

३६. उत्तररामचरित ३।३६

३७. वही ३।३८

३८. अभिज्ञानशाकुन्तल ४।२१

३९. उत्तररामचरित ३।३३

४०. डॉ० शिवबालक द्विवेदी द्वारा सम्पादित उत्तररामचरित परिशिष्ट से उद्धृत । पृ. ५३१

४१. 'पद्मनगरं पद्मावती'—मालतीमाधव जगद्धरटीका पृ. ७

४२. Cunningham Archaeological Report for 1962–5, Vol. II P. 307–8

४३. Archaeological Survey of India : Report for 1915–1916 P. 101–103

४४. मालतीमाधव—सार आणि विचार, पृ. ५ ।

४५. सह्याद्रि, वा० वि० मिराशी लेख-मई, १९३५ ।

४६. भवभूति-वा० वि० मिराशी पृ. ३७–४३ ।

४७. उत्तररामचरित—डॉ० काणे प्राक्कथन, पृ. ७–८ ।

४८. अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम् । तत्र कैश्चित् तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवाःपंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति ।

४९. अग्रयाः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियाऽन्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ॥

वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ।
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥
—मनुस्मृति ३।१८४–१८६ ॥

५०. ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरि श्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते ।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः ॥
—मालतीमाधव १।५।

५१. तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविमित्रधेयमस्माकमिति भवन्तो विदांकुर्वन्तु ।
—महावीरचरित-प्रस्तावना

५२. श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथाङ्गिराः ।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥ —महावीरचरित १।५

५३. तत्त्वप्रदीपिका (निर्णयसागर, १९१५) पृ. २६५

५४. मालतीमाधवसार आणि विचार, पृ. ८४ ।

५५. इति श्रीकुमारिलशिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोऽङ्कः, इतिकुमारिलस्वाभिप्रसादप्राप्तवाग्वैभवश्रीमदुम्वेकाचार्य-विरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्कः ।'

Introduction to gaudvaha, P.cc vi. S. P. Paudit.
History of Dharmshastra Vol. V. P. 1194, 1198.

५६. संस्कृत सुकवि समीक्षा (प्र० सं०१९६३) पृ. ३२२ ।

५७. डॉ० मिराशी : भवभूति (पृ. ८२–९९) ।

५८. डॉ० अयोध्याप्रसाद सिह : भवभूति और उनकी नाट्यकला (पृ. १७) ।

५९. डॉ० गंगासागर रायः महाकवि भवभूति पृ. १७ ।

६०. काव्यादर्श १।८० ।

६१. राजतरङ्गिणी ४।१४४ ।

६२. वही ४। १३४ ।

६३. भवभूइ जलहिणिग्गदकव्वामयरसकणा इव फुरन्ति ।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु ॥
—गउडवहो पद्य ७९९।

६४. बभूव वाल्मीकिभवः पुरा कविः ततः प्रदेपे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥
—बालरामायण १।१६ ।

६५. Max–Muller : India, What can it teach us. P. 332–335.
Macdonnel–History of Sanskrit literature, P. 363.
Weber–Indian literature, P. 222.
Vincent Smith–Eearly History of India. P. 308

६६. डॉ० वी. वी. मिराशी–भवभूति का जन्मस्थान (लेख)।

६७. मालतीमाधव १।६।

६८. कविवाक्पतिराज श्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥
–राजतरङ्गिणी ४।१४४।

६९. S. K. Belvalkar–Rama's Later History, Introduction P. x x x vii.

७०. मालतीमाधव सार आणि विचार पृ. ९८।

७१. म० म० वी० वी० मिराशी–भवभूति, पृ. १९०–१०५ तथा संशोधन मुक्तावलि (भाग १) भवभूतीच्या नाटकातील कालप्रियनाथ पृ. ६५–१०३।

७२. उत्तररामचरित १।१।

७३. वही १।२।

७४. वही १।१०।

७५. देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं,
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते,
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥
–मालविकाग्निमित्र १।४।

द्वितीय अध्याय

महाकवि भवभूति के नाटकों में रसध्वनि

रस का स्वरूप एवं भेद

भारतीय काव्यमनीषियों ने रसतत्त्व को अत्यधिक महत्त्व दिया है। कतिपय आचार्य तो रस को काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठापित करते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में जो विभिन्न वाद प्रचलित हुए हैं उनमें ध्वनिवाद और रसवाद ही अधिक प्रतिष्ठित हुए हैं। रस वस्तुतः एक आनन्दमयी अनुभूति है।

रसस्वरूप के विषय में भारतीय समीक्षाशास्त्र का मेरुदण्ड आचार्य भरतरचित यह रस सूत्र है—"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।" इसका सामान्य भाव यह है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार पदार्थों के संयोग से षड्रसों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार नाना भाव वाले स्थायिभाव रसत्व को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार स्थायिभाव ही विभिन्न भावों से संस्कृत होकर रसरूपता को प्राप्त करते हैं।[1]

उपर्युक्त रससूत्र में प्रयुक्त संयोग और निष्पत्ति ये दो शब्द अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। विभिन्न आचार्यों ने इन्हीं दो शब्दों के आधार पर रससिद्धांत की समीक्षा की है। संयोग शब्द का अर्थ अधिकांश विद्वान् किसी भी स्थायिभाव के अनुकूल विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों का सम्मिलन मानते हैं। निष्पत्ति शब्द का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है। भट्टलोल्लट निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति मानते हैं। उनके अनुसार अनुकर्त्ता नट में रस की उत्पत्ति होती है। श्रीशंकुक निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति मानते हैं। उनके अनुसार दर्शक विभावादि के द्वारा नट में रस का अनुमान करता है। भट्टनायक निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति मानते हैं और उनके अनुसार दर्शक विभावादि के संयोग से रस का भोग करता है। आचार्य अभिनव गुप्त

निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति करते हैं। ये रस को ध्वनि का एक भेद मानते हैं। इनके अनुसार रस व्यंग्य है। रस व्यंजना शक्ति के द्वारा अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार विभावादि रस के व्यञ्जक हैं और रस व्यंग्य हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार रस का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है—

'लौकिक कारण, कार्य, सहकारी के जो प्रतिबिम्ब आत्मरूप सामाजिक के चित्त पर आहित होते और अपना असाधारण्य खोकर सामाजिक की चित्त-वृत्तियों को जगाते हैं अतएव केवल काव्य तक सीमित विभाव, अनुभाव और सञ्चारी नाम से पुकारे जाते हैं, उनके परस्पर में सम्मिलित रूप में हुए अनुभव से उद्बुद्ध और परिपुष्ट जो सामाजिक के हृदय की रति आदि स्थायी वृत्ति, उसी का उन विभावादि के साथ जो अनुभव, वही है रस।'[2]

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है—

१. जिस स्थायिभाव का सामाजिक अनुभव करता है वह उसका स्वयं का होता है।

२. विभावादि भी (विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भी) सामाजिक की ज्ञान रूपी चित्तवृत्ति ही हैं।

३. सामाजिक की चित्तवृत्ति में विभाव तभी आता है जब उससे असाधारण्य हट जाता है। तात्पर्य यह है कि जब सामाजिक के चित्त से शकुन्तलादि के विषय में दुष्यन्त पत्नीत्व आदि का भान हट जाता है तभी शकुन्तला सामाजिक के चित्त की स्थायी वृत्ति को जगा पाती है। वस्तुतः विभाव तभी विभाव बन पाता है जब वह असाधारण्य से हट जाता है।

४. विभावादि को लोकाश्रित वस्तु नहीं माना जा सकता। वस्तुतः विभावादि कलात्मक विश्व की वस्तुएँ हैं।

५. जो विभावादि सामाजिक की रति आदि स्थायी वृत्तियों को जगाते हैं वे जगाने के पश्चात् उस स्थायी के साथ बने भी रहते हैं अतएव इन्हें व्यञ्जक माना जाता है।

६. इस सम्बन्ध में सामाजिक का स्वरूप सर्वाधिक महत्त्व रखता है। सामाजिक से तात्पर्य है उस व्यक्ति की जीवात्मा जो काव्य पढ़ रहा है या नाटक देख रहा है। जीवात्मा का अर्थ है सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा और सूक्ष्म शरीर का अर्थ है एकादश इन्द्रियों, पाँच तन्मात्राओं, मन और बुद्धि का समुदाय। इस प्रसङ्ग में उस मन का ग्रहण है जिसमें शृंगार आदि की वासना काव्यपाठ के पूर्व से विद्यमान है और जिसमें यह अनुमान योजना भी विद्यमान है कि अमुक चेष्टा में समक्ष स्थित व्यक्ति की अमुक भावना निहित है। यह अनुमान वस्तुतः बुद्धि का फल है। इस प्रकार रसानुभव के लिए लोक,

अनुमान, चित्तवृत्ति और आत्मचैतन्य इन चारों की आवश्यकता है।

विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव ये रस के प्रमुख तीन अङ्ग हैं। इन सबके सामान्य गुणयोग के द्वारा ही रस की निष्पत्ति होती है।[3]

विभाव–जो हृदय में विद्यमान रति आदि स्थायिभावों का विभावन कराता है उसे विभाव कहते हैं। इस विभाव के आलम्बन एवं उद्दीपन ये दो भेद हैं।[4]

(क) आलम्बन विभाव–आलम्बन विभाव उन्हें कहते हैं जो आलम्बन के द्वारा रस की निष्पत्ति कराते हैं अर्थात् जिसके आलम्बन से रस की निष्पत्ति होती है।[5] जैसे–मालती और माधव अन्योन्य के प्रति आलम्बन होते हुए भी नाट्यशिल्प में दोनों ही प्रेक्षक के प्रति आलम्बन बनते हैं।

(ख) उद्दीपन विभाव–उद्दीपन विभाव उन्हें कहते हैं जो रस को उद्दीपित करते हैं।[6] जैसे–देश, काल, चन्द्र, चन्दन, उद्यान, कोकिलालाप, भ्रमर-झंकृति आदि उद्दीपन विभाव हैं।

अनुभाव–भाव जागृति के पश्चात् होने वाले अङ्गविकारों को अनुभाव कहते हैं। (अनुपश्चात्भावः = उत्पत्तिः यस्य सः अनुभावः) सीता आदि आलम्बन और चन्द्रादि उद्दीपन कारणों से रामादि के हृदय में उद्बुद्ध रति आदि को बाहर प्रकाशित करने वाला लोक में जो रति का कार्य कहलाता है वही काव्य में अनुभाव कहलाता है।[7] ये अनुभाव भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि आलम्बन के शारीरिक विकारों के रूप में प्रकाशित होते हैं।

व्यभिचारिभाव–वाक्, अङ्ग और सत्त्व के द्वारा रसानुकूल सञ्चरण करने वाले विविध भावों को व्यभिचारी या सञ्चारिभाव कहते हैं।[8] स्थिरता से विद्यमान रति आदि स्थायिभाव में आविर्भूत एवं तिरोभूत होकर निर्वेदादि भाव अनुकूलता से व्याप्त होते हैं अतएव विशिष्ट प्रकार से आभिमुख्य चरण के कारण इन्हें व्यभिचारिभाव कहते हैं।[9] ये समुद्र में तरंगों की तरह स्थायिभाव में उदय और विलय को प्राप्त होते रहते हैं।[10] निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता आदि व्यभिचारिभाव हैं।

स्थायिभाव–मानव मन की सूक्ष्म संवित्तियों से सम्बन्धित या वासना-रूप से प्रमाता के चित्त में सदैव रहने वाले भावों को स्थायिभाव कहते हैं। ये स्थायिभाव अपने विरोधी और अविरोधी किसी भी भाव से नष्ट नहीं होते।[11] ये स्थायिभाव दूसरे भावों को अपने में अन्तर्हित कर लेते हैं। आचार्य भरत ने इनकी संख्या आठ मानी है परन्तु कतिपय आचार्य इनकी संख्या नौ–दश तक मानते हैं। ये इस प्रकार हैं–रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, विस्मय, जुगुप्सा, भय और निर्वेद।

रस भेद–आचार्य भरत अपने नाट्यशास्त्र में आठ रसों की गणना करते हैं।[12] कविकुलगुरु कालिदास भी विक्रमोर्वशीय में आठ रसों की ओर ही संकेत करते हैं।[13] ये आठ रस इस प्रकार हैं–शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत। आचार्य भरत के अनुयायी काव्य-शास्त्रियों का अभिमत है कि भरत शान्त को रस के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करते और वे राम अथवा निर्वेद को स्थायिभाव के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भरत से लेकर दण्डी तक काव्यशास्त्र में आठ ही रस मान रहे हैं। शान्त रस का सर्वाधिक विरोध करने वालों में आचार्य धनञ्जय, धनिक आदि प्रमुख हैं। परन्तु यह मान्यता बहुत समय तक प्रतिष्ठित नहीं हो पाती और कालान्तर में काव्य और नाटक में भी शान्त रस को प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। आचार्य उद्भट[14] ऐसे प्रथम काव्याचार्य हैं जो नौ रसों की गणना करते हैं। यद्यपि आचार्य अभिनव-गुप्त रसों की संख्या के विषय में विशेष चर्चा नहीं करते तथापि वे शान्त रस को नाट्य और काव्य दोनों में ही मानते हैं। अभिनव गुप्त ने यह भी संकेत किया है कि कतिपय विद्वान् तीन और रसों की कल्पना करते हैं–स्नेह, वात्सल्य और भक्ति रस। परन्तु वे इनकी पृथक् सत्ता नहीं मानते।[15] आचार्य मम्मट भी शान्त को नवम रस के रूप में स्वीकार करते हैं।[16] आचार्य आनन्दवर्धन अपने ध्वन्यालोक में शान्त रस की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–'तदेवमस्ति शान्तो रसः।'[17] वे इसका स्थायिभाव तृष्णाक्षय सुख या निर्वेद मानते हैं।[18] आचार्य विश्वनाथ वात्सल्य को भी रस मानते हैं।[19] परन्तु इसके विपरीत आचार्य मम्मट वात्सल्य और भक्ति रस को भावध्वनि में अन्तर्भूत कर लेते हैं।[20] वस्तुतः आचार्य मम्मट की यह मान्यता युक्तिसंगत है। यतोहि सहृदयों को किसी भी चित्तवृत्ति का आस्वाद चमत्कारजनक लग सकता है परन्तु यदि उनके आधार पर रस की गणना होने लगेगी तो रसों की संख्या अनन्त हो जायेगी।

शृंगार रस

कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को शृंग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति के कारण, प्रायः उत्तम प्रकृति से युक्त रस शृंगार कहलाता है। परस्त्री तथा अनुराग शून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकायें और दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन विभाव हैं। चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि उद्दीपन विभाव हैं। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेदादि इसके सञ्चारी भाव होते हैं। इसका स्थायिभाव रति है। वर्ण श्याम

है और इसके देवता विष्णु भगवान् हैं ।[21]

श्रृंगार रस के विप्रलम्भ और सम्भोग दो भेद हैं । जहाँ अत्युत्कट अनुराग के रहते हुए भी प्रियसमागम नहीं हो पाता वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार होता है ।[22] यह विप्रलम्भ पूर्वराग, मान, प्रवास, और करुण के भेद से चार प्रकार का होता है । सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका की समागम से पूर्व की दशा का नाम पूर्वराग है ।[23] कोप का नाम मान है । वह दो प्रकार का होता है–१. प्रणय से उत्पन्न और २. ईर्ष्या से उत्पन्न ।[24] कार्यवश, शापवश अथवा सम्भ्रमवश नायक के अन्य देश में चले जाने को प्रवास कहते हैं । उसमें नायिकाओं के शरीर और वस्त्रों में मलिनता, शिर में एक वेणी, निःश्वास, उच्छ्वास, रोदन एवं भूमिपतन आदि होते हैं ।[25] नायक और नायिका में से एक के मर जाने पर दूसरा जो दुःखी होता है उस अवस्था को करुण विप्रलम्भ कहते हैं । परन्तु यह तभी होता है जबकि परलोकगत व्यक्ति के इसी जन्म में इसी शरीर से पुनः मिलने की आशा है ।[26]

जहाँ एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त नायक और नायिका परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि करते हैं वह सम्भोग श्रृंगार कहलाता है ।[27]

हास्य रस

विकृत आकार, वाणी, वेष, और चेष्टा आदि के नाट्य से हास्य रस का आविर्भाव होता है । इसका स्थायिभाव हास है, वर्ण शुक्ल है और देवता प्रमथ (शिवगण) हैं । जिसकी विकृत आकृति, वाणी, वेश और चेष्टा आदि को देखकर लोग हँसें, वह यहाँ आलम्बन है और उसकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव है । नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना इस रस के अनुभाव हैं । निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि सञ्चारी भाव हैं ।[28]

करुण रस

इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुण नामक रस होता है । यह कपोत वर्ण होता है । इसके देवता यमराज हैं । इसका स्थायिभाव शोक है । विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन हैं । उसका दाहकर्म आदि उद्दीपन है । दैवनिन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवर्णता, उच्छ्वास, निःश्वास, स्तम्भ और प्रलाप इस रस में अनुभाव होते हैं । निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिन्ता आदि इसके व्यभिचारिभाव हैं ।[29]

शोक के स्थायी होने के कारण यह रस करुण विप्रलम्भ से भिन्न है ।

करुण विप्रलम्भ में पुनः समागम की आशा रहने के कारण रति स्थायी होती है।[30]

रौद्र रस

रौद्र रस में क्रोध स्थायिभाव होता है। इसका वर्ण रक्त और देवता रुद्र हैं। इसका आलम्बन शत्रु होता है और उसकी चेष्टायें उद्दीपन होती हैं। मुष्टि प्रहार, गिराना, विकृत ढंग से काटना, फाड़ना, युद्ध के लिए बेताब होना आदि से इस रस में प्रौढ़ता आती है। भृकुटिभंग, ओठ चबाना, ताल ठोंकना, डाँटना, अपनी वीरता की बड़ाई करना, शस्त्र घुमाना, उग्रता, आवेग, रोमाञ्च, स्वेद, वेपथु और मद इस रस के अनुभाव होते हैं। आक्षेप करना, क्रूरता से देखना, मोह और अमर्ष आदि इसके व्यभिचारिभाव हैं।[31]

युद्धवीर और रौद्र में भेद यह है कि रौद्र रस में नेत्र और मुख क्रोध के कारण लाल हो जाते हैं।[32]

वीर रस

उत्तम पात्र रामादि में आश्रित वीर रस होता है। इसका स्थायिभाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के समान होता है। इसमें जीतने योग्य (रावण आदि) आलम्बन विभाव होते हैं। उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव हैं, युद्ध के सहायक (धनुष आदि) का अन्वेषण आदि अनुभाव है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च आदि इसके सञ्चारी भाव हैं। यह दान, धर्म, दया और युद्ध के भेद से चार प्रकार का होता है।[33]

भयानक रस

भयानक रस का स्थायिभाव भय है। देवता काल, वर्ण कृष्ण और इसके आश्रय पात्र स्त्री और नीच पात्र आदि होते हैं। जिससे भय उत्पन्न हो, वह (सिंहादि) इसमें आलम्बन है और उसकी चेष्टायें उद्दीपन हैं। विवर्णता, गद्गद भाषण, मूर्च्छा, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, इधर-उधर देखना आदि इसके अनुभाव हैं। जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार, सम्भ्रम और मृत्यु आदि इसके व्यभिचारिभाव होते हैं।[34]

बीभत्स रस

बीभत्स रस का स्थायिभाव जुगुप्सा है। वर्ण नील और देवता महाकाल हैं। दुर्गन्धयुक्त मांस, रुधिर, चर्बी आदि इसके आलम्बन हैं और उन्हीं में कीड़े पड़ जाना आदि उद्दीपन है। थूकना, मुँह फेर लेना, आँख मींचना आदि अनुभाव हैं। मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि और मरण आदि व्यभिचारिभाव हैं।[35]

अद्भुत रस

अद्भुत रस का स्थायिभाव विस्मय है। देवता गन्धर्व और वर्ण पीत है। अलौकिक वस्तु इसका आलम्बन है और उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर, सम्भ्रम और नेत्रविकास आदि इसके अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, भ्रान्ति, हर्ष आदि इसके व्यभिचारिभाव हैं।[36]

शान्त रस

शान्त रस का स्थायिभाव शम है। आश्रय उत्तम पात्र, वर्ण कुन्दकुसुम और चन्द्र आदि के सदृश शुक्ल और देवता लक्ष्मीनारायण हैं। अनित्यत्व से सम्पूर्ण संसार की असारता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप इस रस में आलम्बन होता है। ऋषि आदिकों के पवित्र आश्रम, हरिद्वार आदि पवित्र तीर्थ, रमणीय एकान्त वन और महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव हैं। रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव हैं। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि इसके सञ्चारी भाव हैं।[37]

वत्सल रस

स्पष्ट रूप से चमत्कारक होने के कारण कोई-कोई आचार्य वत्सल को भी रस मानते हैं। इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि आलम्बन हैं। उनकी चेष्टा तथा विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव है। आलिङ्गन, अंगस्पर्श, शिर चूमना, देखना, रोमाञ्च, आनन्दाश्रु आदि अनुभाव हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि सञ्चारी भाव हैं। इसका वर्ण कमल-गर्भ के सदृश और ब्राह्मी आदि मातायें इसकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं।[38]

प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेद आदि सञ्चारी भाव और देवता, गुरु आदि के विषय में अनुराग तथा सामग्री के अभाव से रस रूप को अप्राप्त उद्बुद्ध मात्र रति, हास आदि स्थायी ये सब भाव कहलाते हैं।[39]

रस की ध्वनिरूपता

अलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनिवर्ग में रस, रसाभास, भाव, भावाभास, भाव-प्रशम, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता ये आठ भेद आते हैं। अलक्ष्य-क्रमव्यंग्य वस्तुतः रस पर ही निर्भर करता है। यहाँ यह विचारणीय है कि रसतत्त्व ध्वनिरूपता को किस प्रकार प्राप्त होता है। रस वस्तुतः अभिधा और लक्षणा के द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता। अभिधा शक्ति के द्वारा हमें वाच्यार्थ की और लक्षणा शक्ति के द्वारा लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है। हम व्यवहार में देखते हैं कि रस श्रृंगार, रति, भक्ति आदि शब्दों के प्रयोग

के द्वारा हमें रस और तज्जन्य आनन्द की अनुभूति नहीं होती। यदि वाचक शब्द के वाच्यार्थ के द्वारा रसानुभूति होती तो रस शब्द के उच्चारण मात्र से काव्यानन्द की अनुभूति होने लगती परन्तु ऐसा नहीं होता। लक्षणा के द्वारा हमें लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है परन्तु रसानुभूति के विषय में यह शक्ति भी विफल रहती है क्योंकि लक्षणा में मुख्यार्थबाध अनिवार्य है जबकि रसानुभूति के विषय में मुख्यार्थबाध सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रस को वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वह विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के द्वारा आस्वाद्य होता है।[40] इस प्रकार हम देखते हैं कि रस वस्तुतः भावों के द्वारा अभिव्यक्त होता है। उसमें शब्द और वाच्य अर्थ की अपेक्षा प्रतीयमान अर्थ का अधिक चमत्कार रहता है। यह प्रतीयमान अर्थ ही ध्वनि है। इस प्रकार रसध्वनि का विषय बनता है। उसका बोध अभिधा और लक्षणा नामक शब्दशक्तियों से भिन्न व्यंजना नामक शब्दशक्ति से होता है और इसमें व्यंग्य नामक प्रतीयमान अर्थ के चमत्कार की मात्रा प्रधानतया रहती है। यद्यपि ध्वनिकाव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की ही प्रधानता रहती है परन्तु अलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि में तो उसकी ही एकमात्र सत्ता रहती है।

रस वस्तुतः सहृदय सामाजिक में वासना के रूप में पहले से ही विद्यमान रहता है और विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के द्वारा उचित अवसर पर अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उसे सीधे शब्दों के द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता। वह भावों के द्वारा सहृदय के हृदय में प्रकाशित होता है। इस प्रकार रसध्वनि का विषय है और ध्वनिवर्ग में सर्वाधिक महत्त्व रखता है।

नाटक में रससंयोजन

नाटक के द्वारा कवि सहृदय सामाजिक को रसानुभूति कराता है। नाटक के वस्तु, नेता और रस इन तीन तत्त्वों में रस की ही प्रधानता है क्योंकि कवि का समस्त कार्यव्यापार रस के लिए ही होता है। इसमें संदेह नहीं है कि नाटक में कवि को रससंयोजन करने में विस्तृत आयाम या परिवेश मिलता है और वह तदनुरूप इतिवृत्त एवं पात्रों का चयन कर रसव्यापार में प्रवृत्त होता है। कवि कथानक एवं पात्रों के सहयोग से रसाभिव्यक्ति करता है। फलस्वरूप सहृदय श्रोता या दर्शक भी उस काव्य या नाटक में उसी प्रकार तन्मय हो जाता है जिस प्रकार कवि तन्मय हुआ था और उन महत्त्वपूर्ण भावों से अनुस्यूत होकर परमानन्द की अनुभूति करता है। इस

प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में रस की वही स्थिति है जो कि शरीर में प्राण और अग्नि में दीप्ति की। यह कथन अनुचित न होगा कि यदि नाटक में कवि रसतत्त्व की सम्यक् योजना नहीं करता है तो वह निष्प्राण, रूक्ष एवं नीरस हो जाता है। आचार्य आनन्दवर्धन लिखते हैं कि कवि की प्रवृत्ति का निबन्धन प्रमुख रूप से रसबन्ध में ही होना चाहिए, इतिवृत्त तो उसका उपाय है जिस प्रकार आलोक को चाहने वालों के लिए दीपशिखा।[41] सत्कवियों के प्रतिपाद्य प्रमुख विषय रसादि ही हैं अतः उन्हें उन रसों के निबन्धन में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।[42]

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि नाटक में रस की सत्ता अनिवार्य है। कवि को अत्यधिक सावधानी के साथ रसयोजना करनी चाहिये।

अङ्गीरस एवं अङ्गरस

नाटक में प्रधान नायक एवं नायिका के अतिरिक्त उपनायक, प्रतिनायक एवं अन्य अनेक सहायक होते हैं। यही कारण है कि इनसे सम्बन्धित विविध स्थायी भावों पर आधारित विभिन्न रसों का संयोजन होता है। इन अनेक रसों में से जो रस सर्वाधिक प्रधानता रखता है, जिसकी व्यापकता अधिक होती है, उसकी अङ्गीरस के रूप में मान्यता होती है और जो गौण होते हैं उन्हें अङ्गरस माना जाता है। आचार्य आनन्दवर्धन का अभिमत है कि काव्य या नाटक में एक अङ्गीरस और अन्य अंगरस होने चाहिए।[43] आचार्य भामह[44], दण्डी[45] और रुद्रट आदि आलंकारिकों ने अंगीरस और अंगरस का निर्वचन किया है।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाने पर कि नाटक में एक रस अंगी होना चाहिए और शेष रस अंग। यह प्रश्न उठता है कि नाटकों में किस-किस को अंगीरस होना चाहिए? इसका समाधान करते हुए कविराज विश्वनाथ लिखते हैं कि नाटकों में शृंगार और वीर रस में से किसी एक रस को प्रधान रस के रूप में उपन्यस्त करना चाहिए एवम् अन्य रसों की अंगरस के रूप में योजना करनी चाहिए।[46]

महावीरचरित में रसध्वनि

(अ) अङ्गी रस–महावीरचरित महाकवि भवभूति की प्रथम रचना मानी जाती है। इस नाटक के नामकरण से ही यह ध्वनित हो रहा है कि इसमें महावीर = रामचन्द्र का चरित उपनिबद्ध है। नाटक की संज्ञा में प्रयुक्त महावीर पद ही वीर रस का अभिव्यञ्जक है। कवि का महावीर पद ही

ध्वनित कर रहा है कि इस नाटक का अंगीरस वीर है। कवि अपने रस-सम्बन्धी मन्तव्य को नाटक के प्रारम्भ में ही सूत्रधार के मुख से उद्घोषित कर देता है–

"अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरः स्थितो रसः ।
भेदैः सूक्ष्मैरभिव्यक्तैः प्रत्याधारं विभज्यते ॥"

(महावीरचरित १।३)

अर्थात् जिसमें अप्राकृत पात्रों में स्थित वीर रस अपने अवान्तर सूक्ष्म भेदों में अभिव्यक्त हो रहा है।

इस प्रकार कवि स्पष्ट कर देता है कि इस नाटक में विशिष्ट पात्रों को वीर रस का आश्रय तथा आलम्बन बनाया गया है और यह रस अपने अनेक सूक्ष्म भेदों के साथ अभिव्यंक्त हुआ है।

महावीरचरित नाटक के नायक रघुकुलकमलदिवाकर वीरशिरोमणि रामचन्द्र हैं। रामचन्द्र के वीरतापूर्ण कार्यों का शुभानुष्ठान प्रथम अङ्क से ही प्रारम्भ हो जाता है। महर्षि विश्वामित्र राक्षसों से उत्पीडित होकर यज्ञ की रक्षा के निमित्त अपने आश्रम में रामलक्ष्मण को रख लेते हैं। कवि सौम्य-दर्शन रामलक्ष्मण को क्षत्रिय ब्रह्मचारी के रूप में प्रस्तुत करता है। उनके दिव्यदीप्त क्षात्रतेज तथा पुण्यानुभाव से रमणीय मधुराकृति को देखकर राजा कुशध्वज आश्चर्य प्रकट करते हैं।[47] वे उन्हें त्रैवर्णिक रक्षाधिकारी के रूप में देखते हुए उनके महत्त्व को प्रज्ञान तथा वाणी का अविषय बतलाते हैं।[48] वे हंसवंशालङ्कार अप्रमेय अनुभावसामर्थ्य वाले महावीर राम की-प्रशंसा करते हुए थकते नहीं (कथमप्रमेयानुभावसामर्थ्य एष वैकर्तनकुल-कुमारः ?)

इसी अंक में अत्यधिक भयावह सुकेतुसुता ताटका नाम की राक्षसी उप-स्थित होती है। महर्षि विश्वामित्र उसके वध के लिए राम को प्रेरित करते हैं। राम कहते हैं–'भगवन् ! यह तो स्त्री है।[49] (वीर पुरुष को स्त्री पर प्रहार नहीं करना चाहिए।) राम के इस कथन से उनकी धीरोदात्तता अभिव्यक्त होती है। महर्षि विश्वामित्र उनके उदात्त आशय को समझ लेते हैं और उनसे कहते हैं कि वत्स राम ! यह तो ब्राह्मणसमुदाय की मृत्यु बनकर आ रही है, अतः इसका वध आवश्यक है। (त्वरस्व वत्स ! किं न पश्यसि ब्राह्मणजनस्य संघातमृत्युमग्रतः ।) महर्षि विश्वामित्र के आदेश को अंगीकार कर राम अपनी प्रचण्ड बाणवर्षा के द्वारा ताटका राक्षसी के भीषण-विग्रह को समाप्त कर देते हैं। यहाँ अगाधसत्त्व राम वीर रस के स्थायिभाव 'उत्साह' के आश्रय हैं। भीषणाकृति वाली ताटका राक्षसी आलम्बन विभाव है।

'त्वरस्व वत्स ! किं न पश्यसि……' आदि महर्षि विश्वामित्र की उक्ति उद्दीपन विभाव है। राम का ताटका की ओर प्रस्थान, धनुरास्फालन, तेजी से ललकारना तथा दृढ़तापूर्वक बाणों की वर्षा करना अनुभाव हैं। राम की निर्भीकता, शौर्य, धैर्य एवं स्थैर्य आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार यहाँ वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है।

भविष्य में वीर रस की निष्पत्ति के लिए ही महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को सरहस्य दिव्य तेजोरूप जृम्भकास्त्र[50] प्रदान करते हैं। लोकाभिराम श्रीराम सहस्र वज्रविनिर्मित खण्डपरशु के प्रचण्ड चाप पर बाण चढ़ाकर उसे भग्न कर देते हैं।[51]

यहाँ भी अगाधबलशाली राम वीर रस के स्थायिभाव उत्साह के आश्रय हैं। सहस्रवज्रविनिर्मित प्रचण्ड हरकोदण्ड आलम्बन विभाव है। विश्वामित्र की 'किमद्याप्यसंभावनेयमस्मासु' यह उक्ति उद्दीपन विभाव है। राम का धनुष की ओर प्रस्थान, धनुष पर शरारोपण, प्रत्यञ्चाकर्षण आदि अनुभाव हैं। राम का शौर्य, धैर्य, स्थैर्य आदि व्यभिचारिभाव हैं।

इस अङ्क के अन्त में भी वीररस की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ राम और लक्ष्मण वीर रस के 'आश्रय' हैं। सुबाहु तथा मारीच आलम्बन हैं। 'तद्वत्सौ हन्यतामेष यज्ञप्रत्यूहः', 'अप्रमत्तः प्रमत्तं विजयस्व' आदि महर्षि विश्वामित्र तथा राजा की उक्तियाँ उद्दीपन विभाव हैं। 'यदाज्ञापयति' यह कहते हुए रामलक्ष्मण का उद्धतगति से प्रस्थान अनुभाव है और उनका शौर्य ओज[52] व्यभिचारिभाव है।

वीर रस का सम्यक् प्रसार द्वितीय अङ्क से प्रारम्भ हो जाता है। इस अङ्क के विष्कम्भक में ही राम का शौर्य अभिव्यञ्जित होने लगता है। माल्यवान् की उक्तियाँ राम के भावी शौर्य एवं उत्साह की प्ररोचना प्रस्तुत करती हैं। राम के अप्रतिम पराक्रम से अभिभूत माल्यवान् चिन्तितचित्त होकर कहते हैं कि राम का सर्वाधिक अमोघ आयुध ब्राह्मणों का आशीर्वाद है। जब क्षात्रतेज के साथ ब्राह्मतेज मिल जाता है तब वह अत्यधिक दुर्धर्ष हो जाता है।[53] वे मानव राम के देवासुरातीत उत्कृष्ट चरित से अभिभूत हैं। उन्हें ज्ञात है कि ऋषि और देवगण साधारण वस्तुओं में भी तर्कातीत शक्ति समाहित कर देते हैं और वर प्रदान के समय में ब्रह्मा ने मर्त्य से ही उनके भय की बात कही थी।[54]

यहीं कवि राम की धर्मवीरता की ओर इङ्गित कर देता है। राम की धर्मप्रियता का प्रतिपादन करते हुए माल्यवान् कहते हैं कि राम स्वभावतः धर्म के रक्षक हैं और हमलोग धर्मद्रोही हैं। अतएव प्रबल प्रतिपक्षी के साथ

हमारा स्वाभाविक विरोध है।[55]

वीर रस के आलम्बन परशुराम विग्रहवान् शौर्य हैं। वे अपने अप्रतिम अभिजन, तप, विद्या, शौर्य एवं कर्तव्य के मद से परिपूर्ण हैं।[56] उन्होंने दुर्धर्ष योद्धा रावण के मद को सहसा ही चूर कर दिया था और दुर्दम कार्तवीर्य के प्रचण्ड भुजदण्डों को अपने परशु से काट डाला था।[57] अतः माल्यवान् यह चाहता है कि राम और परशुराम का संग्राम हो जाय।

अपने गुरु खण्डपरशु के प्रचण्ड कोदण्ड के भंग होने के कारण उत्तेजित क्रोधाविष्ट परशुराम अपने दोर्दण्ड की प्रचण्डता का प्रलाप करते हुए महाराज जनक के कन्यान्तःपुर में प्रविष्ट हो जाते हैं। वे मानों मूर्तिमान् वीर रस किंवा साक्षात् दर्प ही हों। वीर रस के आश्रय रामचन्द्र हैं। उनका शौर्य, धैर्य एवं गाम्भीर्य सर्वथा श्लाघ्य है। वे महाबली परशुराम के आगमन से मनागपि विचलित नहीं होते। वे प्रसन्नता का अनुभव करते हैं कि आज उनकी भेंट परशुराम प्रभृति पराक्रमी वीर से होने जा रही है। जब सखियाँ उन्हें कुमार 'अलं तावत्त्वरया' कहकर रोकने का प्रयत्न करती हैं तो वे कहते हैं—'नोत्सवाः परावधीरणा वैरस्यमर्हन्ति (उत्सवों में परपराभवजन्य विरसता उचित नहीं है)। यहाँ राम का अदम्य उत्साह अभिव्यञ्जित हो रहा है। वे सखियाँ तथा सीता के अनुनय-विनय पर ध्यान न देकर सधैर्य परशुराम से मिलने के लिए उद्युक्त होते हैं।

इस प्रसंग में राम का वीरोचित उत्साह व्यंग्य है अतएव वे वीर रस के आश्रय हैं। परशुराम आलम्बन हैं। क्रुद्ध परशुराम द्वारा कन्यान्तःपुर में राम की खोज करना उद्दीपन विभाव है। राम द्वारा परशुराम की ओर सधैर्य झपटना अनुभाव है तथा मति, वितर्क आदि व्यभिचारी भाव हैं।

क्रुद्ध परशुराम कहते हैं कि इस क्षत्रियबटु राम की अनात्मज्ञता देखो—भगवान् शिव के धनुष को भंग करते हुए प्राणियों पर कृपा करने वाले आशुतोष प्रमथाधिप का भय नहीं हुआ अथवा तारकासुर के वध के द्वारा विश्व को प्रसन्न करने वाले स्कन्दसदृश प्रिय मुझ पराक्रमी शिष्य का स्मरण नहीं रहा।[58] परशुराम के इस कथन से उनका दिव्य शौर्य अभिव्यंजित हो रहा है। अप्रतिम पराक्रमी एवं तेजस्वी परशुराम के आगमन से धीरोदात्त राम असमञ्जस में पड़ जाते हैं। उनका शयकुशेशय एक ओर तो परशुराम के चरणारविन्दवन्दन के लिए चलना चाहता है और दूसरी ओर वे उन्हें कहीं कातर न समझ लें, अतएव वह वीरोचित कार्य के लिए प्रस्फुरित हो रहा है[59]। यहाँ राम अपनी धीरोदात्त प्रकृति के अनुकूल परशुराम का चरणारविन्दवन्दन करना चाहते हैं। परन्तु उन्हें संकोच है कि कहीं उनके इस

शिष्टाचार का अर्थ परशुराम अन्यथा न लें। अतएव वे आचार के लिए अनुपयुक्त अवसर को देखते हुए निर्भीक भाव से वीरोचित कार्य के लिए ही प्रवृत्त होना अधिक उचित समझते हैं। राम की निर्भयता वीरोचित उत्साह को व्यक्त कर रही है। जामदग्न्य के द्वारा ललकारे जाने पर राम सद्यः उपस्थिति के द्वारा उन्हें अत्यधिक प्रभावित कर देते हैं, अतएव वे राम को साधुवाद देते हुए कहते हैं कि मैं तुम्हें वध के लिए खोज रहा हूँ और तुम जाति से विशुद्ध अन्तःकरण होने के कारण स्वयं को उसी प्रकार समर्पित कर रहे हो जैसे कोई गन्धद्विपेन्द्रशावक स्वयं को करिकुम्भविदारण में वज्रोपम पाणि वाले सिंह के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हो।[60] प्रतिनायक के द्वारा नायक की यह प्रशस्ति उनके वीरोचित उत्साह को पर्याप्त पुष्ट कर रही है। राम के गम्भीर, मधुर, मसृण, मनोहर रूप को देखकर परशुराम रामसदृश पराक्रमी का हृदय अपहृत होने लगता है और वे वीरव्रत की क्रूरता को धिक्कारने लगते हैं।[61] जब उत्तेजित परशुराम अपने प्रचण्ड परशु को राम के कण्ठपीठ का अतिथि बनाना चाहते हैं[62] तो राम अत्यन्त धैर्य एवं आदर के साथ उसे देखकर कहते हैं कि यह वही परशु है जिसे सपरिवार कार्तिकेय को परास्त करने पर सहस्र वत्सरों के अन्तेवासी आपको भगवान् नीललोहित ने प्रसाद के रूप में दिया था। जिस परशु के खण्ड को लेकर महादेव खण्डपरशु के नाम से प्रख्यात हुए उसी परशु के टुकड़े (खण्ड) से आप परशुराम कहलाने लगे।[63] आपके जन्मदाता जमदग्नि हैं, भगवान् पिनाकी गुरु हैं, आपका शौर्य वाणी का विषय नहीं है वह तो आपके कार्यों से ही व्यक्त है। सप्तसमुद्रवेष्टित वसुन्धरा का निर्व्याजदान आपका त्याग है, क्षात्र और ब्रह्म तेज के निधान आपका सब कुछ तो लोकोत्तर ही है।[64] राम की इन उक्तियों से उनके अनिर्वचनीय माहात्म्य, सौजन्य एवं उत्साह के संरम्भ से गम्भीर पौरुष एवं परगुणप्रख्यापनवीरता की व्यञ्जना हो रही है जो कि क्रुद्ध परशुराम को भी सहसा ही आकृष्ट कर लेती है और वे कहने लगते हैं कि हे राम! तुम हृदय के सदृश ही नयनाभिरमता को भी धारण किये हुये हो और तुम्हारे रामणीयक गुण सर्वथा अप्रतर्क्य हैं, तुम तो मेरे हृदय में बस गये हो।[65] हेरम्ब के दन्तरूप मुसल से आहत और विशाख के तीव्र विशिखों के प्रहार के व्रणों से विभूषित मेरा वक्षःस्थल तुम्हारे जैसे अद्भुत वीर को पाकर रोमाञ्च से कञ्चुकित हो रहा है और तुम्हारा आलिङ्गन करना चाह रहा है।[66]

यहाँ की वीररस व्यञ्जना विचित्र है। नायक राम बिना युद्ध के ही अपने सौजन्य, शील, उत्साह, पौरुष, गाम्भीर्य, रमणीयता आदि प्रतर्क्य

गुणों के द्वारा प्रतिनायक परशुराम को अभिभूत कर रहे हैं। नायक राम आश्रय हैं तथा परशुराम आलम्बन। परशुराम द्वारा स्वगुणप्रख्यापन, तीव्र गति से आगमन, राम के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम के द्वारा परशुरामगुणप्रख्यापन, सौजन्य, पौरुष, गाम्भीर्य आदि गुणों का प्रस्तुतीकरण अनुभाव है। मति, हर्ष, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार राम का 'उत्साह' नामक स्थायीभाव वीर रस को अभिव्यंजित कर रहा है।

परशुराम राम के असाधारण चरित के उत्कर्ष से अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं। वीरबालक राम को अनन्तसामर्थ्यार्पित सारमय पदार्थ के रूप में देखकर उनका दर्प क्षीण होने लगता है।[67] सात्त्विक गुणों से प्रोद्भासित तेज, धर्म, मान, शौर्य, औदार्य से परिपूर्ण राम के शरीर को देखकर परशुराम अनुमान करने लगते हैं कि यह दिव्य शरीर सातों भुवनों को अभयदान देने में सक्षम है।[68] वे राम के अलौकिक अनुभाव से आकृष्ट हो अनेक कल्पनायें करने लगते हैं। उन्हें वे (राम) सकलभुवन परित्राणार्थ देहधारी अस्त्रवेद, ब्रह्म-कोश की रक्षा के लिए शरीरी क्षात्रधर्म, सामर्थ्य का समुदय, गुणों का संचय अथवा मूर्तिमान् जगत् के पुण्यकर्म सदृश दिखलायी दे रहे हैं।[69] परशुराम की ये कल्पनाये राम के 'महावीरत्व' को अभिव्यक्त कर रही हैं।

शान्त, दान्त, दयालु विदेह नृपति जनक का भी क्रोध उद्दीप्त हो उठता है और वे कहने लगते हैं यदि परशुराम ऋषि के रूप में आते हैं तब तो उनका आसन, पाद्य, अर्घ्य एवं श्रोत्रियोचित मधुपर्क के द्वारा स्वागत किया जाना चाहिए और यदि वे पुत्र राम के साथ शत्रुता का आचरण करते हैं तो इस नयविहीन व्यक्ति पर धनुष का प्रयोग किया जाय।[70] यहाँ राजा जनक का धनुषप्रयोगविषयक उत्साह स्थायीभाव है। परशुराम आलम्बन हैं। धनुष को हाथ में लेकर जनक का आगमन, परशुराम के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग आदि उद्दीपन विभाव हैं। सौजन्य, गाम्भीर्य, पौरुष आदि गुण अनुभाव हैं। मति, स्मृति, धृति आदि व्यभिचारीभाव हैं। राजा जनक का यह उदार उत्साह वीर रस का आस्वाद बनकर सहृदयहृदय में दिव्य आह्लाद की सृष्टि करने में पूर्ण समर्थ है।

परशुराम के मानस में यह दुःख है कि उन्हें उसी राम का वध करना है जिसे देखकर चित्त में अनेक प्रकार के सुखों का सञ्चार होता है, नेत्रों को आनन्द का अनुभव हो रहा है और जिसके पाणिपङ्कज से परिणय का मंगलमय कङ्कण भी अभी नहीं छूट पाया है।[71] यह विचारकर उनके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। परन्तु राम को यह उचित प्रतीत नहीं होता और वे

साहसपूर्ण व्यंग्य वचन बोलते हैं जोकि उनके शौर्य, धैर्य और गाम्भीर्य के व्यंजक हैं। राम के ये व्यंग्यवचन परशुराम को और अधिक उत्तेजित कर देते हैं। उत्तेजित परशुराम अपनी प्रशंसा करने लग जाते हैं। वे सदर्प कहने लगते हैं कि जामदग्न्य ने अपनी माता का शिर काट लिया था यह सर्वत्र सुप्रसिद्ध प्रवाद है और मूर्ख राम ! क्षत्रियविषयक क्रोध से गर्भों को भी निकाल कर काट डाला। उद्दण्ड होकर इक्कीस बार समस्त राजकुल का संहार किया। उनके रक्त से निर्मित सरोवर में स्नान से जो आनन्द हुआ उससे हमारी क्रोधाग्नि कुछ शान्त हुयी। क्या तुम हमारे सर्वविदित स्वभाव को नहीं जानते हो ?[72] परशुराम की इस आत्मश्लाघा को सुनकर राम गूढ़ व्यंग्य के रूप में कहते हैं कि नृशंसता तो पुरुष का दोष है इसमें श्लाघा की क्या बात है ?

राम का यह वाग्वज्र परशुराम के लिए असह्य हो जाता हैं। वे क्रोधाभिभूत होकर कहने लगते हैं कि आह ! निर्भय क्षत्रियकुमार ! तू बहुत ढीठ होता चला जा रहा है। प्रहार कर। धनुष उठा। मैं पहले अपने ऊपर प्रहार चाहता हूँ। यदि मैं पहले प्रहार कर दूँगा तब तू क्या प्रहार करेगा ? वह्नि की वृष्टि करने वाले हमारे कठोर कुठार से शीघ्र ही तेरा गला कट जायेगा, कबन्धमात्र शेष रह जायेगा।[73] परशुराम के इस कथन से वीररस की अभिव्यक्ति हो रही है। उनका उत्साह स्थायिभाव है।

परन्तु यहाँ राम को प्रहार करने का अवसर नहीं प्राप्त होता। जनक और शतानन्द प्रवेश करके उन्हें रोक देते हैं। राम जब तक गुरुजनों से अनुज्ञा नहीं ले लेते तब तक कैसे प्रहार कर सकते हैं ? राम को श्वश्रूजन के द्वारा कङ्कणमोचन की विधि के लिए अन्तःपुर में बुलाया जाता है। राम परशुराम से निवेदन करते हैं कि यह गुरुजनों का आदेश है। परशुराम भी उन्हें लोकधर्मानुष्ठान के लिये अनुज्ञा प्रदान करते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि तुम्हें ज्ञातिजन देख लें परन्तु हम अरण्यवासी नगर में अधिक समय तक नहीं ठहरते। मैं जाना चाहता हूँ इसलिये बिलम्ब न करना। परशुराम की इस अनुज्ञा में भी दृढ़ता, आत्मविश्वास, शौर्य एवं गर्व प्रतिबिम्बित हो रहा है।

तृतीय अङ्क में वशिष्ठ और विश्वामित्र के द्वारा युद्ध विराम विषयक वृत्तान्त प्रस्तुत करने पर परशुराम स्पष्ट कर देते हैं कि यदि राम बलवान् न होते तो मैं क्यों न क्षमा कर देता ? राम शिशु होते हुए भी अत्यधिक ख्याति को प्राप्त कर चुका है। इस स्थिति में क्रोधी होकर भी परशुराम अपमान की घूँट क्यों पी गये ? इस प्रसंग के छिड़ने पर परशुराम ने गुरुजनों

के प्रति समादर के कारण ऐसा किया था इस बात को कौन जानेगा ? और जानकर भी कोई ऐसा नहीं कहेगा क्योंकि वीरों में परस्पर द्वेष का उत्कर्ष रहता है[74] और भी निश्छिद्र यशोराशि के सर्वत्र प्रदीप्त रहने पर स्वल्प कलंक के द्वारा निन्दित जनश्रुति किसी भी प्रकार नहीं मिटती ।[75] अतएव परशुराम यह स्पष्ट कर देते हैं कि जब तक शत्रु का समूलोन्मूलन नहीं कर देता तब तक आचार्य शिव एवं आचार्याणी पार्वती को कैसे मुँह दिखलाऊँगा ? वशिष्ठ सदृश गुरुजन की आज्ञा के अतिक्रमण के विषय में वे स्पष्ट कर देते हैं कि आप जैसे पूज्य गुरुजनों की बात का उल्लङ्घन कर रहा हूँ, इसका प्रायश्चित्त कर लूँगा परन्तु शस्त्र ग्रहण रूप महाव्रत का उल्लंघन नहीं कर सकता ।[76] क्योंकि मुझे मोक्ष की भी अपेक्षा मानरक्षा से स्नेह है ।[77] वे विश्वामित्र से निवेदन करते है कि आप ही बतलायें जिसने भृगु के पवित्र वंश में जन्म लेकर अस्त्र ग्रहण किया हो उसके लिये सम्प्रति क्या उपयुक्त है ?[78] वे स्पष्ट कर देते हैं कि च्यवन आदि वृद्धजनों के कहने से उन्होंने अपने क्रोधानल तथा परशु को नियन्त्रित कर लिया था परन्तु इस हरधनुर्भङ्ग ने उन्हें पुनः हठपूर्वक उठा दिया । चपल राघव शिशु का संहार करने के पश्चात् मैं पुनः वन चला जाऊँगा । रघुवंशी और जनक सुस्थिर रहें परन्तु पुनः कोई किसी प्रकार का व्युतिक्रम न होने पाये । परशुराम के इन प्रचण्ड वचनों को सुनकर शतानन्द को क्रोध आ जाता है और वे तमतमाते हुये कहते हैं कि हमारे यजमान राजर्षि जनक की छाया को भी छू सकने का किसमें सामर्थ्य है ? जामाता राम की तो बात ही क्या ? हम लोग इनके सच्चरित रूपी स्तम्भ पर अवलम्बित गृहस्थों में गृह्यवह्नि के समान रहते आये हैं । यदि इन पर कहीं से आपत्ति आ जाती है तो हमारे प्रिय तप और अङ्गिरा के कुल को धिक्कार है ।[79] यहाँ शतानन्द के इस कथन में वीररस की व्यंजना हो रही है ।

शतानन्द एवं जामदग्न्य के इस संरम्भ के मध्य ही राजा जनक प्रवेश करते हैं और वे कहते हैं कि शत्रुओं के नष्ट होने, वृद्धावस्था, गृह्योक्त अनुष्ठानों और सतत ब्रह्मतत्त्व की भावना से जो विजयप्रद क्षात्रतेज निवृत्त सा हो गया था वह पुनः जग रहा है और हमारे कार्मुक को सक्रिय होने के लिये प्रेरित कर रहा है ।[80] जब परशुराम जनक से कहते हैं कि मैं तुम्हारे साथ नम्रता का व्यवहार कर रहा हूँ तो जनक कहते हैं कि ये अँतड़ियों में सुई चुभा रहे हैं और नम्रता का नाम ले रहे हैं । इनके द्वारा किये गये अपमान को हम लोगों ने बहुत समय तक सहन किया है परन्तु यह हम लोगों को घास समझ रहा है । ऐसी स्थिति में ब्राह्मण होने पर भी इसके ऊपर

धनुष सँभालना ही होगा दूसरा कोई उपाय नहीं है।[81] जनक की इस कटूक्ति को सुनकर रोषाविष्ट जामदग्न्य कहते हैं कि याज्ञवल्क्य के कारण हमने इसे अभयदान दिया था परन्तु यह मिथ्याभिमानी हमारे कुठार को देखकर भी प्रलाप कर रहा है।[82] परशुराम की इस उक्ति को सुनकर जनक अपने धनुष को चढ़ा लेते हैं।[83] परन्तु महाराज दशरथ उन्हें ऐसा करने से रोक देते हैं। परन्तु जनक के द्वारा अधिक्षिप्त जामदग्न्य कहते हैं कि शिर के कट जाने से धमनियों की शिराओं से निकलने वाले शोणितफेन से विस्तृत धार वाला हमारा यह कुठार पशु की तरह तुम्हें टुकड़ा करके तुम्हारे अङ्गों को खण्ड-खण्ड कर देगा। राजा दशरथ के द्वारा हस्तक्षेप किये जाने पर जामदग्न्य कहते हैं अब तुम भी दूसरे सामर्थ्यशाली की तरह मुझे धमकाने लगे हो। सोच लो सदैव से निष्प्रतिबन्ध मैं जामदग्न्य राम हूँ। इस पर नृपति दशरथ कहते हैं कि दुर्दान्तों का दमन क्षत्रियों के ऊपर आश्रित है इसलिये तुम्हारे दमन के अधिकारी हम क्षत्रिय हैं अतः शीघ्र शान्त हो जाओ, नहीं तो अभी दमन किया जायेगा।[84] राजा दशरथ के इस कथन पर व्यंग्य करते हुये परशुराम हँसकर कहते हैं कि यह जामदग्न्य चिरकाल के बाद सनाथ हुआ जिसे आप जैसे क्षत्रिय दमन करने वाले मिल गये। इस पर राजा दशरथ नीतिपरक वचन बोलते हैं जिसका विश्वामित्र समर्थन करते हैं। परन्तु दर्पोद्धत परशुराम उनकी उपेक्षा करते हुए कहते हैं कि धर्म; अध्यात्म तथा धनुर्वेद की शिक्षा हमने शिव से प्राप्त की है। जब हमने समस्त क्षत्रियों का विनाश ही कर दिया तो क्षत्रिय हमारा क्या शासन करेंगे? सम्बन्ध तथा वार्धक्य के कारण वशिष्ठ हमारे आराध्य हैं परन्तु प्रतिस्पर्धा में वे हमारी समानता नहीं कर सकते। तपस्या तथा ज्ञान में हमारे सदृश है ही कौन?[85] यहाँ परशुराम का गर्व स्पष्ट रूप से झलक रहा है। विज्ञानी महर्षि वसिष्ठ भृगु के पुत्र से अपने पराभव को आनन्द का विषय मानते हैं। यहाँ महर्षि वसिष्ठ की धर्मवीरता अभिव्यंजित हो रही है।

जनक, दशरथ और विश्वामित्र को जामदग्न्य का यह व्यवहार अत्य-धिक उद्विग्न कर देता है और वे ललकारते हुए परशुराम से कहते हैं कि दुष्ट हाथी की तरह समीप ले आकर तुम्हारा दमन किया जायेगा।[86] इनके निवृतिपरक वचनों से परशुराम का क्रोधानल भभकने लगता है। वे कहते हैं कि भाग्यवश अपमान को प्राप्त कर क्रोध की तरह हमारा यह परशु दहक रहा है। राजा दशरथ की सेना में सभी क्षत्रिय आये ही हैं। क्रुद्ध यमराज के लिये उत्सवस्वरूप यह २२ वाँ महाप्रलय शीघ्र हो जायेगा।[87] जामदग्न्य का यह वाग्वज्र धीर प्रशान्त वसिष्ठ को भी क्रुद्ध कर देता है और वे कहने

लगते हैं कि यद्यपि यह हमारा स्वजन अवश्य है परन्तु दर्प के कारण कठोर कार्य कर रहा है। यदि मैं क्रुद्ध दृष्टि से इसकी ओर देख भी दूँ तो भार्गव शिशु के लिये यह हानिकर होगा।[88] यहाँ महर्षि वसिष्ठ का उत्साह स्थायिभाव है। इसके आलम्बन परशुराम हैं। उनका दर्पयुक्त व्यवहार उद्दीपन विभाव है। धृति, स्मृति आदि सञ्चारिभावों से परिपुष्ट वीररस की व्यंजना हो रही है। विश्वामित्र का भी शान्त हृदय क्रोध से धधकने लगता है और वे कहते हैं कि अरे जामदग्न्य ! तुम ब्राह्मण और क्षत्रिय समाज पर आक्षेप करते चले जा रहे हो। राम के प्रति तुम्हारी दृष्टि अनुचित है। तुम अपने अपराधों से हम लोगों को पीड़ित कर रहे हो। यद्यपि सम्बन्ध से तुम मेरे लिये पाल्य हो तथापि मैं तुम पर रुष्ट हो रहा हूँ इसलिये हमारा दाहिना हाथ शापोदक के लिए और बायाँ हाथ प्राक्तन संस्कार के अनुरोध से चाप के लिये घूम रहा है।[89] यहाँ विश्वामित्र के इस कथन से वीररस की व्यंजना हो रही है। इसी बीच नेपथ्य से राम बोलते हैं कि मैं कौशिक शिष्य राम अन्तःपुर के कार्य को समाप्त करने के पश्चात् आप लोगों को प्रणाम कर निवेदन कर रहा हूँ कि पौलस्त्य विजय से दृप्त कार्तवीर्यार्जुन के संहारक और क्षत्रवीर के हन्ता परशुराम पर विजय पाऊँगा। आप लोगों को नमस्कार है।[90] यहाँ राम की यह घोषणा वीररस के व्यभिचारिभाव गर्व की अभिव्यक्ति कर रही है। राम की इस गर्वपूर्ण घोषणा का उपहास करते हुये परशुराम कहते हैं–आओ, राजकुमार जामदग्न्य को जीतोगे। पुनः मुस्कराकर कहते हैं, नहीं जीत सकोगे। दुर्दान्त परशुराम तुम्हारा अन्तक है और यह कहकर अपना धनुष उठा लेते हैं। यहीं पर तृतीय अंक समाप्त हो जाता है। यहाँ परशुराम के उपर्युक्त कथनों एवं धनुष सँभालने से वीररस की अभिव्यक्ति हो रही है।

चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में नेपथ्य से राम का विजयोद्घोष किया जाता है। शूर्पणखा तथा माल्यवान् के वार्तालाप से भी राम का उत्कर्ष एवं शौर्य अभिव्यञ्जित हो रहा है। राजा जनक राम के अलौकिक शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उन वीर और महान् रामचन्द्र के चरित हमारे लिये ही नहीं अपितु तीनों लोकों के लिये कल्याणकारक हैं।[91] राम के अप्रतर्क्य पराक्रम से प्रभावित होकर वसिष्ठ अत्यधिक हर्ष का अनुभव करते हैं। उन्हें राम की ऐसी महिमा की आशा ही न थी। सम्प्रति वे स्वयं को और त्रिभुवन को भी कृतार्थ मानते हैं।[92] वसिष्ठ और विश्वामित्र एक दूसरे के उत्कर्ष का प्रतिपादन करते हुए राम के शौर्य से अत्यधिक प्रसन्न हैं। विश्वामित्र क्षत्रिय पुंगव, भूतल श्लाघ्य, इन्द्र के द्वारा समादृत राजा दशरथ

की प्रशंसा करते हैं ।[93] कार्तवीर्यार्जुनजयी परशुराम को भी जीत लेने वाले राम पर सभी को गर्व है । राम वीर लक्ष्मी तथा नम्रता से सुशोभित हैं । उनके द्वारा पराजित परशुराम के प्रति उनके हृदय में वैसा ही संकोच है जिस प्रकार गुरुजन के प्रति शिष्य के द्वारा किये गये अभद्र व्यवहार से उसके हृदय में संकोच होता है ।[94] राम अविनय व्यवहार के लिये परशुराम से क्षमा माँगते हैं । परशुराम की प्रशंसा करते हैं । वे वसिष्ठ तथा विश्वामित्र के प्रति प्रणत होते हैं । राजा दशरथ की प्रशस्ति करते हैं । इस प्रकार यहाँ राम और परशुराम दोनों ही वीररस की सीमा से बाहर निकल जाते हैं ।

पंचम अङ्क में जटायु के इस कथन से कि अकेले ही रामभद्र ने चौदह हजार चौदह राक्षस और तीन खर, दूषण तथा त्रिशिरा का युद्ध में वध कर दिया, राम का शौर्य प्रकट हो रहा है । जिस समय रावण सीता का अपहरण करके प्रस्थान करता है उस समय क्रुद्ध जटायु रावण को ललकारता है ।[95] जटायु के कथन में भी वीररस की व्यञ्जना हो रही है । राम और वाली के मिलन में वीररस की व्यञ्जना हुयी है । वाली का पराक्रम अनुपमेय है । उसे अपने शौर्य पर विश्वास है । दर्पोन्मत्त वाली का कथन है कि वह ब्रह्माण्ड स्वरूप इस झाड़ी को उलट-पुलट सकता है जिससे लोकालोक पर्वतरूप आलम्बन स्खलित हो जायेगा । सप्तम समुद्र का पानी गिरने लगेगा; तीनों लोक ढीले पड़ जायेंगे, पातालरूप जड़ उखड़ जायेगी, चन्द्र सूर्य रूप पुष्पगुच्छ बिखर जायेंगे और तारामण्डल रूप फूल गिरने लगेंगे ।[96] वीर वाली को यह दुःख है कि उसे रामवधरूप कार्य में नियुक्त किया गया गया । गुणनिधि, सत्यधर्मा, अभिराम श्रीराम के दर्शन के लिए वाली के नेत्र लालायित हैं और उसकी भुजायें उसकी रणलिप्सा को पूर्ण करने की इच्छुक हैं । वाली को यह हर्ष है कि परशुराम को पराजित करने वाले राम से उसका युद्ध होगा ।[97] राम से मिलकर वह दर्पोन्मत्त होकर कहता है कि हे राम ! परशुराम विजय से प्रख्यात अपने हाथों में धनुष ग्रहण करो ।[98] वाली के भाव को समझकर राम हँसकर कहते हैं—हे महावीर ! हम लोग दया के पात्र नहीं हैं, हम अपने पराक्रम से विश्व में विख्यात हैं, उसे अपने मुँह से क्या कहें ? अतः युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । तुम सत्यप्रिय व्यक्ति हो शस्त्रों का न होना मेरी विजय में बाधक नहीं होता और यदि तुम शस्त्र के लिए आग्रह करो तो ये पर्वत तो हैं ही । वानर तो इन्हें भी शस्त्र मानते हैं इसलिए हम लोग युद्धयोग्य भूमि में चलें ।[99] यहाँ हम देखते हैं कि वाली को तो अपने पराक्रम पर विश्वास है ही अतएव उसका गर्व स्वाभाविक है परन्तु राम का भी

आत्मविश्वास एवं युद्धविषयक उत्साह कम नहीं है। दोनों ही वीर युद्ध महोत्सव से प्रसन्न हैं और दोनों ही अपनी विजय के लिए पूर्ण आश्वस्त हैं। अतएव दोनों ही एक-दूसरे को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम्हारे साथ वीरगोष्ठी महोत्सव श्लाघ्य है परन्तु अब तुम्हारे मिट जाने पर पृथ्वी वीर-शून्या हो जायेगी।[100] यहाँ युद्ध में वाली के आहत होने पर वीररस समाप्त हो जाता है।

षष्ठ अङ्क में माल्यावान् की चिन्ता से राम का शौर्य अभिव्यञ्जित होता है। रावण की गर्वोक्तियों में वीररस की झलक दिखाई पड़ती है परन्तु यहाँ वीररस की पूर्ण सामग्री के अभाव में वीररस की निष्पत्ति नहीं हो पाती। रावण का सामर्थ्य अद्वितीय है। वह इस ब्रह्माण्ड को पीसकर नये ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता है जिसमें उसके प्रताप और यश ही सूर्य और चन्द्रमा का काम कर सकते हैं। परन्तु आलस्य के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता। मन्दोदरी जब उसे शत्रु के आक्रमण के विषय में सचेत करती है तो वह उसके कथन को हँसता हुआ टाल देता है। कहता है क्या हमारे भी शत्रु ? उसका भी कोई पक्ष ? उसकी चढ़ाई ? यह सब कुछ तुम नवीन ही सुना रही हो। जो मैं युद्धक्षेत्र में अपने दोनों हाथों से मदोन्मत्त हाथियों के दाँतों को पकडकर चार हाथों से वेगपूर्वक आने वाले दिग्गजों को भी रोक सका था और वज्रादि भयंकर आयुधों के प्रहार से जिसके वक्षःस्थल का चमड़ा खुरच भर गया, उसी के शत्रु हो रहे हैं ? यह तुम्हारा कोई प्रमाद ही है अर्थात् इसमें कोई वास्तविकता नहीं है।[101] जब मन्दोदरी पानी पर पत्थर तैरने की बात कहती है तो उस समय भी वह उस पर अविश्वास व्यक्त करता है और अपने साहस एवं वैदुष्य की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि हमारे अलौकिक शास्त्रज्ञान को ब्रह्मा, आज्ञा को इन्द्र, धैर्य को वज्र, यश को समस्त संसार, बल को कैलास पर्वत और क्या कहूँ ? साहस को शिव जी जानते हैं जिनके चरणों को अपने शोणित रूपी जल से पखार चुका हूँ।[102] वह संत्रस्त मन्दोदरी से कहता है कि अयि देवि ! डरना व्यर्थ है। प्रहस्त राम के ओजस्वी चरित्र से अत्यधिक प्रभावित हैं। वे रावण से स्पष्ट कर देते हैं कि सानुज मानव शिशु ने नगरी को घेर लिया है जिससे मित्र-बल और खाद्यान्न का आना भी अवरुद्ध हो गया है।[103] इस प्रकार प्रहस्त के इस कथन से, अंगद की कटूक्तियों[104] को सुनकर और शिलाघात से पुरद्वार के तोड़े जाने के समाचार को सुनकर रावण का क्रोध उद्दीप्त हो जाता है। इन्द्रादि देवताओं का राम के प्रति किया गया पक्षपात भी उसके क्रोध को और अधिक बढ़ा देता है। अतएव वह वीरोचित संकल्प लेता हुआ कहता है

कि अब मैं निर्दय बनकर कुछ हाथों से वानरों को दिशाओं में फेंककर दूसरे हाथों से वीरता का अभिनय करने वाले तपस्वियों को पीसकर अपने हृदय में कल्पित छिद्र द्वारा भीतर बैठे देवों को खींच-खींच कर उनसे अपने कारागार को भर देता हूँ[105] और इसके पश्चात् वह दृढ़तापूर्वक युद्ध करने के लिये विकट गति से प्रस्थान करता है।[106] यहाँ कवि ने रावण के अनुभावों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

उद्धत एवं पराक्रमी शत्रु को दलबल के साथ आते हुये देखकर भी धीर-स्वभाव वाले राम विचलित नहीं होते हैं। उनका साहस, उत्साह एवं धैर्य श्लाघ्य है।[107] यहाँ कवि ने राम के अनुभावों का सुन्दर एवं विस्तार में चित्रण किया है। वे रावण और कुम्भकर्ण को लक्ष्य बनाकर अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को स्पर्श से ठीक कर रहे हैं।[108]

जिस समय राम और लक्ष्मण को राक्षस समूह घेरकर अस्त्रशस्त्रों की वर्षा करते हैं उस समय वे अपने अपरिमेय शौर्य एवं सामर्थ्य से अपने बाणों के द्वारा शत्रुओं के प्रहारों को निष्फल कर देते हैं।[109] वानर सेना का उत्साह एवं शौर्य भी श्लाघ्य है। सम्पूर्ण सेना के सहित सभी प्रमुख सेनापति अपनी विजयकामना से युद्धस्थल में अपना शौर्य दिखला रहे हैं। लक्ष्मण के साथ वीर योद्धा हनुमान् का अप्रतिम शौर्य, साहस, युद्धोत्साह प्रकट हो रहा है। लक्ष्मण की बाणवर्षा से अनेक राक्षस युद्धभूमि में गिर पड़ते हैं। उनके अपरिमेय अद्भुत शौर्य से रावण और मेघनाद क्रोधान्ध हो उठते हैं।[110]

कुम्भकर्ण विशाल सेना के साथ राम को घेर लेते हैं। राम का क्रोध बढ़ जाता है। यहाँ कवि ने राम के अमर्ष को अभिव्यक्त करने वाले अनुभावों का सुन्दर चित्रण किया है।[111] मूर्च्छित लक्ष्मण के लिये सञ्जीवनौषधि लाने में हनुमान् जिस साहस एवं पराक्रम को दिखलाते हैं उसके वर्णन में कवि ने उनके उत्साह के साथ ही सञ्चारिभावों एवं अनुभावों की भी सम्यक् अभिव्यंजना की है।[112] राम और रावण की सेनाओं के अग्रभाग में स्थित वानरों और राक्षसों के प्रसंग में कवि ने वीररस की समस्त सामग्री उपस्थित कर दी है।[113] यहाँ कवि ने आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव को स्पष्ट रूप में प्रस्तुन किया है। कवि ने इस समस्त सामग्री के द्वारा वीर योद्धाओं के अदम्य उत्साह को अभिव्यक्त किया है। राम तथा लक्ष्मण के उत्साह और धैर्य का चित्रण भी सर्वथा श्लाघ्य है। इस प्रकार यहाँ वीररस की सम्यक् व्यञ्जना हुयी है। दिव्य ऋषिजनों के द्वारा उद्दीपन प्राप्त कर राम-लक्ष्मण रावण और मेघनाद का वध कर देते हैं। यहीं पर वीररस समाप्त हो जाता है।

सप्तम अङ्क में सुग्रीव के इस कथन से कि त्रिभुवनकण्टक रावण उखाड़ कर फेंक दिया गया है। इस प्रकार सीता के अपमान का बदला लिया जा चुका है, विभीषण के अभिषेक की हमारी प्रतिज्ञापूर्ण हो गयी है।[114] राम का माहात्म्य एवं अनुभाव प्रकट हो रहा है। वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के द्वारा की गई राम की प्रशस्ति भी उनके दिव्य गुणों एवं अनुभावों को प्रकाशित कर रही है।[115]

(आ) अंगरस

(क) शृंगार रस

महावीरचरित नाटक में अङ्गीरस वीर के साथ ही शृंगार, करुण, भयानक, रौद्र, बीभत्स, अद्भुत आदि रसों की सहज अभिव्यक्ति हुयी है। ये अंगरस अंगीरस के उपकारक एवं प्रकाशक हैं।

महावीरचरित वीररस प्रधान नाटक है। अतः कवि को शृंगार रस को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने का अवकाश नहीं प्राप्त हो सका है, तथापि कवि ने यत्रतत्र अवसरानुकूल शृंगाररस की योजना की है। प्रथम अंक में जिस समय महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में सीता और उर्मिला राम और लक्ष्मण को देखती हैं, वे उनके मधुर मुग्ध रूप का बखान करने लगती हैं–"सौम्यदर्शनौ खल्वेतौ।"[116] सीता और उर्मिला के इस कथन से राम के प्रति उनकी प्रीति झलक रही है। राम के हृदय में भी सीता के प्रति उसी समय अनुराग उत्पन्न हो जाता है–"तत्किमियममृतवर्तिरिव मे चक्षुराप्याययति।" राम के इस कथन से उनके चक्षुःराग की व्यञ्जना हो रही है। इसी प्रकार "किमिति सज्जतेऽस्मिन् लोचनानन्दे-मे दृष्टिः" सीता के इस कथन से उनकी भी नयन-प्रीति अभिव्यक्त हो रही है। जिस समय राम ताटकावध में नियुक्त होते हैं उस समय सीता को चिन्ता होती है। वे राम के गुणों की सराहना भी करती हैं। ताटकावध के पश्चात् सीता को अत्यधिक हर्ष होता है जिसकी अभिव्यक्ति वे 'प्रियं नः प्रियं नः' कहकर करती हैं। इसे सबसे सीता के अनुराग की पुष्टि होती है। जब राम भगवान् शिव के धनुष को तोड़ देते हैं तो उर्मिला सीता को बधाई देती हैं, उस समय सीता को हर्ष के साथ लज्जा भी होती है।

सीता राम के शौर्य, औदार्य, दया, दाक्षिण्य, प्रताप, अनुभाव आदि गुणों से उनके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हैं। उसे राम का लेशमात्र भी अनिष्ट इष्ट नहीं है। सीता का राम के प्रति अनन्य अनुराग उस समय खुलकर सामने आ जाता है जब परशुराम राम को खोजते हुए वहीं आ जाते हैं और राम भी

उनसे मिलने के लिये उत्सुक हो उठते हैं। इस परिस्थिति में भयाकुल सीता मुग्धा नायिकोचित लज्जा का परित्याग कर राम को रोकने का प्रयत्न करती हैं। परशुराम की ओर तेजी से बढ़ते हुये राम को रोकने के लिये जब सीता शीघ्रतापूर्वक उधर जाती हैं तो राम उन्हें समझाने के लिये सखियों से कहते हैं। सखियाँ सीता से कहती हैं कि तुम तो सदैव हमारे समक्ष राम के शौर्य की प्रशंसा करते हुये कहा करती थीं कि हमारे स्वामी देवदानवसमेत त्रैलोक्य के मंगल रूप असामान्य विजयश्री से विभूषित हैं। ऐसा कहने पर तुम्हारे नेत्र विभ्रम से कुछ झुक जाते थे जिससे तुम्हारे मुखकमल पर स्नेह झलकने लगता था। सम्प्रति जब वे विजय यात्रा कर रहे तब तुम क्यों कम्पित हो रही हो ?[117] सीता की सखियों के इस कथन से भी उनका राम के प्रति अनुराग प्रकट हो रहा है।

राम सीता से कहते हैं कि प्रिये सीते ! प्रसन्नचित्त होकर लौट जाओ। भय, श्रम और लज्जा के संयोग से उत्पन्न इस कम्पन को मुग्धमधूकपुष्पसदृश और लावण्यमय ये तुम्हारे अङ्ग किस प्रकार सह सकेंगे ? और इस कसे हुए स्तनयुगल पर पड़ने वाले श्वास से झुका हुआ त्रिवलियुक्त तुम्हारा यह मध्य-भाग कहीं टूट न जाये।[118]

राम के इस कथन में सीता के प्रति उनका प्रगाढ अनुराग अभिव्यञ्जित हो रहा है।

जब सीता जामदग्न्य के मुख से 'भो भोः परिकन्दाः क्व रामो दाशरथिः' यह वाक्य सुनती हैं तो उनकी आशंका और बढ़ जाती है। वे किसी अन्य उपाय को न देखकर राम के धनुष को पकड़कर कहती हैं कि आर्यपुत्र ! आप तब तक न जायें जब तक कि पिताजी न आ जायें। सीता का यह व्यवहार राम को असमञ्जस में डाल देता है और वे अपने भाव को इस प्रकार प्रकट करते हैं कि गर्वोद्धत तपस्या और पराक्रम से युक्त परशुराम के आने से सत्संग का लोभ और वीररस का उन्माद एक ओर खींच रहा है तथा चन्दन के सदृश शीतल और पुनः पुनः चैतन्य को लुप्त करने वाला यह सीता का आलिंगन दूसरी ओर रोक रहा है।[119]

यहाँ जहाँ एक ओर राम का शौर्य और उत्साह प्रकट हो रहा है वहीं दूसरी ओर उनका श्रृंगार भाव भी ध्वनित हो रहा है।

इसी प्रकार राम और परशुराम के मध्य उत्तेजनापूर्ण वार्तालाप के मध्य सीता के नेत्रों में आँसुओं का आ जाना, गहरी साँस लेना, हाथ जोड़कर सङ्ग्रामश्री की स्तुति करना आदि सीता के अनुराग को प्रकट करते हैं।

कवि ने इस नाटक में यद्यपि विप्रलम्भ श्रृंगार की विस्तृत योजना नहीं

की है फिर भी यत्र-तत्र उसकी व्यञ्जना हो रही है। सीताहरण के पश्चात् राम की वियोग-वेदना बढ़ जाती है। वे कहते हैं कि वज्रकील की सदृश यह असह्य दुःख मेरे हृदय में व्याप्त हो रहा है, मन प्रगाढ अन्धकार में निमज्जित हो रहा है और लज्जा से आच्छन्न हो रहा है। जटायु की पीड़ा मुझे कचोट रही है जिसकी अब कोई प्रतिक्रिया नहीं है। वराकी सीता के प्रति करुणा मानो मर्मस्थल का उच्छेद कर रही है।[120] उन्हें दुःख है कि उन्होंने वन में आकर अपनी प्रिया पत्नी का अपहरण करवा दिया।[121] सीता को लक्ष्य कर राम कहते हैं कि हा प्रिये ! तुम कहाँ हो ? मधुरवाणी तो सुनाओ अथवा मुझ जैसे पराभूत के लिये वार्ता सुख भी दुर्लभ ही है।[122]

यहाँ आश्रय राम हैं। सीता आलम्बन हैं। सीता का अपहरण, अपहृत सीता का स्मरण आदि उद्दीपन हैं। राम के द्वारा सीता के लिये अनेक प्रकार के सम्बोधन अनुभाव हैं। विषाद, शंका, स्मृति, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे यहाँ विप्रलम्भ शृंगार की व्यञ्जना हो रही है। सीता के अपहरण से राम मार्मिक करुणा को प्रकट कर रहे हैं, अतएव यहाँ करुण विप्रलम्भ शृंगार है।

(ख) करुण रस

पञ्चम अङ्क में राम के द्वारा वाली का वध कर दिये जाने पर नील आदि विलाप करते हुए कहते हैं कि हा वीर, हा इन्द्रपुत्र, हा मन्दराचलसदृश अचल, हा अद्वितीय शूर, हा दुन्दुभि को मारने वाले पटुप्रचण्डदोर्दण्ड से युक्त, हा तुम जा रहे हो, हाय, हम लोग अशरण हो रहे हैं।[123]

यहाँ आश्रय नीलप्रभृति हैं। आलम्बन वाली है। राम के द्वारा वाली का वध उद्दीपन है। नील आदि का विलाप करना, वाली के गुणों का चिन्तन करना आदि अनुभाव हैं। स्मृति, दैन्य, चिन्ता, वितर्क, मोह, ग्लानि, जड़ता आदि व्यभिचारिभाव हैं।

इसी प्रकार सप्तम अङ्क के विष्कम्भक में शोकाकुलित लङ्का मेघनाद, कुम्भकर्ण एवं रावण प्रभृति राक्षसों के मारे जाने से खिन्नचित्त होकर इस प्रकार कहती है—हा महाराज दशकन्धर ! त्रैलोक्य की वीर लक्ष्मी के प्रति ग्रहण में आग्रही ! समस्त राक्षस लोक के प्रतिपालन में समर्थ भुजदण्डधारी पशुपति भगवान् शिव के पूजन में अपने मुग्ध मुखपुण्डरीकों को काटकर भेंट करने वाले ! केकसी के पुत्ररत्न ! बान्धव जनप्रिय ! अब मैं तुमको कहाँ देख सकूँगी ? हा कुमार कुम्भकर्ण, हा वत्स मेघनाद ! तुम कहाँ हो ? मेरे वाक्यों का उत्तर दो। चारों ओर देखकर—क्यों, कोई नहीं बोलता ?

ऊपर की ओर देखकर–हा दुर्भाग्य ! इस दशा में क्यों ले आये ? अथवा तुम्हें कोसूँ ? यह सब अपने ही दुश्चरित का परिणाम है। यह कहकर चिल्लाकर विलाप करने लगती है।[124]

यहाँ आश्रय लङ्का है। मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण आलम्बन हैं। मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण का मारा जाना उद्दीपन विभाव हैं। लङ्का के द्वारा करुण विलाप करना, रावणादि के गुणों का चिन्तन करना, स्वयं को दोष देना आदि अनुभाव हैं। स्मृति, दैन्य, चिन्ता, वितर्क, मोह, ग्लानि, जडता, उन्माद आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे करुण रस की व्यञ्जना हो रही है।

(ग) भयानक रस

पञ्चम अङ्क में लक्ष्मण दीर्घबाहु राक्षस के विषय में इस प्रकार कहते हैं कि भयावह आरा के सदृश दाँतों से चीरे गये प्राणियों के रुधिर से सिक्त दाढ़ी मूँछों से युक्त मुख और देह वाले दीर्घबाहु को आपने नहीं देखा। यदि देखते तो आप अत्यधिक प्रसन्न होते क्योंकि आप राक्षसों को देखने के लिये उत्सुक रहा करते हैं।[125]

क्रुद्ध वाली का वर्णन करते हुये लक्ष्मण कहते हैं कि क्रुद्ध वाली मेघ की गर्जन की तरह अत्यधिक गम्भीर गर्जन कर रहा है। गुञ्जाफल के सदृश रक्त और विवृत उसके मुख में दिङ्मण्डल प्रविष्ट सा हो रहा है। वेग से उत्तम्भित तुङ्गपुच्छ को देखने से बिजली का भ्रम हो जाता है। पीत वर्ण की पूँछ पताका सी दिखाई पड़ रही है। दर्प से अपने शरीर को फैलाकर मानों वह आकाश को व्याप्त कर कँपा सा रहा है।[126]

यहाँ लक्ष्मण आश्रय हैं। वाली आलम्बन है। वाली के द्वारा भयंकर गर्जन करना, मुख फैलाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। वाली के कार्यों से लोगों का भयभीत होना अनुभाव है। भय, त्रास, आवेग आदि व्यभिचारिभाव हैं। इनके द्वारा यहाँ भयानक रस की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार षष्ठ अङ्क के नेपथ्य में कहा जा रहा है कि आग में लाल-लाल ज्वाला से सप्ताधिक ज्वालाओं का भ्रम हो रहा है। वीरगण छिप-छिप कर इधर-उधर भाग रहे हैं, सोने के घर जल रहे हैं। अधजले राक्षसगण प्रलय की शंका कर रहे हैं। इस प्रकार भयानक अग्नि त्रिकूट के साथ लंका को भी चूम रहा है।[127]

यहाँ अग्नि आलम्बन है। सोने के घरों का जलना, लाल-लाल ज्वाला का फैलना, अधजले राक्षसों का छटपटाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। वीरों का इधर-उधर भागना, सभी का भय से व्याकुल होना आदि अनुभाव हैं।

भय, त्रास, आवेग आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे भयानक रस की व्यञ्जना हो रही है।

(घ) रौद्र रस

महावीरचरित नाटक के तृतीय अंक में रौद्र रस का सम्यक् परिपोष हुआ है। वसिष्ठ और विश्वामित्र जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयास करते हैं परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती है! जामदग्न्य राम के अनिष्ट के लिये सर्वथा कटिबद्ध रहते हैं। उनके इस अनुचित व्यवहार से शतानन्द क्रुद्ध हो उठते हैं और वे परशुराम को ललकारते हुये इस प्रकार कहते हैं–"आः ! शक्तिरस्ति कस्य वा विदेहराजन्यस्य राजर्षेर्याज्यस्य मे प्रेयसश्छायामप्यवस्कन्दितुम्, किं पुनर्जामातरम्।" अर्थात् आह ! किसका सामर्थ्य है कि हमारे यजमान राजर्षि जनक की छाया भी छू सके जामाता को तो छू सकने की बात ही क्या ?[128] शतानन्द के इन वचनों को सुनकर जामदग्न्य कहते हैं कि तुम्हारी तरह न जाने कितने राजपुरोहितों ने अपने तेज प्रकट किये थे परन्तु प्राकृत तेज का अप्राकृत तेज में शमन हो जाता है।[129] परशुराम का यह उत्तर शतानन्द के क्रोध को उद्दीप्त कर देता है और वे परशुराम को अनड्वन पुरुषाधम, महापातकिन्, अशिष्ट, बीभत्सकर्मन् अपूर्वपाखण्ड, काण्डीर आदि अनेक प्रकार से सम्बोधित करते हुये कहते हैं अरे ! क्या तुम ब्राह्मण हो ? माता का शिर काटना, गर्भस्थ बालकों की हत्या करना, यज्ञ दीक्षित राजाओं का वध करना आदि, क्या ब्राह्मण का आचार है ?[130] इस पर परशुराम का क्रोध और प्रचण्ड हो जाता है और वे शतानन्द को दुष्ट, सामन्तपुरोहित, अहल्यापुत्र आदि शब्दों के द्वारा सम्बोधित करते हैं। इस पर शतानन्द और अधिक उत्तेजित होकर कहते हैं–अरे दुष्ट, दुर्मुख, भृगुकुलकलंक ! ये राजा जनक और गुरुजन अपनी महत्ता के कारण क्षमाशील हैं अतः वे चाहे तुम्हें क्षमा कर दें परन्तु यह शतानन्द क्षमा नहीं करेंगे।[131] ऐसा कहकर क्रोध के साथ शापोदक को हाथ में लेकर सभासदों के समक्ष परशुराम को भस्म करने की घोषणा कर देते हैं।[132] इस पर वसिष्ठ उन्हें शान्त कर देते हैं परन्तु परशुराम का क्रोध और बढ़ जाता है। वे कौशलेन्द्र और विदेहराज की कृपा पर पलने वाले ब्राह्मणों, सप्त द्वीप और कुलपर्वतवासी क्षत्रियों को सम्बोधित करते हुये पृथ्वी को राम, जनक और दशरथ से रहित कर देने की घोषणा कर देते हैं।[133]

यहाँ आश्रय शतानन्द हैं। परशुराम आलम्बन हैं। परशुराम के द्वारा राम के वध का कथन करना उद्दीपन है। शतानन्द का परशुराम के समक्ष खड़े

हो जाना, उन्हें ललकारना, शापोदक के द्वारा भस्म कर डालने की घोषणा करना अनुभाव हैं। आवेग, अमर्ष, उग्रता आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे रौद्र रस की व्यञ्जना हो रही है।

जामदग्न्य के अहंकारपूर्ण वचन राजा जनक को उद्दीप्त कर देते हैं। उनका जो क्षात्र तेज शत्रुध्वंस, वृद्धावस्था, गृह्यतन्त्र के व्रतादि और निरन्तर ब्रह्मचिन्तन के कारण निवृत्त हो गया था वह पुनः जाग्रत हो उठता है और उन्हें धनुष उठाने के लिये प्रेरित कर देता है।[134] क्रुद्ध जनक को देखकर परशुराम उनके प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं।[135] जब जनक देखते हैं कि अब अन्य कोई मार्ग नहीं है तो वे सभासदों से अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि ये भृगु की सन्तान हैं और तपस्या में रत रहते हैं इसलिये इनके द्वारा द्वेष किये जाने पर भी बहुत समय तक हमने क्षमा कर दिया परन्तु जब ये हम लोगों को घास समझकर अपमान कर रहे हैं तब तो ब्राह्मण होने पर भी इनके ऊपर धनुष सँभालना ही होगा।[136] जनक के द्वारा धनुष सँभालने की बात सुनकर जामदग्न्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं वे उनसे रोष, हास और आक्षेप के साथ कहते हैं–क्या कह रहे हो? धनुष, धनुष। अहा, आश्चर्य ही है। याज्ञवल्क्य के अनुरोध से हमारे द्वारा अभयदान दे दिये जाने से सगर्व ! मिथ्याभिमानी, जराजीर्ण, यह क्षत्रियाधम, क्षत्रियों को देखने से अग्निस्फुल्लिङ्ग सदृश अट्टहास करने वाले शत्रुओं के शिररूप शाण पर चढ़े हमारे परशु को देखकर भी प्रलाप कर रहा है?[137] जामदग्न्य के ये वचन जनक के क्रोध को उद्दीप्त कर देते हैं और वे आवेगसहित उत्तर देते हुये अपने धनुष को चढ़ा लेते हैं।[138] परशुराम भी राजा जनक को दुरात्मन् क्षत्रियापसद पदों से सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि यह नीच क्षत्रिय मुझे ही बालक बतला रहा है? उठो, उठो, शिर के कट जाने से धमनियों की शिराओं से निकलने वाले शोणितफेन से विस्तृत धार हमारा यह कुठार पशु की तरह तुम्हें टुकड़ा-टुकड़ा करके तुम्हारे शरीरावयवों को भी खण्ड-खण्ड कर देगा।[139]

यहाँ राजा जनक आश्रय हैं। परशुराम आलम्बन हैं, परशुराम का राम के वध के लिये बारम्बार कहना, शतानन्द से बिगड़ना उद्दीपन है। राजा जनक का परशुराम के समक्ष आ जाना, धनुष सँभाल लेना आदि अनुभाव हैं। आवेग, अमर्ष, उग्रता आदि व्यभिचारिभाव हैं।

क्रुद्ध जनक को दशरथ शान्त करते हैं परन्तु दशरथ के ऐसा करने पर परशुराम उन्हीं से बिगड़ने लगते हैं–तुम भी अब दूसरे शक्तिशाली पुरुष की तरह मुझे धमकाने लगे, परन्तु ध्यान रक्खो, जामदग्न्य सदा ही निरवग्रह है

और तुम क्षत्रिय हो। इस पर दशरथ भी युक्तियुक्त एवं उत्तेजनात्मक उत्तर देते हैं–इसीलिये तुम्हारी उपेक्षा नहीं की जायेगी। दुर्दान्तों का दमन करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। तुम दुर्दान्त हो और हम क्षत्रिय तुम्हारे दमन के अधिकारी हैं, अतः शीघ्र ही शान्त हो जाओ नहीं तो अभी ही तुम्हारा दमन किया जायेगा। कहाँ शान्तिपरायण ब्राह्मण ? और कहाँ क्षत्रधार्य शस्त्र ?[140] दशरथ के इस कथन को सुनकर जामदग्न्य हँसकर कहते हैं–अब मैं वस्तुतः सनाथ हो गया क्योंकि तुम जैसे क्षत्रिय मेरे विनेता बन गये। तब दशरथ पूछते हैं–क्या तुम्हें इसमें भी कुछ सन्देह लग रहा है ? तुम्हारे सदृश व्यक्ति को जो कि ज्ञान प्राप्त करके भी विरुद्ध आचरण करता है यदि राजा शासित नहीं करेगा तो प्रजा में विप्लव हो जायेगा।[141] जब विश्वामित्र राजा दशरथ का समर्थन करते हैं तो जामदग्न्य उनसे भी गर्वपूर्वक बिगड़ते हुये कहते हैं हैं कि ब्रह्मज्ञान तथा धनुर्विद्या में मेरे गुरु भगवान् शंकर हैं। जब हमने समस्त क्षत्रियों का ही विनाश कर दिया तो बेचारे क्षत्रिय हमारा शासन क्या करेंगे ? सम्बन्ध तथा वार्धक्य के कारण वसिष्ठ हमारे आराध्य हैं परन्तु प्रतिस्पर्धा में वे हमसे अधिक नही हैं। ज्ञान और तपस्या के क्षेत्र में हमारे समान दूसरा कौन है ?[142] परशुराम के द्वारा महर्षि वसिष्ठ पर किया गया यह आक्षेप विश्वामित्र, दशरथ और जनक को असह्य हो जाता है और वे तीनों ही एक साथ क्रुद्ध होकर परशुराम की भर्त्सना करने लगते हैं–अरे अनार्य, निर्मर्याद ! तुम सनातन जगत् गुरु वसिष्ठ के प्रति भी निरंकुश हो रहे हो ? ठहरो, दुष्ट गज की तरह समीप ले आकर तुम्हारा दमन करते हैं।[143] इन लोगों का इतना कहना ही होता है कि जामदग्न्य अत्यधिक उत्तेजित हो उठते हैं वे भला इतना अपमान कैसे सहन करते ? उनका वह क्रोध जो अभी तक मर्मस्थल में चुभे हुये शस्त्र के समान उन्हें अत्यधिक व्यथित कर रहा था वह अब फूट कर बाहर आ जाता है और वे क्षत्रियों का २२ वीं बार संहार करने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं।[144] परशुराम के इस प्रतिज्ञावचन को सुनकर विश्वामित्र शान्त नहीं रह पाते और वे जामदग्न्य को सम्बोधित कर कहते हैं–अरे, क्या तुम समझ रहे हो कि यह संसार ब्रह्मतेज से रहित हो गया है या शस्त्रों का सामर्थ्य समाप्त हो गया है। तुम ब्राह्मणों और क्षत्रियों पर आक्षेप करते चले जा रहे हो। राम के प्रति तुम्हारा निश्चय कठोर है, मर्यादा का अतिक्रमण कर हम लोगों को दु:ख दे रहे हो, यद्यपि सम्बन्ध से तुम पालनीय हो तथापि मैं तुम्हारे आचरण से तुम पर रुष्ट हूँ, इसलिये क्रोध के कारण मेरा दाहिना हाथ शापोदक को और बायाँ हाथ प्राक्तन संस्कार के अनुरोध से धनुष को खोज रहा है।[145] परन्तु जामदग्न्य

विश्वामित्र के इस कथन से शान्त न होकर और अधिक उद्विग्न हो उठते हैं वे उनसे कहते हैं कि अरे ओ कौशिक ! यदि तुम अपने ब्रह्मतेज को दिखला रहे हो तो मैं उसे अपने उग्र तप से भस्म कर देता हूँ और यदि तुम अपने क्षात्र स्वभाव के कारण धनुष को उठा रहे हो तो मेरा यह परशु उचित कार्य करेगा ।[146]

यहाँ परशुराम, दशरथ, जनक, विश्वामित्र आदि के परस्पर रोष सम्भाषण एक-दूसरे पर आक्षेप आदि के द्वारा उद्दीपित क्रोध रौद्र रस की व्यंजना करा रहा है।

(ङ) बीभत्स रस

प्रथम अङ्क में ताटकावध के प्रसङ्ग में बीभत्स रस का परिपोष हो रहा है। लक्ष्मण राम से कहते हैं कि भगवन् ! अँतड़ियों में पिरोई गई कपालमाला से युक्त, हड्डियों के कङ्गन आदि गहनों के शब्द से आकाश को शब्दायमान करने वाली, पीकर वमन किये गये रक्तकर्दम से भयानक लम्बे स्तनों से भीषणकाय यह दर्प से घूमने वाली कौन है ?[147]

यहाँ आश्रय लक्ष्मण हैं, आलम्बन ताटका के द्वारा धारण की गई कपालमाला, हड्डियों का कङ्गन, एवं रक्त का वमन आदि उद्दीपन हैं, ताटका को देखकर लक्ष्मण के अनुमेय कार्य-थूकना, मुँह बिचकाना आदि अनुभाव हैं, आवेग, अपस्मार आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे बीभत्सरस की व्यंजना हो रही है।

इसी प्रकार ताटकावध का दृश्य भी बीभत्सरस पोषक है। लक्ष्मण कह रहे हैं कि हृदय के मर्मस्थल का भेदन करने वाले भयंकर बाणों के वेग से तत्काल अङ्ग कट रहे हैं और दोनों नासाकुटीरों से एक साथ बुद्बुद ध्वनि ध्वनि करता हुआ खून गिर रहा है।[148]

पञ्चम अङ्क में लक्ष्मण राम से कह रहे हैं कि हे आर्य ! तृप्ति से स्थूल रुधिर की धार पक रही है, त्वचा और मांस अलग-अलग पक रहे हैं, सन्धिस्थल चट-चट कर रहे हैं मेदा के नष्ट हो जाने से बुलबुले छूट रहे हैं।[149]

यहाँ आश्रय लक्ष्मण हैं। आलम्बन योजनबाहु हैं। योजनबाहु की रुधिर की धार का पकना, त्वचा, मांस का अलग होना आदि उद्दीपन हैं। लक्ष्मण के इस कथन से अनुमित मुँह फेर लेना, आँख मीचना आदि अनुभाव हैं। मोह, अपस्मार आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे बीभत्सरस की व्यञ्जना हो रही है।

(च) अद्भुत रस

प्रथम अङ्क में दिव्य जृम्भकास्त्रों के विषय में कह रहे हैं कि तपाये जाने

से द्रुत सुवर्ण से सिक्त की तरह दिशायें पीत वर्ण की हो रही हैं। सान्ध्य-राग से युक्त की तरह दिवस पीला पड़ गया है। केतु समुदाय से परिपूर्ण की तरह दिव्यास्त्र से व्याप्त आकाश निरन्तर चलित विद्युत्पूर्ण की तरह दिखाई दे रहा है।[150] सूर्य की प्रभा को छेदकर देदीप्यमान व्यापक तेज से शीघ्र गृहीत तथा मुक्त नेत्र मयूख सामर्थ्य का परित्याग कर रहा है।[151]

यहाँ आश्रय लक्ष्मण हैं। आलम्बन जृम्भकास्त्र हैं। अलौकिक जृम्भकास्त्रों के गुणों का वर्णन उद्दीपन है। स्वेद, रोमाञ्च, सम्भ्रम, नेत्र विकास आदि अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, भ्रान्ति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इनसे पुष्ट अद्भुत रस की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार अद्भुत रस की मनोरम व्यञ्जना उस प्रसंग में होती है जहाँ लक्ष्मण रामचन्द्र जी के द्वारा धनुष तोड़ने पर बहुत समय तक उस धनुर्भङ्ग के शब्द की गूँज की प्रतिध्वनि को सुनकर विस्मित होते हुये कहते हैं कि भुजदण्ड से उठाये गये शङ्कर के धनुष के भंग हो जाने से उत्पन्न हुई टङ्कार-ध्वनि जो आर्य रामचन्द्र जी के बालचरित प्रारम्भ होने का डिण्डिमस्वरूप है जिसके कारण ब्रह्माण्डरूप पात्र के कपालसम्पुट के दोनों भाग पहले झट से प्रक्षिप्त होकर अब आपस में मिल रहे हैं और जिसकी पिण्डीभूत प्रचण्डता ब्रह्माण्ड के उदर में घूम रही है वह घोर टङ्कारध्वनि अब भी शान्त नहीं हो रही है।[152]

यहाँ लक्ष्मण का विस्मय स्थायिभाव है। टङ्कारध्वनि आलम्बन है। उसकी अतिदीर्घता आदि उद्दीपन हैं। लक्ष्मण के इस वर्णन से अनुमित हर्ष, वितर्क, आवेग आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे अद्भुत रस की व्यञ्जना हो रही है।

षष्ठ अङ्क में पर्वत को धारण किये हुये हनुमान के आगमन का वर्णन करते हुये वासव कहते हैं कि शरीर रोमाञ्चित हो रहा है प्रलयकाल के समान पांशुवृष्टि हो रही है, वक्रपुच्छ से टकरा जाने के कारण नक्षत्रमण्डल झटका गया है, औत्सुक्यानुरूप व्यापार करके कूदकर जाकर एक ही क्षण में प्राज्ञ हनुमान् पर्वत लिये आ रहे हैं।[153]

यहाँ वासव का विस्मय स्थायिभाव है। हनुमान् का पर्वत ले आना आलम्बन है। हनुमान् की पूँछ से नक्षत्रमण्डल का झटका जाना, हनुमान् का कूदना आदि उद्दीपन हैं। इस प्रकार हनुमान् की महिमा का वर्णन अनुभाव है और इस वर्णन से अनुमित हर्ष आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबके द्वारा अद्भुत रस की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार लक्ष्मण को देखकर चित्ररथ कहते हैं कि शान पर चढ़ाये गये

मणि की तरह मेघमुक्त सूर्य की सदृश म्यान से निकली हुई तलवार की तरह कञ्चुकमुक्त सर्प की तरह छोटे राघव लक्ष्मण इस समय चमक रहे हैं ऐसा क्यों न हो ? दिव्यौषधि का कोई अचिन्तनीय प्रभाव है ।[154]

यहाँ भी चित्ररथ का विस्मय अद्‌भुत रस की निष्पत्ति करा रहा है ।

(छ) शान्त रस

चतुर्थ अङ्क में राम के द्वारा पराभूत परशुराम विश्वामित्र के सहित वसिष्ठ की प्रार्थना करते हुये कहते हैं कि वृद्धों के अनादर से उत्पन्न पाप की शुद्धि के लिये आप प्रायश्चित्त का उपदेश करें । राम ने हमारा निग्रह कर दिया है । हे भगवन् ! पहले पहल आप ही धर्म के द्रष्टा हुये थे; आप ही से ज्ञान प्राप्त कर मनु आदि ने अनेक प्रकार की स्मृतियाँ बनायीं ।[155]

यहाँ परशुराम का शम स्थायिभाव है । अनित्यत्व दुःखमयत्व आदि से संसारता की असारता का ज्ञान कर वसिष्ठ से प्रायश्चित्त के उपदेश के लिए कहना आलम्बन है । रमणीय एकान्त स्थान, महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव हैं । परशुराम के कथन से अनुमित रोमाञ्चादि अनुभाव हैं । निर्वेद, स्मृति, मति आदि सञ्चारिभाव हैं इन सबसे शान्तरस की व्यञ्जना हो रही है ।

इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में वाली के द्वारा अपने कर्तव्य पालन एवं संसार की असारता प्रतिपादन आदि से शान्तरस की अभिव्यक्ति हुई है ।[156]

(ज) वात्सल्यरस

प्रथम अङ्क में जिस समय अनुपमेय पराक्रमी वीर राघव रामचन्द्र हर-कोदण्ड को खण्डित कर देते हैं उस समय राजा कुशध्वज हर्षोन्मादपूर्वक कहते हैं कि आओ वत्स राम ! आओ । हे रघुनन्दन रामभद्र ! तुम्हारे मस्तक को चूम लूँ और चिरकाल तक गले लगाये रहूँ अथवा दिन रात छाती से चिपटाये रहूँ या तुम्हारे चरणकमलों की वन्दना करूँ ।[157]

यहाँ राजा कुशध्वज का वात्सल्य स्नेह स्थायिभाव है । राजकुमार राम आलम्बन हैं । राम की चेष्टा, शूरता आदि उद्दीपन विभाव हैं । राजा कुशध्वज के द्वारा राम का शिर चूमना, आलिङ्गन, अवलोकन आदि अनुभाव है । हर्ष, गर्व आदि सञ्चारिभाव हैं । इन सबसे वात्सल्य रस की व्यञ्जना हो रही है ।

(घ) मालतीमाधव में रसध्वनि

(अ) अङ्गीरस

मालतीमाधव एक आदर्श प्रकरणरत्न है। नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रकरण में श्रृंगाररस को ही अङ्गीरस के रूप में प्रस्तुत करना चाहिये, अतएव महाकवि भवभूति मालतीमाधव में श्रृंगार को ही अङ्गीरस के रूप में प्रतिष्ठापित करते हैं। मालतीमाधव प्रकरण के इस नाम से ही यह ध्वनित होता है कि इसमें मालती और माधव के प्रणय से सम्बन्धित इतिवृत्त को प्रस्तुत किया है। कवि ने इस प्रकरण में श्रृंगाररस की दो धारायें प्रवाहित की हैं—(१) मालती और माधव के प्रणय प्रसंग में और (२) मदयन्तिका और मकरन्द के प्रणय प्रसंग में। इनके अतिरिक्त मन्दारिका और कलहंस के प्रणय में भी हमें श्रृंगाररस की झलक मिलती है। इन सभी प्रणय प्रसंगों में मालती और माधव का प्रणय ही प्रमुख है।

नाट्यशास्त्रीय नियम के अनुसार पहले नायिका के हृदय में अनुराग का उद्रेक होना चाहिए।[158] इस शास्त्रीय मान्यता के अनुसार महाकवि भवभूति पहले नायिका मालती के हृदय में अनुराग का बीजारोपित करते हैं। प्रारम्भ में ही कामन्दकी यह संकेत कर देती है कि मालती ने अपने भवन की वलभी के वातायन से मार्ग पर घूमते हुए माधव को अनेक बार देखा; जैसे-मानो रति साक्षात् कामदेव को देख रही हो। नायक माधव के देखने से नायिका मालती के गाढ़ उत्कण्ठा के द्वारा अंग मलिन हो गये हैं[159] और मन व्यथित हो उठा है। इस प्रकार कवि ने यहाँ पर मालती के पूर्वराग को प्रस्तुत किया है। नायक माधव अत्यन्त रूपवान् एवं सच्चरित्र हैं। वे अनेक विद्याओं में पारंगत तथा विविध कलाओं में प्रवीण हैं। उसी प्रकार नायिका मालती भी परमसुन्दरी, मितभाषिणी एवं विविध विद्याओं तथा कलाओं में निपुण है। योग्य गुणवान् माधव में मालती का अनुराग स्वाभाविक ही है। मालती के इस पूर्वराग में नयनप्रीति, अभिलाष, चित्तासङ्ग, उद्वेग, त्रपानाश आदि कामदशाओं की स्थिति है। यहाँ नायक माधव आलम्बन विभाव है। माधव का मालती के भवन के समक्ष बार-बार पर्यटन उद्दीपन विभाव है। मालती के अंगों का मलिन होना, हृदय में पीड़ा आदि अनुभाव हैं और औत्सुक्य आदि व्यभिचारियों से यहाँ मालती का पूर्वराग पुष्ट होता है। मालती और माधव के इस प्रणय प्रसंग को परिपुष्ट कराने का श्रेय वस्तुतः बौद्धसंन्यासिनी कामन्दकी को है। कामन्दकी की आज्ञा से ही उनकी शिष्या अवलोकिता मालती और माधव में परस्पर अनुराग उत्पन्न करने के लिए

माधव को भूरिवसु के भवन के सन्निकट मार्ग से सञ्चरण कराने लगती है। उसके इस कौशल का यह परिणाम होता है कि माधव के सौम्य और कमनीय स्वरूप को देखकर मालती उन पर अनुरक्त हो जाती है। यहाँ तक कि उसे माधव का विरह असह्य होने लगता है। अतएव मालती अपने उत्कण्ठित चित्त को बहलाने के लिए माधव का चित्रनिर्माण करती है। वह चित्र माधव को प्राप्त हो सके, जिससे उन्हें अपने ऊपर मालती का अनुराग ज्ञात हो सके, यह विचार कर मालती की धाय की पुत्री लवङ्गिका उसे माधव के भृत्य कलहंस की प्रणयिनी मन्दारिका को दे देती है। अपनी योजना को सफल बनाने के लिए अवलोकिता अगणित स्त्री-पुरुषों से परिपूर्ण मदनोद्यान के महोत्सव में माधव को भेजती है ताकि वह वहाँ मालती को देख सके। उस उद्यान में पहुँचकर माधव बकुलवृक्ष के नीचे बैठकर बकुल फूलों की माला बना ही रहे थे कि उसी समय अपनी सखियों से घिरी हुई मालती हथिनी पर आरूढ़ होकर वहाँ आती है। माधव वहीं मालती के अनुपमेय सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है और प्रथम दर्शन में ही उसके अनिन्द्य सौंदर्य-सन्दोह से आकृष्ट हो जाता है। यहाँ मालती आलम्बन विभाव है। मकरन्दोद्यान के समीप चारों ओर विकसित पुष्पों की मधुर और मादक सुगन्ध भ्रमरों का मधुर गुञ्जन, मनोमोहक मुकुलावलि से सुशोभित बकुल वृक्ष बकुलमाला आदि उद्दीपन विभाव हैं। मकरकेतन की सञ्चारिणी विजय वैजयन्तिका, रमणीयता की निधि और सौन्दर्य की पराकाष्ठा मालतीमाधव की स्निग्ध दृष्टि का आलम्बन है जो कि प्रथम दर्शन में ही माधव के नेत्रों में अतिशय आनन्द उत्पन्न कर उसके अन्तःकरण को आकृष्ट कर लेती है।

यहाँ सम्भोग श्रृंगार की स्थिति होने के कारण मालती और माधव दोनों की रति स्थायिभाव के आश्रय हैं। अतएव दोनों ही एक दूसरे के लिए आलम्बन विभाव हैं, फलतः एक के अनुभाव दूसरे के लिए उद्दीपन विभाव बन जाते हैं। माधव को देखने पर मालती के अनुभाव के रूप में व्यक्त स्निग्ध दृष्टि के विविध रूप नायक माधव के रति भाव को परिपुष्ट करने वाले उद्दीपन बन जाते हैं। नायिका मालती प्रथम मिलन में ही माधव पर अद्भुता, कान्ता, मुकुलिता, आकुञ्चिता, शङ्किता, स्निग्धा आदि अनेक प्रकार की दृष्टियों का प्रयोग करती है। आदर्श नायिका मालती न तो माधव के समीप पहुँचती है और न ही उनसे कुछ कहना उचित समझती है। वह अपने नेत्रों के द्वारा ही अपने हार्दिक भावों को अभिव्यक्त कर देती है। उसके कटाक्षों से आहत माधव आन्दोलित हो उठता है। मालती के प्रेम पारावार में

आकण्ठ निमग्न माधव की स्थिति विचित्र हो जाती है। उनकी चाल आलस्य-युक्त है अर्थात् वे लड़खड़ाते हुए चलते हैं। दृष्टि शून्य हो गई है। शरीर प्रसाधन के सौन्दर्य से रहित है और श्वास तेजी से चल रही है। सुन्दर और प्रिय चन्द्रादि प्रसिद्ध पदार्थ धैर्य को हटा रहे हैं।[160] माधव अपने मन में ही आश्चर्य का अनुभव करते हुए कहते हैं कि उस त्रैलोक्य सुन्दरी मालती के चले जाने के पश्चात् मेरा चित्त उसी का बहुत समय से चिन्तन करके अनवसर में ही मन्द विवेक वाला होकर लज्जा को जीतकर विनय को हटाकर और धैर्य को उन्मूलित कर अत्यधिक कष्ट से लौट आया है।[161] यहाँ अनुस्मृति, गुणकीर्तन, चक्षुःप्रीति, उद्वेग, त्रपानाश, उन्माद, जड़ता आदि कामदशाओं की प्रतीति हो रही हैं। जो हृदय अपने प्रिय के सहवास में आनन्द-सागर में निमग्न रहता है वही उसके वियोग में अत्यधिक सन्तप्त होने लगता है। जिस माधव का हृदय अपनी प्रेयसी मालती के मिलन के आनन्द से स्तम्भ और जड़ता का अनुभव करता रहा है वही उसके वियोग के दुःख के कारण व्यथा और सन्ताप की तीव्र अनुभूति कर रहा है।[162] यहीं पर कवि ने आलस्य, चिन्ता, ग्लानि, श्रम, विषाद, मोह आदि विप्रलम्भ के अनेक सञ्चारी भावों को प्रस्तुत किया है। मालती को लक्ष्य कर माधव कहता है कि वह सुकुमारी रामणीयक निधि की अधिदेवता अथवा सौन्दर्य के सार अंशों का भवनरूप है। हे मित्र ! निश्चित रूप से चन्द्रकला, कमलनाल और चन्द्रिका आदि उसके कारण रहे हैं और मकरकेतन उसके रचयिता रहे होंगे।[163]

यहाँ गुणस्तुति नामक मदनावस्था की स्थिति है। तर्क नामक व्यभिचारिभाव भी अभिव्यक्त हो रहा है। कवि ने शोभा, कान्ति आदि अंगनाओं के स्वभावज अलंकारों को भी विन्यस्त किया है। माधव मालती में कामजन्य सन्ताप भी देखता है और जिस पुरुष के प्रति उसका कामभाव है उसे वह सौभाग्यशाली मानता है। मालती का मन्मथविकार बहुदिवसोपचीयमान था, यही कारण है कि उसके हस्तपादादि अवयव परिमर्दित मृणाली के सदृश म्लान थे। भोजन-शयनादि क्रियाओं में परिजनों की प्रार्थनाओं से ही उसकी प्रवृत्ति होती थी। अभिनव करिदन्त के सदृश उसका कान्त कपोल कलंक से रहित सुधांशु की शोभा को धारण कर रहा था।[164]

यहाँ माधव के इस वर्णन में मालती की कृशता, निद्राच्छेद, विषयनिवृत्ति, पाण्डुता आदि कामदशायें प्रकट हो रही हैं। निर्वेद, दैन्य, ग्लानि, जडता, अपस्मार, विषाद, आवेग, मोह, चिन्ता, औत्सुक्य, व्याधि आदि व्यभिचारिभावों से, मकरन्दोद्यान, बकुलमाला आदि उद्दीपन विभावों से और नायक

माधव आलम्बन विभाव के संयोग से स्थायिभाव रति परिपुष्ट होकर अभिलाष विप्रलम्भ श्रृंगार की व्यञ्जना हो रही है।

सत्य एवं पवित्र प्रेम अनिर्वचनीय होता है। उस प्रकार का प्रेम मात्र बाह्य परितुष्टि का साधन नहीं होता अपितु वह अन्तर्वृत्ति में आनन्दामृत की सृष्टि करता है। माधव के द्वारा देखी गई मालती उसके नेत्रों में अमृतवर्ति की तरह निरतिशय आनन्द को उत्पन्न कर देती है और उसके अन्तः-करण को वैसे ही आकृष्ट कर लेती है जिस प्रकार चुम्बकमणि लोह धातु को। स्नेह वस्तुतः किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता। कोई आन्तरिक कारण दो पदार्थों को मिला देता है। सूर्य के उदय होने पर पुण्डरीक स्वयं खिल जाता है और चन्द्रमा के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि पिघल जाता है।[165] यही कारण है कि माधव मानस का सन्ताप परम्परा रूप महाविपत्ति के लिए बिना किसी अपेक्षा किये ही अङ्गना मालती में आसक्त हो जाता है।[166] माधव उस सुन्दरी के अनिर्वचनीय वचनसम्पत्ति के अतिक्रमण करने वाले वैचित्र्य से सम्पन्न श्रृाङ्गारिक चेष्टाओं से समुद्भासित स्तम्भ, स्वेद आदि प्रचुर सात्त्विक विकारों से युक्त धैर्य को दूर कर देने वाले और विजयशील प्रसिद्ध कामदेव के आचार्यत्व से अभिभूत हो जाते हैं।[167] अतः निश्चल और विकसित उल्लसित भ्रूलताओं से युक्त अनुराग से सुन्दर और अनिर्वाच्य सुखानुभूति से मुकुलित अपांगप्रदेश में विस्तार से सम्पन्न नेत्रों के संगम होने पर लज्जा से संकुचित मालती के अवलोकनों का अनेक प्रकार से आश्रय हो जाता है।[168] अङ्गना मालती का मनोमोहक कटाक्ष माधव के हृदय का अपहरण कर लेता है, उस पर आघात करता है, उसका पान कर लेता है और उसे उन्मूलित कर देता है।[169] इसके पश्चात् ग्रीवा को परिवर्तित कर जाती हुयी परिवर्तित वृत्तान्त वाले सुन्दर मुख वाली निविड नेत्रलोमों से युक्त अङ्गना मालती ने अमृत और विष से लिप्त जिस कटाक्ष का माधव के ऊपर प्रहार किया वह उसके हृदय में गहरा धँस गया।[170]

जब हृदय प्रेम पारावार में निमग्न हो जाता है तो अनेक भाव आविर्भूत होने लगते हैं। माधव के हृदय में अनेक प्रकार के भाव आविर्भूत होने लगते हैं। यही कारण है कि निश्चयात्मक ज्ञान का अतिक्रमण कर देने वाला सभी वाक्यों का अविषय विवेक विनाश से बढ़े हुए महामोह से विषम कोई अनिर्वचनीय विकार माधव के अन्तःकरण में दो विरोधी भावों जडता और सन्ताप का सञ्चार करता है।[171] अतएव उन्मादावस्था से युक्त माधव को सम्मुख स्थित विषय में भी निश्चय की अभिव्यक्ति नहीं होती, अनुभूत पदार्थ में भी अतथाभाव से विपर्यस्त स्मरण होता, हिम, वापी अथवा चन्द्रमा में

सन्ताप का विनाश नहीं होता, मन निष्ठाशून्य होता हुआ भ्रमण करता है और किसी अनिर्वचनीय पदार्थ का आश्रय लेता है।[172]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मदनोद्यान में माधव और मालती के मिलन के अवसर पर कवि अन्योन्याश्रित श्रृंगार को प्रस्तुत करता है। मालती के चले जाने पर माधव की विरहावस्था चित्रित की गई है। मालती के वियोग से दु:खित माधव अनेक प्रकार की असह्य दु:खानुभूतियों का वर्णन करता है। वियोगावस्था में प्रेमी का चित्र बनाकर मन बहलाना एक अच्छा उपाय है। मालती तो माधव का चित्र बना ही चुकी है जिससे माधव का रतिभाव और अधिक उद्दीप्त हो उठता है। विषण्णमानस माधव उसी चित्रफलक पर मालती का चित्र बनाना चाहता है परन्तु वह इस कार्य में सफल नहीं होता, कारण अश्रु, जाड्य, स्तम्भ, स्वेद, वेपथु आदि सात्त्विक भाव उसे अभिभूत कर देते हैं और वह अधीर होकर कहने लगता है कि समुत्पन्न वाष्पप्रवाह नेत्रों को पुन: पुन: आवृत्त कर रहा है। प्रिया की चिन्ता से प्राप्त जड़ता से शरीर स्तब्ध हो रहा है। यह हाथ चित्राङ्कन की क्रियाओं में सद्य: स्वेदोद्रेक तथा अनवरत वेपथु से चञ्चल अंजलि वाला हो रहा है। अब मैं क्या करूँ?[173] माधव का मालती के प्रति अनन्य प्रेम-भाव उसके द्वारा लिखे गये इस पद्य से भी प्रकट होता है–

"जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादय:
प्रकृतिमधुरा: सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येक: स एव महोत्सव:।"[174]

(अर्थात् लोक में अत्यधिक प्रसिद्ध चन्द्रकलादि पदार्थ जयशील हैं। स्वभाव से मधुर और भी पदार्थ हैं जो कि मन को आह्लादित कर देते हैं परन्तु जो यह नेत्रचन्द्रिका मालती लोक में मेरे नेत्र विषय को प्राप्त हो गई है जन्म में वही एक सौख्य का का कारण है।)

माधव का उन्माद क्रमश: बढता ही जाता है। जब उसका मित्र मकरन्द उसे निवासगृह की ओर ले जाने लगता है तो वह विचित्र स्थिति का अनुभव करता है। वह उस स्थिति में पवन को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि विकासोन्मुख मुकुलों से दन्तुर कुन्दपुष्पों के स्तबक से क्षरित होने वाले निबिडपुष्परसों के सौरभ के सहचर हे वायो! कुछ चञ्चल नेत्रों से युक्त उस नताङ्गी मालती का आलिङ्गन करके मेरे प्रत्येक अङ्ग का स्पर्श करो।[175]

यहाँ चिन्ता के द्वारा भी माधव का रतिभाव पुष्ट हो रहा है। उसे चारों

ओर मालती ही मालती दिखलाई देती है। वह प्रफुल्ल सुन्दर सुवर्ण कमल के सदृश आसक्ति से तिरछी चलने वाली दृष्टि से युक्त मुख को धारण करती हुयी उस तन्वङ्गी मालती को कभी दाहिनी ओर कभी बाईं ओर, कभी पीछे, कभी बाहर, कभी हृदय के भीतर और कभी हृदय से बाहर देख रहा है।[176] इस सबसे माधव की दशा ऐसी हो जाती है कि उसके शरीर में परिमथन करने वाला अनिर्वचनीय दाह फैलने लगता है। मोह इन्द्रियों को जड़ बनाने लगता है। उत्कण्ठा बढ़ती चली जा रही है। हृदय भीतर ही भीतर जल रहा है और वह तन्वङ्गी मालती के ही ध्यान में तन्मय हो जाता है।[177]

नायिका मालती की वियोगव्यथा भी अत्यन्त असह्य है। वह अपनी प्रिय सखी लवङ्गिका के साथ मनोविनोद के लिए एकान्त स्थान में बैठकर वार्तालाप करती है। वह प्रियतम माधव के करकमलों द्वारा ग्रथित बकुल-माला और उन्हीं के द्वारा निर्मित चित्र से मन बहलाने का प्रयास करती है परन्तु ये दोनों ही मालती की विरह-व्यथा को कम न करके और अधिक उद्दीप्त कर देते हैं। मदनोद्यान में प्रियतम से मिलने की घटना उसके हृदय को झकझोर देती है। उस समय का नेत्राह्लाददायी प्रियतम का दर्शन अब दीर्घ सन्ताप का कारण बन रहा है। माधव के द्वारा रचित श्लोक को पढ़ कर वह आनन्द की अनुभूति करती है और कहती है कि महाभाग ! जिस प्रकार आपकी आकृति मधुर है उसी प्रकार वाणी की मधुरता भी श्लाघ्य है। वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो आपको नहीं देखती हैं अथवा देखकर स्वयं को या हृदय को सँभालने में समर्थ रहती हैं। यह कहकर मालती रो पड़ती है। माधव की वियोगव्यथा से पीड़ित मालती का मनोराग तीव्र विष के सदृश लगातार फैलता ही जा रहा है। निर्धूम अग्नि की ज्वालाओं के सदृश जल रहा है और बढ़े हुए ज्वर के सदृश प्रत्येक अवयव को अत्यधिक पीड़ित कर रहा है। इस स्थिति में उसकी रक्षा करने में न पिता समर्थ हैं न माता और न प्रियसखी लवङ्गिका।[178] असह्य विरह वेदना से अभिभूत मालती कुल कन्या के प्रतिकूल साहस करने की इच्छा करती है। वह स्पष्ट कह देती है कि प्रत्येक रात्रि को गगन में अपनी समस्त कलाओं से युक्त होकर चन्द्रमा प्रज्वलित हों और कामदेव दाह करें। ये लोग मृत्यु से अधिक क्या करेंगे ? मेरे तो पिता प्रिय और प्रशंसनीय हैं। माता निर्मल वंश में उत्पन्न और प्रिय हैं। इसी प्रकार कुल भी निष्कलंक और प्रिय है परन्तु यह जन (माधव) और अपना जीवन प्रिय नहीं है।[179] यहाँ हम देखते हैं कि मालती में एक आदर्श नायकोचित सत्त्वज धैर्य की स्थिति है। परन्तु उसका यह कथन मुझे

अपने प्राण भी प्रिय नहीं हैं, उसके उद्वेग को प्रकट कर रहा है। प्रिय विरह से उत्पन्न संज्वर उसे उन्मत्त बना देता है। इस सबसे खिन्न होकर वह स्वयं कहने लगती है कि इस विषय में अपराधिनी तो वस्तुतः मैं स्वयं हूँ जो अधीर होकर उनकी ओर निर्लज्जता से बार-बार देखती रही हूँ। इससे उसकी चक्षुः प्रीति, चित्तासङ्ग और त्रपानाश नामक कामदशायें भी प्रकट हो रही हैं।

माधव के वियोग से मालती अत्यन्त कृशकाय हो गई है। उसे देखकर कामन्दकी कहती है कि आर्द्र कदली के मध्यभाग की तरह मनोहर कृश अङ्ग वाली कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमूर्ति की सदृश नेत्रानन्ददायिनी कल्याणी मालती हम दोनों के चित्त को अत्यधिक आह्लादित कर रही है और कामाग्नि के उद्दाम दाह से विह्वल अवस्था को प्राप्त होती हुयी मन को प्रकम्पित कर रही है।[180] अत्यधिक शुभ्र और पांसुल कपोलों से युक्त मुख को धारण करती हुई यह मालती अत्यधिक सौन्दर्य को प्राप्त हो गई है क्योंकि सौन्दर्यशाली जन में भ्रमण करता हुआ कामदेव का ललित व्यापार अत्यधिक उत्कर्ष के साथ रहता है।[181] यहाँ हम देखते हैं कि कामन्दकी के इस कथन से मालती के मार्दव और सौकुमार्य के साथ उसकी कृशता एवं पाण्डुता प्रकट हो रही है।

परिव्राजिका कामन्दकी मालती में संकल्प निर्मित प्रिय समागम का अनुमान कर रही है–

"नीवीबन्धोच्छ्वसनमधरस्पन्दनं दोर्विषादः
स्वेदश्चक्षुर्मसृणमुकुलाकेकरस्निग्धमुग्धम्।
गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयोरुत्प्रबन्धः प्रकम्पो
गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना चेतना च॥"[182]

(अर्थात् नीवीग्रन्थि की शिथिलता, अधरस्पन्दन, बाहुशैथिल्य, स्वेद, कोमल कुड्मलाकार आकुञ्चित स्निग्ध और मुग्ध नेत्र, गात्रस्तम्भ, मुकुलाकार स्तनों की स्थिरता का अतिक्रमण करने वाला कम्प, परिपूर्ण कपोलों में रोमाञ्च समूह, मूर्च्छा और चैतन्य प्रियसमागम के अनुभव के ज्ञापक हैं।)

यहाँ टीकाकार जगद्धर ने मालती के नीवीबन्ध के शैथिल्य से अनुराग की उत्कटता, अधरस्पन्दन से चुम्बन, दोर्विषाद से आलिङ्गन सुख, स्वेद से आयास, गात्रस्तम्भ से हर्षाधिक्य, कुचकुड्मल प्रकम्प से प्रिय का गाढालिङ्गन, गण्डमण्डल के पुलकपटल से प्रिय चुम्बन और मूर्च्छा से निरतिशय आनन्द का अनुमान कर सम्भोग शृंगार की सम्पूर्ण सामग्री उपस्थित कर दी है।

टीकाकार त्रिपुरारि भी यहाँ अनुभाव निबन्धन से परिपुष्ट और आलम्बन तथा व्यभिचारिभावों की प्रतीति के कारण सम्भोग श्रृंगार की स्थिति प्रतिपादित करते हैं।

वस्तुतः यहाँ सम्भोग श्रृंगार नहीं है। यहाँ तो नायिका मालती अपनी प्रियसखी लवङ्गिका को अपनी वियोग वेदना बता रही है। परिव्राजिका कामन्दकी मालती की चेष्टाओं एवं हावभावों को देखकर यह अनुमान करती है कि मानो वह संकल्प के द्वारा प्रियसमागम कर रही हो। संकल्पनिर्मित प्रियसमागम सम्भोग श्रृंगार का हेतु नहीं बन सकता क्योंकि सम्भोग श्रृंगार में प्रेमी और प्रेमिका का एक स्थान में एक साथ संयोग आवश्यक है। नायिका की चेष्टाओं के द्वारा ही नायक की उपस्थिति की कल्पना से सम्भोग श्रृंगार की निष्पत्ति नहीं हो सकती। वस्तुतः यहाँ कामन्दकी के इस कथन के द्वारा भी विप्रलम्भ श्रृंगार की निष्पत्ति हो रही है।

मालती की इस वियोगव्यथा से कामन्दकी खिन्न होती है। इससे भी अधिक उसकी खिन्नता का कारण है मालती का अयोग्य वर नन्दन को दिये जाने का प्रस्ताव। वह स्पष्ट कर देती है कि इस मालती में कामदेव का जयशील अस्त्र स्वाभाविक विलास का आश्रय यह शरीर अयोग्य वर नन्दन को प्रतिपादन से शोचनीय होगा और इसमें गुणों का उत्कर्ष भी निष्फल होगा।[183] कामन्दकी आश्चर्य करती है कि रूप और अवस्था आदि वर गुणों की अपेक्षा न रखने वाले नन्दन के साथ मालती के परिणय का निर्णय मंत्री ने कैसे ले लिया ?[184] कामन्दकी के ये वाग्वज्र मालती की विरहवेदना के संवर्द्धन में अग्नि में घृत डालने का कार्य करते हैं और वह मन ही मन कहने लगती है हाय ! अनिष्ट वज्रपात के उपस्थित होने से मैं मन्दभाग्य वाली नष्टप्राय हो गई हूँ।[185]

कामन्दकी माधव के अनेक गुणों को प्रस्तुत करती हुई उनकी प्रशंसा करती है। वह यह बतलाती है कि शरदृतु के पूर्ण चन्द्र सदृश मुख वाले बाल्यावस्था में भी विद्यानिधान माधव भवन से निकल कर सम्प्रति यहाँ आये हुए हैं। जिनके दर्शन योग्य स्थान में यह नगर उन्माद से चञ्चल सुन्दरियों के कटाक्षों से नीलकमलों से युक्त वातायनों से सम्पन्न के सदृश हो रहा है।[186] मालती आनन्दपूर्वक लवङ्गिका से कहती है कि सुना गया है ये महाभाग किसी महाकुल में उत्पन्न हुए हैं। मालती अपने पिता पर आक्षेप करती है और उस दुःखपक्ष से हटकर आनन्द का अनुभव करती हुई पुनः कहती है कि वे महाभाग महाकुल में उत्पन्न हुए हैं। प्रियसखी ने यह ठीक ही कहा है कि समुद्र को छोड़कर पारिजात की उत्पत्ति और कहाँ से हो

सकती ? क्या मैं उनको फिर देखूँगी ?

(यहाँ नायिका मालती के इस कथन से उसकी अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप आदि कामदशायें प्रकट हो रही हैं।

इस प्रकार अपने उपाय कौशल से कामन्दकी मालती को अपने पिता पर श्रद्धारहित कर माधव के प्रति आसक्त कराने में सफल होती है। इसी प्रकार वह नन्दन की बहन मदयन्तिका के साथ माधव के मित्र मकरन्द का भी परिणय कराना चाहती है।)

कामन्दकी मालती में आत्मीयता का भाव जगा देती है अतएव मालती उसकी आज्ञाकारिणी बन जाती है। वह पुनः पुनः पिता की निन्दा एवं माधव की कुलीनता का स्मरण करती है। लवङ्गिका के साथ मालती को देखकर माधव का चित्त अनिर्वचनीय विकार को प्राप्त हो जाता है।[187] अतिशय सुन्दरी मालती म्लान चाम्पेय पुष्पमाला के विलास के सदृश आन्दोलित और आलस्यपूर्ण अंगों से कामाग्नि को दीप्तचित्त को मत्त और नेत्रों को कृतार्थ कर देती है।[188] माधव को प्रियतमा मालती के वचन श्रवण से रोमाञ्च होने लगता है।[189]

यहाँ माधव की अभिलाष, चिन्ता, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद कामदशायें प्रकट हो रही हैं। कामन्दकी मालती का आलिङ्गन कर उससे कहती है कि हे सुन्दरि ! पुष्पावचय से उत्पन्न श्रम तुम्हारे वचन को स्खलित कर रहा है। प्रत्येक शरीरावयव का अवलम्ब कर रहा है। मुखचन्द्र को उद्भासित करने वाले स्वेद बिन्दुओं को उत्पन्न कर रहा है और नेत्रों को भी मुकुलित कर देता है अतएव वह प्रियदर्शन के सदृश तुम्हारे प्रति व्यवहार कर रहा है।[190] यहाँ कामन्दकी मालती के श्रमजन्य अनुभावों को प्रियदर्शनजनित अनुभाव के रूप में प्रस्तुत करती है। गद्गद, श्रम, स्वेद, नेत्रसंकोच ये अनुभाव वस्तुतः परिश्रमजन्य हैं परन्तु कामन्दकी इन्हें यहाँ वल्लभदर्शन जनित बतलाती है। यहाँ वस्तुतः इस नर्मोक्ति के द्वारा कामन्दकी मालती के रतिभाव को पुष्ट करना चाहती है। इसके पश्चात् ही वह मालती को यह स्पष्ट कर देती है कि माधव भी मालती के वियोग से शारीरिक सन्ताप के द्वारा पराधीन के सदृश है क्योंकि वह चन्द्र में अथवा प्रीतिपात्र जन में आनन्दित नहीं होता है, इसलिए अत्यन्त धैर्ययुक्त होकर भी वह दुःसह मनोवेदना को प्रकाशित कर रहा है। फलिनी लता की सदृश देहकान्ति से युक्त होकर भी कुछ पीले और शुभ्र रमणीय अतिशय कृश शरीर को धारण कर रहा है, तथापि सुन्दर है।[191] वह बतलाती है कि जब से मालती का मुखचन्द्र उसकी दृष्टिगोचरता को प्राप्त हुआ है तभी से प्रशान्त समुद्र के

चन्द्र दर्शन के द्वारा तरंगों से चञ्चल सलिल के सदृश उसका मन उत्कण्ठाओं से चञ्चल होता हुआ धैर्य खो चुका है।[192] इस प्रकार कामन्दकी माधव की चक्षुःप्रीति, चित्तासङ्ग, अरति, सन्ताप, कृशता, पाण्डुता आदि मदनावस्थाओं के वर्णन के द्वारा उसकी वियोग वेदना का मालती के समक्ष यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर मालती के अनुराग को और अधिक उद्दीप्त कर देती है। कामन्दकी यह भी स्पष्ट कर देती है कि धैर्यरहित माधव दुष्कर कर्म करने में भी प्रवृत्त हो रहा है। वियोग रूपी दुःख से छुटकारा पाने के लिए वह जीवन के प्रति भी निरपेक्ष हो रहा है। मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए वह मुकुलित आम्रवृक्षों की ओर देखता है। उस पर कूजन करती हुयी कोयल के स्वर को सुनता है। वकुल गन्ध से युक्त पवन के मार्ग में अपने शरीर को डाल देता है। आर्द्र कमलिनी पत्रमात्र को उत्तरीय के रूप में धारण कर मलिन शरीर वाला होकर दावानल की प्रीति से मृत्यु के लिए चन्द्र किरणों का पुनः पुनः आश्रय लेता है।[193] संयोग दशा में सुखदायी सभी पदार्थ वियोगावस्था में दुःखदायी हो जाते हैं। वियोग की स्थिति में ये दुःखद पदार्थ मृत्यु के भी कारण हो सकते हैं। यह प्रतिपादित कर कवि ने विप्रलम्भ शृंगार को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। यहाँ अवधेय यह है कि माधव मरणोद्योग में उन्हीं साधनों का प्रयोग कर रहा है जिनका शास्त्रकारों ने निर्देश किया है।[194] लवङ्गिका भी अपनी प्रियसखी मालती की वियोगदशा एवं तज्जन्य व्यथा का विशद चित्रण करती है।[195] यहाँ लवङ्गिका ने मालती की चक्षुःप्रीति, चित्तासंग, अंगग्लानि, पाण्डुता, अरति, कृशता, चिन्ता आदि कामदशाओं तथा स्तम्भ, स्वेद, कम्पादि सात्त्विक भावों का अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन किया है। लवङ्गिका के इस लम्बे वर्णन में विप्रलम्भ पक्ष का ही प्राधान्य रहता है। मालती स्वप्न में प्रियतम का आलिगन करती है। इस कथन में स्वप्न दशा में सम्भोग शृंगार का ईषत् प्रतिपादन है परन्तु वह भी विप्रलम्भ का अंग ही है। कामन्दकी मालती के माधव के प्रति प्रेम के कारण उसकी गुणज्ञता की सराहना करती है। उसे भय है कि स्वभाव से ललित और सुकुमार के सार से युक्त मालती के शरीर को भीषण पञ्चबाण कहीं आविद्ध न कर दे। लवङ्गिका इस विषय को कामन्दकी से और अधिक स्पष्ट कर देती है कि माधव की प्रतिमूर्ति से युक्त यह चित्रफलक है। वह मालती के स्तनों के वस्त्र को हटाकर माधव के ही अपने हाथों से बनाई गई मालती की सञ्जीवन बकुलमाला भी दिखलाती है। इधर माधव भी उस बकुलमाला को देखता है और उसकी प्रशंसा करता हुआ कहता है कि हे सखि बकुलावलि इस लोक में तुमने जीत लिया जो कि परिपक्व मृणालदण्ड के पर्व

देश के सदृश शुभ्र मालती के स्तनों की विशालता के विलास की पताका स्वरूप तुम इनकी प्रिया हो गई हो।[196]

इस प्रकार कवि ने यहाँ कामन्दकी के द्वारा मालती के समक्ष माधव की तीव्र वियोग वेदना और माधव के समक्ष मालती की कामदशाओं, सात्त्विक भावों का चित्रण करते हुए उसके कुचकुड्मल पर अवस्थित बकुलमाला को प्रस्तुत कर नायक-नायिका के रतिभाव को पूर्ण रूप से पुष्ट कर दिया है।

दुष्ट शार्दूल की चेष्टाओं से सभी घबड़ा सा जाते हैं। माधव को देखकर मालती हर्ष और भय के साथ अपने मन में सोचती है अहो ! ये भी यहीं पर हैं। इधर माधव भी अतर्कित रूप से उन्हें देखने से हर्षित मालती से अपने को कृतार्थ मानता हुआ कहता है कि इन्होंने जैसे मुझे श्वेत कमलों की माला से बाँध लिया है, मानो अतिशय दुग्ध प्रवाह में स्नान कराया है। विस्तारित नेत्रों से मानों मुझे पूर्ण रूप से कवलित कर लिया है और सान्द्र अमृतवर्षी मेघ से हठात् सिञ्चित कर दिया है।[197] यहाँ सम्भोग श्रृंगार की अभिव्यक्ति हो रही है। इस सम्भोग के आश्रय माधव हैं। मालती आलम्बन है। मालती के द्वारा माधव का सस्पृह अवलोकन उद्दीपन विभाव है। माधव का नेत्र निमीलन रोमाञ्चित आदि अनुभाव हैं। हर्ष, मोह, सम्भ्रम आदि व्यभिचारिभाव हैं। यहीं नायक एवं नायिका का मिलन भी होता है। मकरन्द को क्षतविक्षत अवस्था में देखकर माधव अपनी चेतना को खो बैठता है। उसकी इस दशा को देखकर मालती उसके ललाट को स्पर्श कर उसे आश्वस्त करती है। इसी समय कामन्दकी नन्दन के साथ मालती के विवाह के अप्रिय प्रसंग के उपस्थित होने के पहले ही माधव के द्वारा उसका हृदय और जीवन मालती को अर्पित करा देती है। वह माधव को स्पष्ट कर देती है कि वत्स माधव ! सौभाग्य से ललाट प्रदेश में मालती के पाणिपल्लव के स्पर्श से तुम चेतनता को प्राप्त हुए हो। यह प्रीतिदान का अवसर है।[198] माधव भी कामन्दकी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे भगवति ! इन मालती ने जो बाघ से विक्षत शरीर वाले मित्र मकरन्द की मूर्च्छा से मूर्च्छित मुझे करुणा से पीड़ारहित बनाया है। इसलिए ये अपनी इच्छा से पूर्ण पात्र के प्रकार से मेरे हृदय और जीवन को स्वीकार करने के लिए समर्थ हैं। लवङ्गिका मालती की ओर से माधव के इस अनुग्रह की स्वीकृति प्रदान करती है। इसी मध्य मालती और माधव को यह सन्देश सुनने को मिलता है कि मालती का विवाह नन्दन के साथ निश्चित किया गया है जिसे सुनते ही दोनों ही विवर्ण हो जाते हैं। नैराश्य से अभिभूत माधव विधाता और

कामदेव को उपालम्भ देता हुआ अपने मरण की कामना करने लगता है।[199] उसे प्रातःकाल के चन्द्र के सदृश विगलित कान्ति वाला मालती का मुख अन्तःकरण में जलाने लगता है।[200] मालती और माधव सकरुण अनुराग के साथ एक दूसरे को देखते हैं। असह्य कष्ट का अनुभव करते हुए माधव कहता है मालती के साथ माधव का इतना ही लोक व्यवहार है। हाय ! दुर्भाग्य पहले सुहृद् की तरह सुखदायी केवल प्रेमयुक्त अनुकूलता को प्रकाशित कर पीछे से असमय में परिवर्तन से कठोर होता हुआ मन की पीड़ा को अत्यधिक बढ़ा रहा है। यहाँ माधव का सन्तापाधिक्य अभिव्यञ्जित हो रहा है। इधर मालती भी केवल माधव को सुनाकर कहती है—हे नयनानन्दकर माधव ! आप इतने ही समय तक देखे गये हैं।[201] मालती को भी अपने जीवन से नैराश्य होने लगता है। वह कहती है कि सम्प्रति जीवन की तृष्णा का फल समाप्त हो गया है। निष्करुण होने से पिता का कापालकत्व निष्पन्न हुआ। दुर्भाग्य के भीषण कर्म का परिपाक सम्पन्न हुआ। मन्द भाग्य वाली मैं किसे उपालम्भ दूँ। रक्षकरहित मैं रक्षक के रूप में किसका आश्रय लूँ ?[202] यहाँ मालती का सन्तापाधिक्य अभिव्यञ्जित हो रहा है।

माधव का उद्वेग बढ़ता ही चला जा रहा है। विषण्ण मानस माधव अपने कर्तव्य को निश्चित नहीं कर पाता। अतः इस नैराश्य की स्थिति में उसे महामांस के विक्रय के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखाई देता। महामांस के विक्रयार्थ वह श्मशान भूमि का आश्रय लेता है। भयंकर श्मशान के वातावरण में भी माधव मालती का ही चिन्तन करता है। मालती के प्रति अपने अभिलाष को प्रकट करता हुआ वह कहता है कि अनुराग से सरस प्रकृष्ट प्रेम का आश्रय करने वाले परिचय से प्रौढ़ अनुराग के आविर्भाव वाले स्वभाव से मनोहर सुन्दरी मालती की पूर्वानुभूत कटाक्षादि चेष्टायें मेरे ऊपर थीं। आशा से विरचित होने पर भी जिनमें तत्काल से ही बाह्य इन्द्रियों के व्यापार को रोकने वाला और आनन्द से सान्द्र चित्त का लय रहता है।[203] प्रेयसी मालती मेरे कर्णमूल में मुखमण्डल को स्थापित करें और वासन्ती पुष्पों से संगुम्फित बकुलमाला के निरन्तर अधिवास से सौरभ के सौभाग्य से युक्त मनोहर पयोधरों को मेरे वक्षःस्थल पर स्थापित करें। इस प्रकार मैं उनके अङ्गों से अपने अङ्गों का विनिमय प्राप्त कर लूँ।[204] अथवा यह आशा दूर ही रहे। सम्प्रति मैं यही कामना करता हूँ कि जिस प्रियमुख के दृष्टि-मार्ग में जाने पर समस्त आनन्द एकत्रित होने के समान अतिशय बाहुल्य का विस्तार करते हैं। जिसके दर्शन से उत्पन्न नेत्रोत्सव प्रिया में अभिलाष रूप चित्तवृत्ति को उत्पन्न करता है। जो बालचन्द्र के कलासमूह से संगृहीत स्थिर

अंशों से उत्पादित के सदृश है। कामदेव का मंगल गृहस्वरूप प्रिया का वह मुख फिर भी देख लूँ।[205] वह भावना दृष्ट प्रियादर्शन से वास्तविक प्रियादर्शन का थोड़ा सा भेद मानता है। इस प्रकार कहता है कि सातिशय प्राचीन मालती के साक्षात्कार के अनुभव से समुत्पादित स्वरूप वाले मेरे भावनारूप संस्कार के निरन्तर उद्‌बोध से धारावाहिक रूप में विस्तार को प्राप्त होता हुआ तथा मालतीस्मृति के विजातीय अन्य ज्ञानों से अव्यवहित प्रवाह वाला प्रियतमा के स्मरण रूप ज्ञानों के उत्पत्ति का समुदाय अन्तःकरण वृत्ति के सारूप्य के कारण मेरे चिद्‌रूप आत्मा को मालतीमय के सदृश बना रहा है।[206] वह प्रियतमा मालती को अपने हृदय से सर्वथा अनुस्यूत मानता हुआ कहता है—

"लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च
प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटितेवान्तर्निखातेव च।
सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पंचभि-
श्चिन्तासंततितन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया॥"[207]

(वह प्रिया मालती हमारे चित्त में लीन की तरह, प्रतिबिम्बित की तरह, शिला आदि में उत्कीर्ण रूप वाले की तरह, वियोग से द्रवीभूत मेरे मन में कामदेव रूप स्वर्णकार से घटित की तरह, वज्रलेप से सम्पादित की तरह, अन्तःकरण में खोदी हुई की तरह, कामदेव के पाँच बाणों से बिद्ध की तरह और ध्यान परम्परा रूप तन्तुसमूह से निबिडतापूर्वक सीई गई की तरह सम्बद्ध है।)

यहाँ कवि ने माधव के चित्तासंग की दृढ़ता का पूर्ण दृढता से प्रतिपादन किया है।

कपालकुण्डला और अघोरघण्ट के द्वारा पकड़ी गई मालती माधव के द्वारा कराला देवी के मन्दिर में देखी जाती है। पूजन के अनन्तर जब कापालिक अघोरघण्ट मालती पर खड्‌ग प्रहार करने के लिए उद्युक्त होता है उसी समय माधव इस भीषण कार्य को रोकने के लिए बीच में कूद पड़ता है। मालती सहसा माधव को देखकर कहने लगती है कि महाभाग! मेरी रक्षा करें। यह कहकर वह माधव का आलिंगन करती है। इस प्रकार माधव मालती की रक्षा कर लेता है। यहाँ माधव यह भी स्पष्ट कर देता है कि हे मालति! तुम्हारे करकमल के ग्रहण से मैं धन्य जन्म वाला हो जाऊँ, इसी आग्रह से पीड़ित किया जाकर मैं नरमांस बेचने के लिए इस श्मशान में घूम रहा था।[208] काकतालीय न्याय से प्रियतमा मालती के दर्शन से माधव का चित्त

आतंक से विह्वल, करुणा से विलीन, आश्चर्य से विक्षोभित, क्रोध से उद्दीपित, और हर्ष से विकसित अतएव अनिर्वचनीय सा होने लगता है। अघोरघण्ट को धिक्कारता हुआ माधव कहता है कि तुम संसार को साररहित करना चाहते हो। त्रिभुवन के रत्न को छीनने के लिए उद्यत हो रहे हो। लोक को आलोक से रहित और इस मालती के बान्धव जनों को मरण का आश्रय करा रहे हो। कन्दर्प को दर्पहीन, मनुष्यों की नेत्रसृष्टि को निष्फल और जगत् को जीर्ण अरण्य बनाने के लिए किस प्रकार से उद्योग कर रहे हो।[209] प्रणय-युक्त सखियों के परिहास में राग से प्राप्त कोमल शिरीषप्रसूनों के प्रहारों से भी जो मालती का शरीर म्लान हो जाता है, उस शरीर में वध के लिए शस्त्र उठाने वाले तुम्हारे शिर पर आकस्मिक रूप से पतनशील यमदण्ड के तुल्य यह मेरा बाहु चले।

यहाँ माधव के इस कथन से उसका मालती के प्रति रतिभाव पुष्ट हो रहा है।

माधव के द्वारा बचायी गयी मालती भूरिवसु के द्वारा प्रेषित सैनिकों को मिल जाती है। इसके पश्चात् मालती के विवाह की तैयारी होने लगती है। सभी लोगों में हर्षोल्लास है परन्तु मालती की दुरवस्था सभी को ज्ञात नहीं है। मालती और माधव दोनों ही अपने आशा कमल पर तुषारपात के लक्षण देखने लगते हैं। जब लवङ्गिका मन्दिर में मालती को वस्त्र पहनाना चाहती है, वह उसे स्वीकार नहीं करती। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है कि तुम मेरा अनुर्वतन करना चाहती हो तो अद्वितीय मंगलमय आनन्द से स्निग्ध माधव जी के श्रीमुखारविन्द का दर्शन कराओ।[210] यह कहकर रोने लगती है। इधर माधव भी मालती के इन वचनों को सुनकर अपने मित्र मकरन्द से कहता है कि मैंने भी भाग्य से ग्लानियुक्त जीवनीरूपपुष्प के विकासजनक सन्तृप्तिप्रद समस्त इन्द्रियों को मोहित करने वाले आनन्द-जनक और हृदय के एकमात्र रसायन मालती के वचन रूप अमृतों को प्राप्त कर लिया।[211] यहाँ मालती के वचनामृत माधव के जीवन को प्रफुल्लित कर देने वाले, सन्तृप्तिदायक, इन्द्रियों को विमुग्ध कर देने वाले, आनन्दप्रद एवं हृदय के लिए साक्षात् रसायन हैं। माधव के इस कथन से यहाँ शृंगाररस पुष्ट हो रहा है।

माधव को न प्राप्त करने से प्राणोत्सर्ग के लिए समुद्यत मालती अपनी प्रियसखी लवङ्गिका से अत्यन्त नैराश्य और कातरता से आपूर्ण स्वर में कहती है कि मेरे मरणवृत्तान्त को सुनकर सन्ताप करते हुए मेरे जीवन-दाता माधव का शरीररत्न जिस प्रकार नष्ट न हो और जिस प्रकार दूसरे

लोक में जाने पर भी स्मरण और कथामात्र से अवशिष्ट मुझे लक्ष्यकर कालान्तर में भी वे लोकयात्रा को शिथिल न करें, वैसा ही करना। इसप्रकार से तुम्हारी प्रियसखी मालती परिपूर्ण अभिलाष वाली हो जायेगी।[212] यहाँ मालती के इस कथन से करुण विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति हो रही है। इसे सुनकर मकरन्द कहता है कि दुःख है कि अति करुणापूर्ण विषय प्रस्तुत हो गया है। मालती के अतिशय करुणापूर्ण मनोहर प्रेम और मोह से परिपूर्ण विलाप को सुनकर माधव चिन्ता और खेद से विपत्ति तथा महोत्सव को प्राप्त करने लगता है।[213] मालती का यह वाक्य कि तुम लोगों को मालती का जीवन प्रिय है परन्तु मालती नहीं, उसके हृदय की करुण वेदना और माधव के प्रति प्रगाढ़ अनुराग को अभिव्यञ्जित कर रहा है।

इस प्रकार विप्रलम्भ को कवि पराकाष्ठा पर ही पहुँचा देता है। इसी विप्रलम्भ की भावभूमि पर कवि सम्भोग शृंगार की योजना करता है।[214] प्रियसखी लवङ्गिका से अपनी मृत्यु को निवेदित कर जब मालती उसके चरणों में झुकती है तो लवङ्गिका संकेत से माधव को बुलाती है और मकरन्द उसे लवङ्गिका के स्थान पर खड़े होने को कहता है। माधव लवङ्गिका की भाषा में मालती से कहता है सरले ! इस दुस्साहस को छोड़ दो। अयि सुन्दरि ! मरण के उद्योग को त्याग दो। मैं तुम्हारे नीरस वियोग के दुःख को सहन करने में असमर्थ हूँ।[215] परन्तु मालती को तो मरण अभीष्ट है अतः वह माधव को अपनी प्रियसखी लवङ्गिका समझकर कहती है कि सखि ! तुम्हें मालतीकृत प्रार्थना का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये अतः माधव पुनः लवङ्गिका की भाषा में कहता है मैं क्या कहूँ ? हे सुन्दरि ! अपना अभीष्ट करो। उठो, मुझे आलिगन करो।[216] मालती सहर्ष उठकर उसका आलिंगन करती है। सम्प्रति उसे आलिंगनजन्य आनन्द कुछ दूसरे ही प्रकार का होता है परन्तु नेत्रों में अश्रुधारा प्रवाहित होने से वह अपनी सखी को नहीं देख पाती है। वह अनेक प्रकार से माधव को अपनी सखी लवङ्गिका समझकर अन्तिम समय में कही जाने वाली बातें माधव के लिए कहती है और प्रियतम माधव के द्वारा निर्मित बकुलमाला को अपने गले से निकाल कर माधव को लवङ्गिका समझकर उनके गले में डालने लगती है, परन्तु माधव को देखते ही वह सहसा दूर हट जाती है और साध्वस से कम्पित हो उठती है। माधव भी हर्ष का अनुभव करते हुए अपने मन में कहता है कि प्रगाढ़ आलिंगन से अवमर्दित पुष्ट कुचकुड्मलों से युक्त मालती में दृढ़ता-पूर्वक आलिगन कर मेरी त्वचा में कपूर, मोतियों की माला, हरिचन्दन और चन्द्रकान्तमणि का द्रव तथा शैवाल, मृणाल और हिम आदि शीतल पदार्थों

को निःसृत कर अभिषिञ्चन किया है।[217] जब मालती लवङ्गिका को उपालम्भ देती है तो माधव कहता है अयि अपने ही चित्त की वेदना को जानने वाली दूसरे के दुःख को न समझने वाली! यह तुम मुझे उलहना दे रही हो। मैंने ही प्रौढ़ शरीरसन्ताप रूपी महाज्वर वाले, जिनमें मनोरथ से कल्पित तुम्हारे समागम से वेदना हटाई गई है और तुम्हारे प्रेम ज्ञान से जीवन का अवलम्बन किया है ऐसे दिनों को क्या नहीं बिताया? मालती की ऊहापोहात्मक स्थिति में कामन्दकी का आगमन परिवर्तन लाता है। कामन्दकी मालती के चिबुक को उठाकर कहती है कि वत्स! जिस माधव की तुममें और जिस माधव में तुम्हारी पहले चक्षुःप्रीति उसके पश्चात् चित्तासंग और तदनन्तर तनुग्लानि आदि दशायें हुयी थीं, वही तुम्हारा प्रिय युवक तुम्हारे समक्ष उपस्थित है। अब तुम जड़ता को छोड़ दो और कामदेव को कृतार्थ होने दो।[218] इसके अनन्तर कामन्दकी माधव से कहती है कि हे वत्स! तुम्हारे सखीजन के प्रेम परिणाम में मनोहर हो रहे हैं। मैं भी तुम्हारी माननीय हूँ इसलिए मेरे परोक्ष में इस सुन्दरी मालती में तुम प्रगाढ़ स्नेह रूप करुणा से विरत मत होना। इसके अनन्तर इसी प्रकार मालती और माधव से पुनः कहती है कि स्त्रियों का पति और पुरुष की धर्मपत्नी प्रियतम मित्र अथवा समग्र बन्धुता, समस्त अभिलाष के विषय और निधि अथवा जीवन ही है। यह परस्पर में वात्सल्यभाजन तुम दोनों को ज्ञात रहे।[219] इस प्रकार दाम्पत्य जीवन को सुखी रखने के मूलमन्त्र का उपदेश देकर कामन्दकी माधव और मालती की विवाह विधि सम्पन्न करने के लिये अपने विहार में भेज देती है। माधव के पाणिस्पर्श से मालती का बाहुरूपी मृणाल आमूलकण्टकित हो उठता है। उसकी उँगलियाँ स्वेद से आर्द्र हो जाती हैं। कवि ने यहाँ मालती के सात्त्विक भावों को प्रस्तुत करते हुए सम्भोग श्रृंगार को प्रस्तुत किया है। सम्भोग श्रृंगार की अनुभूति पाठकों को वहाँ भी होती है जब ग्रीष्मकालीन सायंतन स्नान से निवृत्त होकर मालती और माधव दीर्घिका के तट के समीप शिलातल पर बैठते हैं। माधव मालती को सम्बोधित करता हुआ कहता है अयि सुन्दरि मालति! ये कबरी स्थित जलबिन्दु तब तक गिरते हैं जब तक स्तनकुड्मलों का मध्यभाग आर्द्रता का परित्याग नहीं करता। जब तक तुम्हारी शरीरयष्टि गाढ़ और सूक्ष्म रोमाञ्चों से युक्त है तब तक गाढ आलिंगन को एक बार भी दे दो, प्रसन्न हो जाओ।[220] अयि निर्दयि मालती! भय से सद्यः समुत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से युक्त चन्द्रकिरणों के स्पर्श से पिघलने वाली चन्द्रकान्त मणिमाला की तरह विकासशील और मुझे जीवित करते हुए के सदृश अपने बाहु को मेरे गले में

डाल दो।[221] अथवा इसे भी रहने दो। क्या यह जन तुम्हारे आभाषण का भी पात्र नहीं है ? मलय पवन और चन्द्रकिरणों से बहुत समय से दग्ध हुए मेरे शरीर को तुमने भले ही शीतल नहीं बनाया परन्तु हे किन्नरकण्ठि मालति ! मदमत्त कोकिलों के शब्दों से पीड़ित मेरा कान आज तुम्हारी हृदय प्रिय वाणी का पान करे।

यहाँ कवि ने मनोरम सम्भोग शृंगार की व्यञ्जना प्रस्तुत की है। माधव मालती के आलिंगन की कामना करता है। कवि सद्यःस्नाता नायिका मालती की कान्ति और शोभा का चित्रण कर रहा है। मालती के रतिभाव का आलम्बन माधव स्वयं एक बार आलिंगन की याचना कर रहा है। चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना एवं शीतल पवन यहाँ उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत हैं।[222] मालती माधव की अभ्यर्थना पर जब ध्यान नहीं देती है तो वह अपने गले में हाथ डालने के लिए कहता है। यदि यह भी भम्भव नहीं है तो वह कम से कम मधुर वाणी ही सुनने का अवसर प्रदान करे। यहाँ प्रस्तुत मलयानिल, चन्द्रपाद और आमत्त कोकिलरुत वे उद्दीपन विभाव हैं जो कि वियोगावस्था में माधव को व्यथित करते रहे हैं परन्तु सम्प्रति संयोगावस्था में उसे अनुकूल लग रहे हैं। यहाँ कवि ने वात्स्यायन के कामसूत्र के आधार पर सम्भोग शृंगार को विकसित किया है जिसके आधार पर अवलोकिता मालती को नायक के अनुकूल बनाने के लिए असत्य सम्भाषण करती है।[223] अवलोकिता कहती है कि अभी कुछ समय पहले जब तुम माधव की अनुपस्थिति में मेरे सामने कह रही थी "आर्यपुत्र बिलम्ब कर रहे हैं। कितने समय पश्चात् मैं उन्हें देख सकूँगी और द्विगुणित आवेष्टन वाले आलिंगन से उनका आदर करूँगी। उसका अब यह परिणाम है ! यह सुनकर मालती उसे असूया के साथ देखती है। माधव मालती से कहता है–अवलोकिता सत्य ही बोल रही है। मालती शिर हिलाती है जिस पर माधव कहता है कि यदि तुम मुझे नहीं बताओगी तो तुम्हें मेरे लवङ्गिका और अवलोकिता के जीवन की शपथ है। इस पर मालती कहती है मैं कुछ भी नहीं जानती। ऐसा आधा कहने पर लज्जा का भी अभिनय करती है। यहाँ मालती का यह व्यवहार भी कामसूत्र के ही निर्देशानुसार है। माधव मालती को लक्ष्य कर कहता है कि अहो असमाप्त अर्थ वाले सुन्दर वचन की क्या ही मनोज्ञता है ? मृगलोचना मालती का निर्मल कपोल अश्रुजल के द्वारा सद्यः प्रक्षालित हो रहा है जिस कपोल में गण्डूष द्वारा कान्तिरूप अमृत को पान करने की इच्छा से मानों चन्द्रमा अपने किरणरूपी मृणालदण्ड को स्थापित कर सुशोभित हो रहा है। जब मालती यह कहती है सौभाग्य से मदयन्तिका के लाभ से आपकी समृद्धि

हो रही है, तो माधव सहर्ष मालती का आलिंगन कर कहता है--यह संवाद हमें अभीष्ट है। यह कहकर बकुलमाला को मालती के कण्ठ में डाल देता है। यहाँ सम्भोग श्रृंगार की व्यञ्जना हो रही है। नायिका मालती एवं नायक माधव आलम्बन हैं। चन्द्र, शीतल पवन, कोकिलरूप उद्दीपन विभाव हैं। आवेग, हर्ष, मोह, औत्सुक्य आदि सञ्चारीभाव हैं। इन सबसे पुष्ट होता हुआ सम्भोग श्रृंगार रस अभिव्यञ्जित हो रहा है।

इस सम्भोग श्रृंगार के पश्चात् उस समय पुनः विप्रलम्भ की स्थिति आ जाती है जब कपालकुण्डला अकेले में मालती को श्रीपर्वत पर अपहृत करके ले जाती है। राजा माधव और मकरन्द के शौर्य से प्रभावित होकर अपनी गुण-ग्राहकता की प्रशंसा करते हैं। जब माधव को यह ज्ञात होता है कि मालती लापता है तो उन्हें कपालकुण्डला की प्रतिज्ञा का स्मरण हो आता है और वह मालती के जीवन से निराश होने लगता है। लवङ्गिका और मदयन्तिका से वह कहता है अनिर्वचनीय रूप से हजारों प्रकारों से मेरा हृदय ध्वस्त हो रहा है क्योंकि कुवलयाक्षी मालती के अनिष्टमात्र की आशंका करने वाला मेरा अन्तःकरण अनवरत प्रकम्पित हो रहा है। बायीं आँख भी फड़क रही है। मालती कहाँ है ? आप दोनों का यह वचन भी दुःखजनक है। हाय ! सभी प्रकार से मैं हतप्राय हो गया हूँ।[224] मालती को सम्बोधित करता हुआ माधव कहता है अयि चण्डि मालति ! कहने के योग्य जो अमंगल है मैं उसी की सम्भावना कर रहा हूँ। परिहास दूर करो। मैं अत्यधिक उत्कण्ठित हूँ। अयि प्रिये ! क्या तुम मुझे जानना चाहती हो ? मैं तुमसे जाना गया हूँ, उत्तर दो। मेरा व्याकुल हृदय बीच में घूम रहा है। तुम अत्यधिक निर्दय हो।[225] मकरन्द माधव को आश्वस्त करता है परन्तु माधव का हृदय मालती के वियोग से सन्दग्ध हो रहा है। दुःखदग्ध माधव करता है अयि माधव से प्रेम करने वाली मालति ! तुम मेरे ऊपर प्रणयशून्य क्यों हो गई हो ? अरी मैं वही हूँ। पहले सुन्दर कङ्कण को धारण करने वाला मूर्तिमान् महोत्सव के सदृश तुम्हारे हाथ ने जिस माधव को स्वयं आनन्दित किया है। वह अपने मित्र मकरन्द से कहता है--जगत् में उस प्रकार के प्रेम की उत्पत्ति दुर्लभ है। उस मालती ने सरस प्रसूनों के सदृश कृश अंगों से निरन्तर उन्मथनशील अतएव प्रतिक्षण उन्मूलन के लिए उद्यत कामरूप महाज्वर को चिरकाल तक सहन किया। तदनन्तर तृण के सदृश प्राणों को छोड़ने के लिए मन को व्यवस्थापित किया। उसने पाणिग्रहण के साहस का जो निर्वाह किया इससे भिन्न उसके प्रेम के उत्कर्ष के लिए और क्या कहूँ ?[226] माधव मकरन्द से इस प्रकार कहता हुआ आवेग के साथ मार्मिक दुःखानुभूति करता है। उसका

हृदय दृढ़ व्याकुलता से विदीर्ण हो उठता है लेकिन दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता। शोक से विह्वल शरीर मोह को धारण करता है लेकिन चैतन्य को नहीं छोड़ता है। अन्तःकरण का सन्ताप शरीर को जलाता है लेकिन भस्म नहीं करता। हृदय आदि मर्मस्थल का छेदन करने वाला भाग्य प्रहार करता है परन्तु जीवन को नष्ट नहीं करता है।[227] यहाँ मालती वियोगजन्य उद्वेग आदि माधव के शरीर को नष्ट न करते हुए उसे दुःखसागर में निमज्जित कर रहे हैं। कामसन्तप्त माधव को मकरन्द प्रचुर कमलों से युक्त शीतल सरोवर के समीप बैठने के लिए कहता है। मकरन्द उसके हृदय को विषयान्तर में लगाना चाहता है, अतः वह उससे कहता है कि आँसुओं के गिरने और निकलने के मध्य समय में इस तालाब के श्वेतकमलों से शोभायुक्त प्रदेशों को देखो।[228] परन्तु माधव को यह सब अच्छा नहीं लगता और वह उद्वेग के साथ उठ खड़ा होता है। मकरन्द के कथन का माधव पर कोई प्रभाव नहीं होता और वह उसके वाक्यार्थ ज्ञान से शून्य सा दूसरी ओर जाने के लिए उद्यत होता है। मालती की वियोगवेदना से व्यथित मानस माधव निसंज्ञ हो जाते हैं। मकरन्द को माधव के जीने की आशा समाप्तप्राय लगती है। माधव की दशा को देखकर मकरन्द का हृदय विदीर्ण होने लगता है। शरीर के अवयवों की सन्धि शिथिल हो जाती है। जगत् शून्य सा दिखलाई देने लगता है। शरीर के भीतर अविच्छिन्न ताप जलाने लगता है। अवसन्न होता हुआ प्रियरहित आत्मा प्रगाढ़ अन्धकार में डूबने लगता है। मूर्च्छा चारों ओर से आच्छन्न कर लेती है।[229] खिन्नचित्त मकरन्द माधव का स्पर्श करता है। जिससे माधव चेतनता को प्राप्त कर लेता है। माधव का उन्माद उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। वह हाथ जोड़कर मेघ से कहता है–भगवन् मेघ ! जगत् में विचरण करते हुए जब तुम भाग्यवश मेरी प्रेयसी मालती को देखना तो पहले उसको आश्वासन देकर तत्पश्चात् माधव की अवस्था को कहना। कहने वाले तुम्हें उसके आशासूत्र का उच्छेद नहीं करना चाहिए क्योंकि विशाललोचना मालती का केवल वह आशासूत्र ही प्राणों की रक्षा कर रहा है।[230] इसके पश्चात् सहर्ष कहने लगता है अरे, मेघ चला गया ? तो इसकी दूसरे स्थान में सम्भावना करता हूँ। यह कहकर चल देता है। उन्मत्त माधव कहता है मुझे धिक्कार है। बहुत बड़ा प्रमाद हुआ। मेरी प्रेयसी मालती की कान्ति नवीन लोध्रपुष्पों में पहुँच गई है। हरिणों में दृष्टि, हाथियों में गति और लताओं में नम्रता इस प्रकार वन में मथन कर मेरी प्रिया मालती को स्पष्टरूप से विभक्त कर डाला है।[231] पर्वत और वन में रहने वाले प्राणियों को प्रणाम कर माधव कहता है कि आप लोग

कुछ समय तक एकाग्रचित्त होकर मेरी बात सुनें–आप लोगों ने शरीर के समस्त अवयवों में निसर्गसुन्दरी कुलवधू मालती को देखा है क्या ? अथवा उसका क्या हुआ ? जाना है। हे मित्रों ! आप लोग उसके वय की स्थिति सुनें। जिस अवस्था में कामदेव प्रौढ़क्रिया वाले होकर शरीर में पूर्णरूप से विचरण करें वही उसकी अवस्था है।[232] परन्तु जब कोई उसकी बात को ध्यान से नहीं सुनता तो वह कष्ट का अनुभव करता हुआ कहता है–ताण्डव नृत्य के कारण पिच्छभार को समुन्नत करने वाला मयूर अपनी वाणियों से मेरे वचन को तिरोहित कर रहा है। मदन मद से जिसके नेत्रों की पुतलियाँ घूम रही हैं ऐसा चकोर पक्षी अन्तःकरण में उत्पन्न हर्ष से अपनी प्रिया चकोरी का अभिसरण कर रहा है। काला मुँह वाला बन्दर हलके पराग से प्रिया वानरी के कपोल को चर्चित कर रहा है। इस स्थिति में किससे प्रार्थना करूँ ? मेरी याचकता तो यत्र तत्र अप्रसंगग्रस्त है।[233] ओष्ठों के लौहित्य से रञ्जित दन्तपंक्तियों से युक्त रोचनी वृक्ष के फलों के समान श्वेत-रक्त कपोल प्रान्तों से सम्बद्ध एवं परिपक्व होने से लाल वर्ण वाले और स्फुटित दाडिम फल के सदृश कान्ति वाली प्रिया वानरी के मुख को ऊँचा कर चूम रहा है।[234] वन्य गज दाँत के अग्रभाग से खुजलाने से निमीलित नेत्रों वाली सहचरी को खुजलाता हुआ आह्लाद प्रदान करने वाले क्रमशः संचालित कर्णों के पवनों से प्रिया को अभिबीजित करता हुआ अर्धभुक्त नवीन सल्लकी लताओं के पल्लवों से हथिनी की सेवा करता हुआ परिचय की प्रौढ़ता का अभ्यास कर रहा है।[235] दूसरी ओर प्रियतमा से वियुक्त करिपीड़ित होकर ग्लानि का अनुभव कर रहा है। अपनी प्रिया हथिनी से युक्त मनोहर दूसरे गजराज को देखकर उससे कहता है कि तुम प्रशंसनीय यौवन से युक्त हो। कान्तानुवृत्तिचातुर्य भी आपमें है। अरे ! ये भी नहीं सुन रहा है। हाय मैं मूर्ख ही हूँ जो इस वनचर के ऊपर भी मित्र मकरन्द की तरह बोल रहा हूँ। हा ! प्रिय मित्र मकरन्द मेरे इस असाधारण दुःख को धिक्कार है। निष्फल उदय वाले अनुभव के कारण मनोहर पदार्थ को धिक्कार है। मित्र मकरन्द ! तुम्हारे और मालती के साथ जो दिन नहीं बिताया है, वह दिन नष्ट हो। तुम दोनों से भिन्न कुत्सित मनुष्य में होने वाली मेरी हर्ष रूप मृगतृष्णा को भी धिक्कार है।[236]

यहाँ मालती की वियोगव्यथा से सन्तप्त माधव को प्राकृतिक दृश्य मयूर, चकोर, वानर, हस्ती आदि की कामक्रीड़ायें और अधिक उद्दीप्त कर उसे उन्मत्त बना रही हैं। माधव के सन्ताप से दुःखित मकरन्द पाटलावती नदी में गिरने की इच्छा करता है और जन्मान्तर में भी प्रिय मित्र माधव के

साहचर्य की कामना करता है। उसी समय सौदामिनी सहसा उसे पकड़कर उन्हें यह बतलाती है कि मालती अभी जीवित है। वह अभिज्ञानरूप बकुलमाला के साथ अन्वेषण करती हुई वहाँ आयी थी। इधर शीतल समीकरण के सञ्चरण से माधव चैतन्य होते हैं। वे हाथ जोड़कर वायुदेव से प्रार्थना करते हैं कि हे वायुदेव ! आप जलपूर्ण मेघों को भ्रमण करायें। चातकों को सन्तुष्ट करें। केकाशब्द करने में उत्कण्ठित मयूरों को नचायें और केतकी के वृक्षों को प्रौढ़ बनायें परन्तु हे निर्दय ! मूर्च्छा प्राप्त कर दुःख का निवारण करते हुए विरही जन में पुनः चैतन्यरूप रोग को पैदाकर आप किस फल की इच्छा करते हैं ?

असह्य विरहवेदना से पीड़ित माधव को मूर्च्छा ही सुखकर लगती है परन्तु जब वह वायु के द्वारा चेतना को प्राप्त करा दिया जाता है तो उसकी मालतीविषयक वेदना द्विगुणित हो उठती है। अतः वह वायु से ऐसा न करने के लिए निवेदन करता है। माधव को मालती के अतिरिक्त संसार का कोई पदार्थ अभीष्ट नहीं है। उसके लिए तो मालती के बिना समस्त सांसारिक पदार्थ असार हैं, अतः वह पवनदेव से प्रार्थना करता है कि जहाँ मेरी प्रिया मालती है वहीं विकसित कदम्ब पुष्पों के पराग के साथ मेरे जीवन को पहुँचादो अथवा उस मालती के अंगों में निरन्तर बहने से शीतल कोई वस्तु मुझे दे दो क्योंकि तुम मेरे आश्रय हो।[237] यह कहकर हाथ जोड़कर प्रणाम करता है। सौदामिनी इसे उचित अवसर समझकर माधव की अंजलि में बकुलमाला गिरा देती है। माधव हर्ष और विस्मय के साथ आश्चर्य के साथ कहता है कि मेरे द्वारा निर्मित और प्रिया के पयोधरों पर रहने से अतिप्रियस्वरूप वाली काममन्दिर के प्रांगण में उत्पन्न बकुलमाला कैसे आ गई ? [238] माला को पहचानकर अत्यधिक हर्ष और उन्माद के साथ कहने लगता है—अयि चण्डि मालति ! तुम देखी जा रही हो परन्तु वहाँ मालती तो है। नहीं अतः क्रोध जैसा आचरण करता हुआ पुनः कहने लगता है—अरी मेरी अवस्था न जानने वाली सुन्दरी मालति ! तुम्हारे वियोग से मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। हृदय मानों ध्वस्त हो रहा है, अंग मानों जले जा रहे हों, मोह मानों चारों ओर से फैल रहा है, यह शीघ्रता करने का अवसर है परिहास करने का विषय नहीं। इसलिए मेरे नेत्रों को आनन्दित करो और मुझपर निर्दय मत हो।[239]

यहाँ करुण विप्रलम्भ श्रृंगार उत्कट कोटि में पहुँच रहा है। जिसका आश्रय माधव है, आलम्बन मालती है। बकुलमाला उद्दीपन है। माधव का असह्य दुःख अंगों का जलना, चारों ओर से मोह के द्वारा घेर लेना आदि

अनुभाव हैं। हर्ष, मोह आदि व्यभिचारिभाव हैं।

चारों ओर देखकर निर्वेद के साथ कहता है। मालती यहाँ कहाँ है? बकुलमाला को लक्ष्यकर अरी प्रिया से प्रणय करने वाली तू अत्यधिक उपकारिणी है। हे प्रियसखि! जब कुवलयलोचना मालती के अनिवारित, मोह रूप उत्कट विपत्ति से दुर्वह, कामोन्माद वेग हुए थे उस समय मेरे आलिंगन के सदृश तुम्हारा आलिंगन ही उत्कृष्ट गुण वाला प्राणरक्षक हुआ था।[240] शोक के साथ निःश्वास लेकर हे बकुलमाले! आनन्दकारक कामज्वर के उद्दीपक गाढ़ानुराग के रस से युक्त और प्रेम को पैदा करने वाले वे उस समय में मेरे और सुन्दरी मालती के कण्ठ में तुम्हारे पुनः पुनः जाने आने के कष्ट को स्मरण कर रहा हूँ। हृदय में रखकर पुनः मूर्च्छित हो जाता है।

यहाँ भी बकुलमाला ही उद्दीपन का कार्य कर रही है जिससे वह अतीत की स्मृति कर दुर्वह वियोग वेदना से व्यथित होकर मूर्च्छित हो जाता है।

जिस समय माधव यह सुन लेता है कि मालती जीवित है उस समय वह सौदामिनी से अत्यधिक उत्सुक होकर समस्त वृत्तान्त को सुनना चाहता है। जब उसे यह विदित हो जाता है कि सौदामिनी ने मालती की रक्षा की है तो वह उन्हें प्रणाम कर कहता है–आर्या के चरणों ने अतिशय अनुग्रह किया इसलिए आप न जाने हमारी ऐसी कौन बन्धु हैं? इसके पश्चात् सौदामिनी अपनी योगशक्ति से माधव को श्रीपर्वत पर उड़ाकर ले जाती है। इधर मालती के न मिलने से कामन्दकी, लवङ्गिका, मदयन्तिका आदि स्त्रियाँ प्राण छोड़ने का निश्चय कर लेती हैं परन्तु मकरन्द उन्हें सब वृत्तान्त बतलाकर बचा लेता है। अमात्य भूरिवसु भी पुत्री दुःख से अग्नि प्रवेश के लिए उद्यत होते हैं परन्तु सौदामिनी उन्हें भी बचा लेती है।

मूर्च्छित मालती को देखकर माधव कष्ट का अनुभव करता है। प्रत्यापन्न चेतना को देखकर वह प्रसन्न हो उठता है। मालती को स्वस्थचित्त देख कर माधव कहता है सम्प्रति माधव के लिए मनुष्यलोक ग्राह्य हो गया है।[241] सौदामिनी की प्रशंसा करता हुआ माधव कहता है कि चिन्तामणि भी चितारूप परिश्रम की अपेक्षा करती है परन्तु आर्या ने तो अचिन्तित इस कर्म को सम्पन्न किया है।[242]

इसी मध्य कामन्दकी राजा पद्मावतीश्वर के पत्र को लेकर पढ़ती है "तुम लोगों का कल्याण हो। राजा आज्ञा देते हैं कि प्रशंसनीय गुणीजनों के शिरोमणि श्रेष्ठ वंश वाले विपत्ति को दूर करने वाले और अतिशय महान् जामाता पर मैं प्रसन्न हूँ इसलिए आपकी प्रीति के लिए आपके प्रियमित्र

मकरन्द के लिए पूर्व प्रणय से सम्बद्ध इस मदयन्तिका को भी देता हूँ।"[243]

इस प्रकार मालती माधव एक दूसरे को प्राप्त कर अत्यधिक आह्लाद की अनुभूति करते हैं और अपने प्रियमित्र मकरन्द-मदयन्तिका के परिणय से भी प्रसन्न होते हैं।

मालतीमाधव प्रकरण में शृंगाररस की दूसरी धारा हमें मदयन्तिका और मकरन्द के प्रणय प्रसंग में दृष्टिगोचर होती है। इसका संकेत प्रकरण की प्रस्तावना में ही कामन्दकी और अवलोकिता के वार्तालाप से दे दिया जाता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि मालती और माधव मदयन्तिका और मकरन्द के प्रणय प्रसंगों में अन्तर दिखलाई देता है और यह अन्तर प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दृष्टिगोचर होता है। मालती के हृदय में प्रेमांकुर माधव के दर्शन से अद्भुत होता है जबकि मदयन्तिका के हृदय में मकरन्द के प्रति अनुराग उसके गुणों के सुनने से होता है। मालती और माधव का प्रथम मिलन मदनोद्यान में होता है और वहीं पर दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं। मदयन्तिका और मकरन्द का प्रथम मिलन विशेष परिस्थिति में होता है। मकरन्द का शरीर शार्दूल के द्वारा क्षतविक्षत है और वह अचेत पड़ा रहता है। मदयन्तिका उसे सँभालती है। जब बुद्धरक्षिता यह कहती हैं कि यह वही है तो मदयन्तिका मकरन्द को अत्यधिक स्पृहा के साथ देखने लगती है। बुद्धरक्षिता जब यह देखती है कि इन दोनों का परस्पर आलोकन साभिप्राय है तो वह यह समझ लेती है कि ये दोनों ही एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हैं। कामन्दकी उन दोनों के हावभावों को देखकर लवङ्गिका से कहती है कि लवङ्गिके ! ये दोनों परस्पर सङ्कल्पनिर्मित समागम सुख का अनुभव कर रहे हैं क्योंकि कुछ तिर्यक् प्रसारण से वक्रत्रिभागों में संकुचित अपाङ्गदेश से युक्त प्रेम के प्रकाश से निश्चल और आर्द्र उत्क्षिप्त भौहों से उक्त आन्तरिक हर्ष का अनुभव से प्रणयानुरञ्जित अवसन्न और निश्चल नेत्र-लोमों से उद्भासित इन दोनों का यह बलिर नेत्रों वाला परस्पर दर्शन व्यक्त रूप से सङ्कल्प निर्मित समागम को ज्ञापित कर रहा है।[244]

मदयन्तिका बुद्धरक्षिता से कहती है कि सखि बुद्धरक्षिते ! जीवन देने वाले श्वेतकमलों के सदृश नेत्रों से युक्त ये मकरन्द क्या पुनः देखे जायेंगे अर्थात् क्या उनके पुनर्दर्शन से आनन्दानुभूति कर सकूँगी।[245] यहाँ मदयन्तिका का चक्षुराग एवम् अभिलाष ध्वनित हो रहा है। मकरन्द भी माधव के सदृश यह स्वीकार करता है कि वह सुन्दरी मदयन्तिका की चञ्चल मधुर दृष्टि एवं आनन्दप्रद आलिंगन को विस्मृत नहीं कर सकता।

मदयन्तिका और मकरन्द के प्रणय प्रसंग में कवि ने एक विचित्र परि-

स्थिति का निर्माण किया है। कामन्दकी अपनी योजना के अनुसार मकरन्द को मालती की वेशभूषा से अलंकृत कर नन्दन के पास भेज देती है। नन्दन का विवाह मालती रूपधारी मकरन्द के साथ हो जाता है। नन्दन सुहागरात में मकरन्द को नवपरिणीता वधू समझकर मकरन्द के समीप पहुँचता है परन्तु मकरन्द उसको फटकार देता है। जब नन्दन बलात्कार की चेष्टा करता है तो मकरन्द उसे ताड़ित करता है। नन्दन की यह अप्रतिष्ठा सभी लोगों के द्वारा जान ली जाती है। ऐसी स्थिति में मदयन्तिका अपनी भाभी को उपालम्भ देने के लिए लवङ्गिका के साथ वहाँ आती है। लवङ्गिका एवं मदयन्तिका में परस्पर चर्चा होती है। लवङ्गिका बार-बार मकरन्द की प्रशंसा करती है। वार्तालाप के प्रसंग में लवङ्गिका यह समझ लेती है कि मदयन्तिका मकरन्द के लिए आत्मसमर्पण करने को समुद्यत है। क्योंकि मकरन्द के नाम श्रवण मात्र से ही मदयन्तिका पुलकित हो उठती है। लवङ्गिका मदयन्तिका के रोमाञ्च का नर्मोक्ति के द्वारा वर्णन करती है।

मदयन्तिका अपने प्रियतम मकरन्द का जब गुणकथन करती है उस समय उसके शरीर पर स्वेदादि सात्त्विकभाव झलकने लगते हैं। इन भावों के द्वारा बुद्धरक्षिता यह अनुमान करती है कि वह अपने शरीर के द्वारा मकरन्द के समागम के लिए उत्कण्ठित है।[246] जब बुद्धरक्षिता उसके उपर्युक्त औत्सुक्य का अनुमान करती है तब मदयन्तिका सखि ! तुम दूर रहो, दूर रहो यह कहकर अपनी अवहित्था व्यक्त करती है।[247] मदयन्तिका के हृदय में मकरन्द के प्रति अभिलाष बुद्धरक्षिता के द्वारा ही उत्पन्न किया गया था। उसी के द्वारा मकरन्द की प्रशस्ति सुनकर उसे उसके प्रति अनुराग हुआ था। इस प्रकार मदयन्तिका के पूर्वराग का कारण मकरन्द के गुणश्रवण ही हैं। संयोग से शार्दूल के आक्रमण के समय उसे मकरन्द का दर्शन और स्पर्श भी प्राप्त हो जाता है। इन्हीं के द्वारा उसका रतिभाव पुष्ट होता है। प्रियतम मकरन्द के प्रति समर्पित हृदय मदयन्तिका को उसका वियोग असह्य हो जाता है। मकरन्द की विरहवेदना उसे अत्यधिक पीड़ित कर देती है। वह स्वयमेव अपने सन्ताप, दाह, उद्वेग, चिन्ता, उन्माद, विह्वलता, आदि का कथन अपनी सखियों से करती है।[248]

लवङ्गिका मदयन्तिका से कहती है कि सखि ! स्पष्ट बतलाइये, उस अवसर पर प्रणय के विलास से तेज हास्य विकास को प्राप्त बुद्धरक्षिता के नेत्रों से देखा गया तुम्हारा मयूर के सदृश आकार वाला आसन स्वप्न-समागम में रजःपतन से आर्द्र होने के कारण परिचारिका से गोपनीय होता है या नहीं ?[249] बुद्धरक्षिता जब मदयन्तिका से यह पूछती है कि यदि मकरन्द

तुम्हें दिखलाई पड़ जाये तो तुम क्या करोगी ? तो मदयन्तिका कहती है कि उनके प्रत्येक अवयव में संगत होने से स्थिर होने वाले नेत्रों को बहुत समय तक शीतल बनाऊँगी ?[250]

यहाँ कवि ने मकरन्द की उपस्थिति में ही मदयन्तिका के इस प्रणयालाप को प्रस्तुत किया है। मदयन्तिका को यह विदित नहीं है कि जिसके वियोग से व्यथित होकर वह अपनी व्यथाकथा सुना रही है वह मकरद उसके पास ही है अतएव निःसंकोच होकर अपनी सखियों से बातचीत करती है। यहाँ तक कि वह स्पष्ट कर देती है कि उसका यह शरीर मकरन्द के लिए सर्वतोभावेन समर्पित है। यहीं से कवि सम्भोग शृंगार का संयोजन करने लगता है। मदयन्तिका के उपर्युक्त वार्तालाप को सुनकर मकरन्द अपने मुँह को खोलकर उसके हाथ को पकड़ लेता है। मदयन्तिका मकरन्द को देखकर हर्ष और भय के साथ कहती है यह तो कोई अन्य है। मकरन्द मदयन्तिका से कहता है कि हे रम्भोरु ! भय को छोड़ो, तुम्हारा कटिप्रदेश कम्पयुक्त स्तनतट के विकार को सहन नहीं कर रहा है। इस प्रकार तुमने स्वयं ही जिसके प्रति अपना प्रेमरूप अनुग्रह प्रतिपादित किया है और सङ्कल्पजन्य सुखों में जिससे परिचय किया है वह यह तुम्हारा दास विद्यमान है।[251] बुद्धरक्षिता इस प्रणय प्रसंग को और अधिक पुष्ट होने में सहयोग करती है। वह मदयन्तिका से कहती है कि हजारों अभिलाषों से प्रार्थित वे यही प्रियतम मकरन्द हैं। सम्प्रति अमात्य भवन में कुछ लोग सोये हुए हैं और कुछ लोग विवाहोत्सव से प्रमत्त हैं। अन्धकार प्रगाढ़ है अतः कृतज्ञता से ही अपना मंगल करो। मणिखचितनूपुरों को ऊपर उठाकर निःशब्द आओ, हम लोग चलें।[252] उधर बुद्धरक्षिता मकरन्द से कहती है कि प्रियसखी ने अपने शरीर को स्वयं ही आपके लिए समर्पित कर दिया है। इस प्रकार बुद्धरक्षिता का यह कथन सम्भोग शृंगार में उद्दीपन का कार्य करता है। मकरन्द असाधारण हर्ष का अनुभव करता हुआ कहता है कि आज मैंने बल के साथ विजय प्राप्त की है। आज सफल मेरे यौवन का महोत्सव है जो कि प्रसन्नता से सुन्दर मुख वाले कामदेव ने मेरे इस बन्धुकार्यभार को धारण कर लिया है।[253]

इस प्रसंग में कवि ने मनोरम संभोग शृंगार की व्यञ्जना प्रस्तुत की है। यहाँ नायिका मदयन्तिका आलम्बन है। मकरन्द आश्रय है। मदयन्तिका की प्रेमोक्तियाँ उद्दीपन हैं। मकरन्द के द्वारा मदयन्तिका का सौन्दर्य एवं प्रेमवर्णन और अपनी सफलता का प्रतिपादअ अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता, औत्सुक्य आदि व्यभिचारिभावों से परिपुष्ट रतिभाव की निष्पत्ति होती है। यहाँ कवि ने मदयन्तिका के हावभाव आदि अंगज अलंकारों, बिव्वोक, कुट्टमित

आदि स्वभावज अलंकारों, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प आदि सात्त्विक भावों और आवेग, हर्ष, अमर्ष, लज्जा, चपलता आदि व्यभिचारिभावों का सम्यक् संयोजन किया है। कवि ने मदयन्तिका के स्वप्न वर्णन में तो श्रृंगार की सीमा का ही अतिक्रमण कर दिया है परन्तु वह रंगमञ्च पर दृश्य विषय न होने के कारण दोष कोटि में नहीं आता है। इसका यह भी समाधान हो सकता है कि मालतीमाधव प्रकरण के नायिका एवं नायक मालती एवं माधव हैं। कवि ने उनमें उदात्त श्रृंगाररस की संगति सँजोयी है। उसकी तुलना में मदयन्तिका एवं मकरन्द का श्रृंगार यदि कोई हीन कोटि का बन गया है तो वह आलोच्य नहीं है।

मालतीमाधव प्रकरण में उपर्युक्त इन दो प्रणय प्रसंगों के अतिरिक्त एक और श्रृंगाररस का लघु उत्स है जिसके पात्र मन्दारिका और कलहंसक हैं। जैसा कि कामन्दकी के इस कथन से प्रकट होता है कि कलहंसक मन्दारिका को चाहता है।[254] जहाँ कहीं भी ये दोनों पात्र उपस्थित होते हैं वहीं इनकी पारस्परिक चेष्टायें रतिभाव की पुष्टि करती हुयी दिखलायी पड़ती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मालतीमाधव प्रकरण में कवि रससंयोजन व्यापार में पूर्ण सफल रहा है।

अङ्गरस

मालतीमाधव प्रकरण में अङ्गीरस श्रृंगार के साथ ही वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स आदि रसों की अभिव्यक्ति हुई है। अङ्गरस के रूप में प्रस्तुत ये रस अंगीरस को पुष्ट एवं प्रभावी बनाने में सहयोग कर रहे हैं।

(क) वीररस

तृतीय अङ्क में एक भयानक शार्दूल पिंजड़े को तोड़कर निकल पड़ता है और देखते ही देखते अनेक मनुष्यों, घोड़ों और बैलों को मार डालता है। सभी ओर कोलाहल और भगदड़ मच जाती है। संयोग से मदयन्तिका उसके पास ही रहती है। दुष्ट शार्दूल उन्हीं पर झपट पड़ता है। ऐसे समय पर उसके सभी परिजन भाग खड़े होते हैं। उसे बचाने वाला कोई भी पुरुष नहीं दिखाई देता। वीर युवा मकरन्द हाथ में तलवार लेकर सिंह से भिड़ जाता है और अपने साहस एवं शौर्य से मदयन्तिका के प्राणों की रक्षा करता है।[255]

यहाँ आश्रय मकरन्द है। आलम्बन शार्दूल का मदयन्तिका पर झपटना उद्दीपन है। दुष्ट शार्दूल पर आयुध के सहित मकरन्द का प्रत्याक्रमण आवेश, रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं। मति, धृति, उग्रता आदि व्यभिचारिभावों से

पुष्ट मकरन्द का उत्साह स्थायिभाव को प्राप्त होता हुआ वीर रस की निष्पत्ति करता है।

पञ्चम अङ्क में माधव और अघोरघण्ट की क्रमशः मालती और कपालकुण्डला के प्रति प्रस्तुत सहोक्ति वीररस को अभिव्यक्त कर रही है। माधव और अघोरघण्ट क्रमशः मालती और कपालकुण्डला से कहते हैं कि हृदय में धैर्य रक्खो। यह पापी मारा जायेगा। कभी किसी ने मृग के संहार की विधि में हाथियों के मस्तकपिण्डों को मर्दित करने वाले वज्र के सदृश हाथ से युक्त सिंह के प्रमाद का अनुभव किया है क्या ?[257] इसी प्रकार माधव और अघोरघण्ट एक दूसरे को लक्ष्य कर कहते हैं कि अरे रे पापी ! कठोर अस्थि-ग्रन्थियों में सम्बन्ध होने से चणत् इस प्रकार के शब्द से शब्दायमान तीक्ष्ण नसों के काटने से कुछ समय तक वेग की विश्रान्ति से युक्त कीचड़ों के सदृश मांस खण्डों में प्रतिबन्ध रहित होकर विचरण करता हुआ मेरा खड्ग सद्यः तुम्हारे प्रत्येक अङ्ग को खण्ड-खण्ड कर दिशाओं में फेंक दे।[258]

यहाँ माधव और अघोरघण्ट दोनों ही एक दूसरे के लिए आश्रय और आलम्बन हैं। दोनों का ही परस्पर ललकारना उद्दीपन विभाव है। आवेश, रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं। मति, धृति, गर्व, उग्रता आदि व्यभिचारिभावों से पुष्ट दोनों का स्थायिभाव उत्साह वीररस की निष्पत्ति कर रहा है।

इसी प्रकार अष्टम अङ्क में भी माधव और मकरन्द का सैनिक के साथ युद्ध होता है जिसमें ये दोनों ही अत्यन्त साहस एवं शौर्य के साथ राजभटों से युद्ध करते हैं। यहाँ भी इन दोनों का उत्साह वीररस की व्यञ्जना कर रहा है।

(ख) करुण रस

महाकवि भवभूति करुणरस के संयोजन में सिद्धहस्त हैं। जिस समय कपालकुण्डला मालती का अपहरण कर लेती है उस समय माधव का वियोग पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। उनकी मार्मिक अन्तर्व्यथा हार्दिक विलाप और करुण क्रन्दन विप्रलम्भ शृंगार तक ही सीमित नहीं रहता प्रत्युत करुणरस की निष्पत्ति होने लगती है। जब माधव को यह ज्ञात होता है कि मालती का कहीं भी पता नहीं चल रहा है तो उसका हृदय विदीर्ण होने लगता है। अन्तरात्मा काँप उठती है। वाम नेत्र फड़कने लगता है और वह मालती की प्राप्ति से सर्वथा हताश हो जाता है। मालती के सहसा पर्यवसान से माधव का हृदय टूट जाता है। उसका करुण-विलाप हृदय को द्रवित करने लगता है। अपनी इस दुःखदशा का वर्णन माधव स्वयमेव करता हुआ कहता है–

अत्यधिक व्याकुलता से युक्त हृदय विदीर्ण तो हो रहा है परन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं हो रहा है। शोक से विह्वल शरीर मोह को धारण कर रहा है परन्तु चैतन्य का परित्याग नहीं कर रहा है। अन्तःकरण का सन्ताप शरीर को जला रहा है परन्तु भस्म नहीं कर रहा है। इसी प्रकार मर्मस्थल का छेदन करने वाला भाग्य प्रहार तो कर रहा है परन्तु जीवन को नष्ट नहीं कर रहा है।[259] प्राकृतिक दृश्य भी वियोगदशा में माधव के लिए दुःखदायी ही ठहरते हैं। शोकाकुलित हृदय माधव को प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता भी असह्य हो जाती है।[260]

अपने प्रिय मित्र माधव की इस दुर्दशा को देखकर मकरन्द भी शोकाकुलित हो उठता है। लम्बी-लम्बी गर्म श्वास लेता हुआ वह विलाप करने लगता है। उसे अपने मित्र माधव के जीवन की आशा नहीं रहती। कभी वह मालती को कोसता है तो कभी दुर्दैव की निन्दा करता है।[261] शोकाभिभूत मकरन्द कहने लगता है कि हाय ! मैं ठगा गया हूँ। माताजी, माताजी, मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा रहा, शरीर के अवयवों की सन्धि शिथिल हो रही है। मैं जगत् को शून्य सा देख रहा हूँ। शरीर के भीतर अविच्छिन्न रूप से जल रहा हूँ। अवसन्न होता हुआ प्रियरहित अन्तरात्मा प्रगाढ़ अन्धकार में डूब जैसा रहा है। मूर्च्छा चारों ओर से घेर रही है, मन्दभाग्य वाला मैं क्या करूँ ?[262]

यहाँ माधव की आवेग, निर्वेद, पीड़ा, व्याधि, चिन्ताजनित दाह, मोह, दैन्य, ग्लानि आदि ध्वनित हो रही हैं।

वह माधव को सम्बोधित करते हुए कहता है कि जो तुम मेरे शरीर के अवयवों में चन्दनरस, नेत्रों में शरत्कालीन चन्द्र और हृदय में आनन्दरूप थे मेरे जीवन के सदृश अतिशय सुन्दर तुम्हें इस प्रकार अनवसर में ही उन्मीलित कर देने वाले काल से मैं हतप्राय हो गया हूँ।[263]

यहाँ मकरन्द का उन्मादपूर्ण विलाप करुणरस की व्यञ्जना कर रहा है।

इसी प्रकार माधव का उन्माद भी करुणरस की निष्पत्ति करता है। अपनी प्रेयसी मालती की वयः सन्धि की स्मृति माधव की व्यथा में और अधिक तीव्रता ला देती है। वह उन्मत्त होकर उच्चस्वर में मयूर, चकोर, वानर आदि वनचरों से मालती के विषय में पूछता हैं परन्तु जब उसे मालती का किसी भी प्रकार से पता नहीं चलता तो निराश होकर मूर्च्छित हो जाता है। अपने प्रिय मित्र की इस दशा को देखकर मकरन्द करुणापूर्ण स्वर में कहता है—किस प्रकार ये मेरे आलिंगन में उत्कण्ठा उत्पन्न होने के अनन्तर

ही मूर्च्छित हो गये हैं। इसलिए सम्प्रति जीने की आशा में आसक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।[264] उसे सम्प्रति अपने प्रियमित्र के मनुष्य लोक से प्रस्थान होने पर, शरीर भारप्राय, जीवन वज्रकीलसदृश, दिशायें शून्य, इन्द्रिय निष्फल, समय दुःखद और मनुष्य लोक सर्वत्र प्रकाशरहित दिखाई देता है।[265]

यहाँ निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, चिंता आदि सञ्चारी भावों ने मकरन्द की करुण दशा को सम्यक् अभिव्यक्त कर दिया है।

महाकवि भवभूति ने करुणरस को और अधिक गतिशील एवं तीव्रतर बनाने के लिए नवम अङ्क में नायक माधव को करुण का आश्रय और आलम्बन दोनों ही बना दिया। जहाँ माधव आश्रय है वहाँ आलम्बन मालती रहती है और जहाँ माधव आलम्बन है वहाँ आश्रय मकरन्द रहता है। इसी प्रकार दशम अङ्क के प्रारम्भ में भी करुण रस की योजना देखने को मिलती है जहाँ कवि ने नायिका मालती को आलम्बन बनाकर मदयन्तिका, कामन्दकी और लवङ्गिका को आश्रय बनाया है। पुनश्च भूरिवसु को आलम्बन बनाकर मालती के हृदय में करुण रस का उद्रेक कराया है और तत्पश्चात् पुनः मालती को आलम्बन बनाकर कामन्दकी, माधव, मदयन्तिका, मकरन्द और लवङ्गिका को आश्रय बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति ने करुण रस का अंगरस के रूप में सफल एवं स्वाभाविक संयोजन किया है। यहाँ यह विशेष अवधेय है कि कवि का यह करुण प्रकरण के अङ्गीरस शृंगार का उपकारक है।

(ग) बीभत्स रस

कविवर भवभूति ने प्रकरण के पञ्चम अङ्क के अन्तर्गत श्मशान वर्णन प्रसंग में बीभत्स रस का विशद संयोजन किया है। माधव जुगुप्सित दृश्य को देखकर कहता है कि नसों, अँतड़ियों और नेत्रों को ग्रहण कर दाँतों को दिखाकर कोई दरिद्र पिशाच पहले शव के चमड़े को काटते हैं, तत्पश्चात् शरीर की बड़ी ऊँचाई से प्रचुर उत्कट दुर्गन्ध वाले कन्धे, कटिप्रदेश स्थिति मांसपिण्ड, पीठ आदि विशाल अवयवों में सुलभ मांसों को खाकर अपनी गोद में बचे हुए शव के शिर से अस्थि में विद्यमान और निम्न-उन्नत तथा विषम स्थान में बचे हुए मांस को भी धैर्यपूर्वक खा रहा है।[266]

यहाँ शव और पिशाच आलम्बन हैं। दुर्गन्ध आदि उद्दीपन हैं। माधव का मुँह बिचकाना आदि अनुभाव हैं। ग्लानि, आवेग, अपस्मार आदि सञ्चारी भाव हैं। माधव की जुगुप्सा स्थायिभाव है। इन सबसे यहाँ बीभत्स

रस पुष्ट हो रहा है।

यद्यपि बीभत्स रसपरक कवि का यह एक ही पद्य अद्वितीय है तथापि कवि ने इसके पश्चात् द्वितीय पद्य में विचित्र बीभत्स को प्रस्तुत कर इस रस को और अधिक पुष्ट कर दिया है–शव को खाने वाले ये पिशाच प्रचुर चिताओं से विधिवत् ताप से जिनसे रुधिर गिर रहे हैं और अच्छी तरह पकाने से जिनसे चर्बी गिर रही है, धुयें से व्याप्त ऐसे शव के शरीरों को भी खींचकर उत्कृष्टतम पाकयुक्त और गिरने वाले मांस से सम्बद्ध ताप के कारण हिलते हुए मूल और अग्रभाग में अस्थि संयोग स्थानों से पृथक्भूत जँघा के काण्ड को समीप में शरीर से पृथक् कर निकलती हुई मज्जा की धाराओं को पी रहे हैं।[267]

यहाँ भी शव और प्रेत आलम्बन हैं। दुर्गन्ध आदि उद्दीपन हैं। माधव का आँख मीचना, मुँह फेरना आदि अनुभाव हैं। ग्लानि, आवेग, मोह आदि सञ्चारी भाव हैं। इन सबसे बीभत्स रस की पुष्टि हो रही है।

(घ) रौद्र रस

महाकवि भवभूति ने मालतीमाधव प्रकरण में रौद्र रस का भी संयोजन किया है। पञ्चम अङ्क के माधव और अघोरघण्ट के वाग्युद्ध में रौद्ररस की व्यञ्जना हुई है। अघोरघण्ट माधव को ललकारता हुआ कहता है कि अरे ब्राह्मण बालक ! पापी कहीं के, व्याघ्र से आघ्रात मृगी में दया से आकुल मृग के सदृश तुम, हिंसा में रुचि रखने वाले अतएव बलिदान के करने के स्थान की सेवा करने वाले मेरे विषय को प्राप्त हो गये हो। सम्प्रति मैं तलवार के प्रहार से स्कन्धरहित कबन्ध के छिद्र से रक्त समूह की वृष्टि करने वाले मालती से पूर्व तुम्हारे द्वारा ही प्रमथगणों की माता कराला देवी को प्रसन्न कर रहा हूँ।[268]

यहाँ अघोरघण्ट आश्रय है तथा माधव आलम्बन हैं। अघोरघण्ट का माधव के प्रति तलवार से सन्नद्ध होना उद्दीपन विभाव है। अघोरघण्ट का क्रुद्ध होना, ललकारना, आवेग, उग्रता आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, मोह आदि व्यभिचारिभावों से परिपुष्ट क्रोध स्थायिभाव रौद्ररसता को प्राप्त कर रहा है।

क्रुद्ध माधव अघोरघण्ट से कहता है कि अरे रे सूनपापी ! प्रणययुक्त सखी जनों के परिहास में राग से प्राप्त कोमल शिरीष प्रसून के प्रहारों से भी जो मालती का शरीर मलिन हो जाता है उस प्रकार के शरीर में मारने के लिए शस्त्र गिराने वाले तुम्हारे शिर पर अकाण्ड रूप से पतनशील यमदण्ड के

सदृश मेरा यह भुजदण्ड चले ।[269]

यहाँ माधव आश्रय है । अघोरघण्ट आलम्बन है । माधव का अघोरघण्ट को ललकारना, उद्दीपन विभाव है । उग्रता, रोमाञ्च, मद आदि अनुभाव हैं । आक्षेप, मोह, अमर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं । इन सबसे परिपुष्ट स्थायिभाव क्रोध रौद्ररस का व्यञ्जक है ।

(ङ) अद्भुत रस

मालतीमाधव प्रकरण के पञ्चम अङ्क में अद्भुत रस की निष्पत्ति हुयी है । माधव श्मशान के अद्भुत भागों को देखता हुआ कहता है कि आघोषण के अनन्तर ही चारों ओर से प्रचलित भयंकर, संकीर्ण और स्फुट कोलाहल से आकुल और प्रकट होने वाले भूतों से संकीर्ण श्मशान प्रदेश प्रकम्पित के सदृश प्रतीत हो रहा है । अहो, आश्चर्य है कर्णों के समीप तक विदीर्ण ओष्ठप्रान्तों से विकट मुखच्छिद्र प्रकाशन से दीप्त अग्नियों से युक्त दाढ़ों के अग्रभागों से विशाल और सभी ओर फैलते हुए बिजलियों के समूह के सदृश केश, नेत्र, भ्रू, और श्मश्रु जाल से युक्त कभी दृश्य और कभी अदृश्य अतिशय कृश और दीर्घ शरीर वाले उल्कामुख नामक पिशाचों के मुखों से श्मशान-प्रदेशावच्छिन्न आकाश अभिव्याप्त किया जा रहा है ।[270]

यहाँ आश्रय माधव है और पिशाच आलम्बन हैं । पिशाचों के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव है । स्तम्भ, रोमाञ्च, सम्भ्रम, नेत्र विकास आदि अनुभाव हैं । वितर्क, आवेग, भ्रान्ति आदि व्यभिचारिभाव हैं । इन सबसे पुष्ट विस्मय स्थायिभाव अद्भुत रस को प्रस्तुत करता है ।

तृतीय अङ्क में मदयन्तिका दुष्ट शार्दूल के चपेटे में आ जाती है । चारों ओर हाहाकार मचने लगता है । इसी बीच वीर मकरन्द वहाँ आ जाता है। दुष्ट व्याघ्र मकरन्द को दृढ़ता के साथ आहत कर देता है परन्तु मकरन्द उस व्याघ्र को निष्प्राण कर डालता है । [271]

यहाँ कामन्दकी और माधव का विस्मय स्थायिभाव है । मकरन्द आश्रय है और दुष्ट शार्दूल आलम्बन है । दुष्ट शार्दूल का मदयन्तिका के प्रति उद्धत होना उद्दीपन विभाव है । स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर आदि अनुभाव हैं और इस प्रकार के वर्णन से अनुमित हर्ष, वितर्क आदि व्यभिचारी भाव हैं । इन सबके द्वारा अद्भुत रस की व्यञ्जना हो रही ।

(च) भयानक रस

तृतीय अङ्क में दुष्ट शार्दूल के मार्ग को देखकर माधव कहता है कि

पहले कहीं लगे हुए और पश्चात् छिन्न पृथ्वी में फेंके गये अन्य समूह से व्याप्त चलते हुए और विपर्यस्त कबन्ध खण्डों से युक्त रुधिर के सम्पर्क से गुल्फ पर्यन्त फैले हुए कीचड़ से सना हुआ व्याघ्र का मार्ग अत्यधिक भयंकरता को धारण कर रहा है।[272]

यहाँ आश्रय माधव है। आलम्बन व्याघ्र का मार्ग है। मार्गकी प्रचण्डता उद्दीपन है। भीषण मार्ग के वर्णन से प्रस्तुत वैवर्ण्य आदि अनुभाव हैं। रोमांचादि सञ्चारी भाव हैं। इनसे पुष्ट भय स्थायिभाव भयानक रस की निष्पत्ति कर रहा है।

पञ्चम अङ्क में पिशाचों की प्रचण्डता का वर्णन करता हुआ माधव कह रहा है कि विशीर्ण और शुष्क शरीर वाले पिशाच विशाल और चञ्चल जीभ से भयंकर गड्ढे के सदृश मुख को फैलाकर यहाँ प्रवेश कर चलते हुए अजगर से भयंकर कोटर वाले दावानल से किसी स्थान पर जले हुए पुरातन चन्दन वृक्षों की कान्ति को धारण कर रहे हैं।[273]

यहाँ आश्रय माधव हैं और पिशाच आलम्बन हैं। पिशाच की चेष्टायें उद्दीपन हैं। वैवर्ण्य, गद्गद स्वर आदि अनुभाव हैं। स्वेद, रोमाञ्च, जुगुप्सा, आवेग आदि सञ्चारी भाव हैं। इन सबसे भयानक रस की निष्पत्ति हो रही है।

कपालकुण्डला कहती है कि जिसमें पहले ऊपर उठती हुई और पश्चात् नीचे जाती हुयी कपालों की कण्ठमाला में परस्पर अभिघात से शब्द करने वाली भीषण क्षुद्रघण्टिकायें दिखाई पड़ रही हैं ऐसा मेरे आकाशगमन का वेग मुझ पर पर्याप्त मनोहरत्व और भीषणत्व को सम्पादित करता है।[274] सम्पूर्ण दिशाओं से फैला हुआ जटाभार दृढ़ग्रन्थिबन्ध से युक्त होता हुआ भी कम्पित हो रहा है। खट्वाङ्ग में बाँधी नई घण्टा वेग नामक संस्कार से रणरण शब्द से विस्तृत होकर निपुणता पूर्वक आवृत होती हुई ध्वनि कर रही है। स्पष्ट रूप से दृष्टि कण्ठमाला स्थित शिरों की पंक्ति रूप कुञ्जों में शब्द करता हुआ उद्भट क्षुद्रघण्टिका के अनवरत रणत् शब्द का हेतु वायु पताका को ऊपर प्रकम्पित कर रहा है।[275]

यहाँ करालायतन स्थान आलम्बन है। जटाभार का प्रकम्पित होना, घण्टा के द्वारा तेजी से ध्वनि होना आदि उद्दीपन हैं। वैवर्ण्य गद्गद स्वर, रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं। भय, त्रास, आवेग, आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबसे भयानक रस की व्यञ्जना हो रही है।

(छ) शान्त रस

मालतीमाधव प्रकरण के एक दो स्थलों पर शान्तरस का सुन्दर संयोजन

हुआ है। जिस समय माधव को यह ज्ञात होता है कि मालती का विवाह नन्दन के साथ होगा उस समय वह अपने मन में सोचता है कि भगवती निश्चय ही स्वाभाविक स्नेहमात्र से कातर होकर माधव को यह सान्त्वना मात्र दे रहीं हैं। हाय, दुःख है मैं सभी प्रकार से शङ्कायुक्त जन्मसाफल्य वाला बन गया हूँ। इसलिए सम्प्रति क्या करना चाहिए ? चिन्ता कर कहता है कि नरमांस (देवताप्रीतिकारक महामांस) के विक्रय से भिन्न उपाय नहीं देख रहा हूँ।[276]

यहाँ आश्रय माधव है। प्रेयसी मालती की अप्राप्तिरूप दुःखमयता से संसार की असारता के ज्ञान से देवताप्रीणन आलम्बन है। एकान्त स्थान ऋषि आश्रम आदि उद्दीपन विभाव हैं। रोमाञ्चादि अनुभाव है। निर्वेद, स्मरण, मति आदि सञ्चारी भाव हैं। इन सबसे शान्तरस की व्यञ्जना हो रही है।

(ज) हास्य रस

हास्यरस की व्यञ्जना प्रकरण के उस प्रसंग से होती है जिसमें नन्दन मालती के वेश को धारण कर मकरन्द के साथ पाणिग्रहण करता है। नन्दन उसे वास्तविक मालती समझता हुआ काम के आवेश में विलम्ब को न सहन करता हुआ समागम के लिए मालती रूपधारी मकरन्द के चरणों में गिरकर प्रार्थना करता है। तत्पश्चात् बलात्कार की चेष्टा करता है परन्तु मकरन्द के द्वारा कठोरतापूर्वक हटा दिया जाता है। इससे नन्दन क्रोधावेश में आकर आँसू गिराता हुआ कहता है कि मुझे कुमारी अवस्था में ही चरित्रहीन इस मालती से कोई प्रयोजन नहीं है।[277]

यहाँ मालती वेषधारी नन्दन आलम्बन है। नन्दन का मालती वेशधारी मकरन्द के साथ विवाह कर लेना उद्दीपन विभाव है। नन्दन का मालती रूपधारी मकरन्द को मनाना, न मानने पर बलात्कार आदि अनुभाव हैं। अमर्ष आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे हास्यरस की व्यञ्जना हो रही है।

इसी अङ्क में शय्या पर स्थित मालती वेषधारी मकरन्द लवङ्गिका के साथ प्रस्तुत होता है। वहीं मदयन्तिका एवं बुद्धरक्षिता भी आ जाती हैं। मदयन्तिका को यह ज्ञात नहीं है कि यह मालती वेषधारी पुरुष मकरन्द है। वे उन्हें मालती ही समझती हैं। मदयन्तिका लवङ्गिका से प्रश्न करती है कि क्या तुम्हारी प्रियसखी मालती सोयी हुई है जिस पर लवङ्गिका कहती है, इन्हें मत जगाओ क्योंकि ये बहुत समय तक खिन्न होती हुयी अभी कुछ

सो रहीं हैं इसलिए धीरे से इसी बिछौने के एक ओर बैठ जाओ। मदयन्तिका अपने प्रेमी मकरन्द को मालती समझती हुयी वहीं बैठकर कहती है कि यह कुटिल स्वभाव वाली स्त्री क्यों खिन्न हो रही है ? वह यह भी कहती है कि उसके भाई ने उन्हें उलाहना भी दिया है। इसी प्रकार मदयन्तिका मालती को सोया हुआ समझकर वहाँ विविध वार्तालाप करती है। यहीं मदयन्तिका अपने प्रेमी मकरन्द से सम्बन्धित प्रेमभाव को प्रकट कर देती है जिसे मालती वेषधारी मकरन्द सुनता रहता है। अन्त में जब मकरन्द यह समझ लेता है कि मदयन्तिका उसके प्रति समर्पित है तो वह अपने मुख को खोलकर उसके हाथ को पकड़ लेता है। मदयन्तिका उसे मालती ही समझती हुयी कहती है सखि मालति ! तुम जाग गयी हो। परन्तु जब वह ध्यान से देखती है तो हर्ष और भय के साथ कहती है कि अहो यहाँ तो कुछ दूसरा ही है।[278]

यहाँ आलम्बन मकरन्द हैं। मकरन्द का मालती के वेष को धारण कर निद्रा के बहाने शय्या पर शिर ढककर लेटे रहना उद्दीपन विभाव है। नेत्रों का मुकुलित रहना, मदयन्तिका के द्वारा मकरन्द को मालती समझते रहना तथा मकरन्द सम्बन्धी अपने प्रणयालाप को प्रस्तुत करना अनुभाव हैं। अवहित्था आदि सञ्चारिभाव हैं। इन सबसे हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

(झ) वात्सल्यरस

मालतीमाधव प्रकरण में अङ्गरस के रूप में यत्र-तत्र वात्सल्य रस की भी अभिव्यञ्जना हुयी है। दशम अङ्क के प्रारम्भ में कामन्दकी मालती के विषय में सोचती हुयी कहती है कि हा वत्सले मालति ! तू तो मेरे गोद को अलंकृत करने वाली है। जन्म से लेकर प्रतिक्षण अत्यधिक मनोहर और पुनः पुनः पहले अनुभूत तुम्हारी क्रीड़ादि चेष्टायें तथा मनोहर और प्रिय तुम्हारे मधुर वचन स्मरण किये जाने पर अत्यधिक दुःख दे रहे हैं।[279] अयि पुत्रि ! कारण के बिना भी रोने और हँसने वाले कलियों के अग्रभागों के सदृश स्निग्ध दन्तावलि से सुशोभित अधूरे अक्षरों वाले असम्बद्ध और मनोहर वचनों से युक्त तुम्हारे कमल के तुल्य शिशु मुख को याद कर रही हूँ।[280] अयि वत्से मालति ! मैंने ही माता के दूध को छोडने के समय से लेकर सुन्दर मुख वाली तुमको हस्तिदन्त निर्मित खिलौने की तरह क्रीड़ा करायी और तत्पश्चात् शास्त्र शिल्पादि की शिक्षा दी तथा बढ़ाया। बड़े प्रयत्न से युवावस्था में लोक-श्रेष्ठ, गुणवान् वर माधव में स्थापन किया। इसलिए मुझ पर तुम्हारा भी माता से अधिक स्नेह उचित है।[281] बिना कारण के ही मन्दहास्य युक्त और

मनोहर मुख वाले, जिसकी चूड़ा और ललाट में श्वेत सर्षप रक्खे जाते हैं ऐसे माता का दूध पीने वाले तथा गोद मैं सोने वाले तुम्हारे पुत्र को भाग्य-रहित होने से मैं नहीं देख पाई ।[281]

यहाँ आलम्बन मालती है। उसकी विविध चेष्टायें उद्दीपन हैं। रोमांच, आनन्दाश्रु अनुभाव हैं। अनिष्ट की शङ्का आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार यहाँ वात्सलय की स्थिति है।

(ङ) उत्तररामचरित में रसध्वनि

(अ) अंगीरस

उत्तररामचरित नाटक के अङ्गीरस के विषय में आचार्यों में पर्याप्त मतभेद है। कतिपय विद्वान् नाटक में प्रधानतया करुण की व्यञ्जना को देखकर करुणरस को ही अङ्गीरस मानते हैं और इसके विपरीत कतिपय विद्वान् करुण विप्रलम्भ शृंगार को अङ्गीरस के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस मतभेद का मुख्य कारण यह है कि अंगीरस के विषय में नाटकलक्षणकारों ने एक व्ययस्था दे रखी है जिसके अनुसार नाटक में वीर अथवा शृंगार को ही अंगीरस के रूप में प्रस्तुत करना चाहिये ।[283]

इस प्रकार इस शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार उत्तररामचरित में शृंगार या वीररस को अंगीरस के रूप में होना चाहिये और अन्य अंग के रूप में, परन्तु संस्कृत साहित्य की गम्भीर अधीतियों ने उत्तररामचरित में करुण को ही अंगीरस के रूप में स्वीकार किया है ।[284]

डॉ० विण्टरनिट्ज ने भारतीय साहित्य का इतिहास (खण्ड ३) में उत्तररामचरित के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है–

'The poet however in this drama finds abundant opportunities for presenting the pathos in its real perspective and in generating in an efficient mammer in the mind of his audience the feeling of sentiment of pity (Karunarasa)"

प्रो० मैक्डोनल ने भी "संस्कृत साहित्य का इतिहास" नामक ग्रंथ में लिखा है–

"The description of the tender love of Ram and Sita purified by sorrow exhibits more genuine than appears perhaps in any other Indian Drama."

डॉ० कृष्णमाचार्य ने भी "लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास" नामक ग्रंथ में लिखा है–

"In the expression of genuine pathos (Karun) and the description of wild scenery it has rarely bee surpassed any where."

इस सम्बन्ध में डॉ० काणे का विचार भी मननीय है–

"He is unrivalled in the treatment of tender human feelings (Marked vardict of Sanskrit exities.

कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते)।"

विद्वानों के इस प्रवृद्ध वैमत्य को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है, कि इस विषय पर गम्भीरता के साथ विचार किया जाय कि उत्तररामचरित में अंगीरस करुण है, या करुण विप्रलम्भ श्रृंगार ?

महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक की प्रस्तावना में ही देवी सीता की खिन्नता के द्वारा करुणरस के बीज का वपन कर दिया है। गुरुजनों के अयोध्या से चले जाने से देवी सीता अत्यधिक खिन्न हो जाती हैं, अतः राम उनकी सान्त्वना के लिए धर्मासन से वासगृह में जाते हैं।[285] खिन्न सीता को धैर्य बँधाते हुए राम कहते हैं कि देवि वैदेहि ! विश्वास करो, वे गुरुजन हम लोगों को नहीं छोड़ सकते परन्तु निश्चय ही कर्तव्य पालन की भावना मनुष्य के स्वातन्त्र्य को छीन लेती है।[286] इस पर सीता का उत्तर मार्मिक करुणा से ओतप्रोत होता है–आर्यपुत्र जानती हूँ परन्तु बन्धुजनों का वियोग सन्तापदायक होता है।[287] इसी अंश में कवि भगवती अरुन्धती, शांता और राजमाताओं का सन्देश, महर्षि वसिष्ठ का आदेश तथा राम की प्रतिज्ञा को संयोजित करता है, जो कि अज्ञातरूप में सीतापरित्याग के निमित्त बन जाते हैं और यह सीता परित्याग की घटना ही नाटक के रस की आधारशिला या प्राणभूत घटना है। इसी से आविर्भूत शोक समस्त नाटक को करुणासागर में आप्लावित कर देता है।

दुर्मनायमान देवी सीता को प्रसन्न करने के लिए प्रस्तुत किया गया चित्रदर्शन भी रससंयोजन व्यापार में अपनी विशिष्ट भूमिका रखता है। कवि ने प्रारम्भ में चित्रदर्शन के द्वारा राम और सीता के पूर्वचरित की झाँकी प्रस्तुत की है, जिससे उन दोनों के हृदय सम्भोग की सुखद अनुभूति में रमते हैं और यह संयोग की सुखद अनुभूति भविष्य में आने वाले बियोग की बेदना को ओर अधिक तीव्रतर करने में सहायक होती है। इसी प्रसंग में राम सीता को जन्म से पवित्र बतलाते हैं। जिस समय चित्रफलक के बिषय में पूछे जाने पर लक्ष्मण यह बतलाते हैं, कि वह आर्या सीता की अग्निशुद्धिपर्यन्त है, तो राम सीता को प्रसन्न करते हुए कहते हैं कि यह तुम्हारा अग्निशुद्धिविषयक प्रवाद

आजीवन चलेगा। उन्हें दुःख है कि देवि सीता का तो मनोविनोद किया जाना चाहिए अतः उनके विषय में अमंगल वाक्य उचित नहीं है।[288] कवि के इस प्रसंग से यह ध्वनित होता है कि राम के द्वारा सीता का भावी परित्याग अनुचित है और अन्त में होने वाला संयोग श्लाघ्य है।

राम के लिए सीता का क्षणिक वियोग भी असह्य है। इसकी पुष्टि चित्रदर्शन का वह श्लोक कर देता है, जिसमें लक्ष्मण–"आर्येणास्मिन्"–इतना ही कह पाते हैं, कि राम उन्हें मध्य में ही रोककर कहने लगते हैं, कि लक्ष्मण रुक जाओ, रुक जाओ, इसके आगे सुनने में समर्थ नहीं हूँ। मेरा वह पूर्वानुभूत सीता का वियोग मानों फिर से लौटा आ रहा है।[289] यहाँ भी कवि की यह नाटकीय योजना जहाँ एक ओर यह प्रतिपादित करती है, सीता का वियोग राम के लिए सर्वथा असह्य है वहीं दूसरी ओर यह भी संकेत कर देती है कि राम के लिए सीता का वियोग पुनः उपस्थित हो गया है। यहीं चित्रदर्शन से उत्पन्न हुए दोहद के कारण देवी सीता की यह इच्छा होती है कि फिर से प्रसन्न और गम्भीर बन पंक्तियों में विहार कर पवित्र, निर्मल और शीतल सलिल वाली गंगा में स्नान करें। कवि की यह नाटकीय संघटना भी यह सूचित कर रही है कि सीता को पुनः वन में भटकना पड़ेगा और शीतलतोया गंगा की क्रोड में विचरण करना होगा। इसी प्रसंग में कवि दम्पति के ललित शृंगार की व्यञ्जना प्रस्तुत करता है जो कि मानों वियोग को और अधिक असह्य बना देता है।

वक्षःस्थल पर प्रसुप्त प्रिया सीता को सस्नेह देखकर राम उन्हें गृह में लक्ष्मी, नेत्रों में अमृतशलाका बतलाते हुए उनके स्पर्श को चन्दन रस सदृश शीतल और बाहु को कोमल मुक्ताहार के रूप में देखते हैं। उन्हें उनकी प्रत्येक वस्तु अत्यधिक प्रिय है। परन्तु यदि अप्रिय है तो वह केवल वियोग[290] राम के इसी कथन पर प्रतीहारी प्रवेश कर कहता है–महाराज ! उपस्थित है। कवि का यह नाटकीय वाक्य भी भावी वियोग को उपस्थित बतलाता है। इधर देवी सीता भी स्वप्न में आर्यपुत्र राम के वियोग को देखती हैं जो कि आगे चलकर साकार होता है।

इस प्रकार कवि ने सुदृढ़ नाटकीय पृष्ठभूमि पर करुण रस का उद्गम दुर्मुख के उस वाग्वज्र के द्वारा कराया है जिसके सुनते ही राम मूर्च्छित हो जाते हैं। जन्म से पवित्र सीता के विषय में दुर्मुख के द्वारा किंवदन्ती को सुनकर राम विलाप करने लगते हैं–

"हन्त हन्त ! सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। आसारः संसारः। काष्ठप्रायं

शरीरम् । अशरणोऽस्मि । किं करोमि का गतिः ?''[291]

उन्हें यह सोचकर अत्यधिक दुःख होता है कि जिस परम पवित्र सीता के द्वारा संसार पवित्र हुआ उसी के सम्बन्ध में लोग अपवित्र उक्तियाँ कह रहे हैं। जिसने सब लोगों को सनाथ किया वही अब अनाथ होकर दुःख पायेगी। वे अपने कर्तव्य का समुचित निर्णय लेते हैं और उनका कर्तव्यपालन उनके हृदय को अत्यधिक पीड़ित कर रहा है। जिससे वह स्वयं को पातकी कहते हुए देवी सीता के चरणों में मस्तक रखकर अपने अगाध दुःख को प्रकट करते हैं। अन्त में वे बड़े धैर्य से भगवती वसुन्धरा से प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी पुत्री का ध्यान रखें। यहाँ राम की सीता के प्रति चिन्ता उनके करुण-भाव को पुष्ट कर रही है।

प्रथम अङ्क से प्रवाहित होने वाली यह करुणरस की धारा द्वितीय अङ्क के विष्कम्भक में भी दिखलायी देती है। जनस्थान में आत्रेयी, तपोवन, पंचवटी, गोदावरी, प्रस्रवण और वासन्ती को देखकर अधीर हो उठती है।[292] वासन्ती भी आत्रेयी के मुख से सीताविषयक सापवाद अत्याहित को सुनकर 'हा दारुणो दैव निर्घातः" कहती हुयी मूच्छित हो जाती है। जन-स्थान में पहुँचकर राम भी वहाँ के परिचित स्थलों और सीता की स्मृतियों का ध्यान कर अधीर हो उठते हैं। सीता के शोक से व्यथित चित्त राम कहते हैं कि जिस पंचवटी में मैंने प्रियतमा सीता के साथ अपने घर की तरह दिनों को व्यतीत किया था और जिस पंचवटी विषयक बड़ी-बड़ी कथाओं सहित हम लोग अयोध्या में रहते थे। इस समय सीता को नष्ट कर देने वाला पापी राम उसी पंचवटी को कैसे देखे। अथवा उसका अनादर करके कैसे लौट जाये ?[293] यहाँ राम की यह चिन्ता होना आवश्यक ही है। साध्वी सीता राम के निर्वासन में उनका साथ देती हैं। वे भयंकर वनों में भी प्रसन्न रहती हैं। अनुराग के कारण उन्हें अरण्यवास कष्टकर नहीं लगता। जो जिसका प्रियजन होता है, वह उसका अनिर्वचनीय द्रव्य है। वह कुछ भी न करता हुआ सुखों से दुःखों को दूर कर देता है।[294] राम को आज यही सर्वाधिक कष्ट है कि उनके दुःख में तो सीता ने साथ दिया और वे सीता के दुःख में हाथ न बँटा सके। इसलिए अधीर राम कहने लगते हैं कि आज उन्हें यह क्या आ पड़ा है ? इस समय तो चिरकाल के पश्चात् वेदना की शीघ्रता को उत्पन्न करने वाला सर्वत्र प्रसृत तीव्र विषरस के सदृश कहीं से अत्यन्त वेग से चले हुए बाणाग्र के टुकड़े के तुल्य घाव से युक्त हृदय के मर्मस्थल में फूटे हुए फोड़े की तरह पुरातन शोक नवीन के सदृश होकर मुझे पुनः व्याकुल कर रहा है।[295] प्रियतमा सीता की स्मृति से उद्भूत राम का यह विषाद अत्यन्त

ही कारुणिक है, तृतीय अङ्क में करुण रस की अत्यधिक मार्मिक गम्भीर और हृदयावर्जक अभिव्यक्ति हुयी है। इस सम्पूर्ण अङ्क में सर्वत्र करुणरस का अगाध सागर ही उमड़ पड़ा है। अङ्क के प्रारम्भ में ही राम का करुण रस पुटपाकप्रतीकाश बतलाया गया है जो कि उन्हें भीतर ही भीतर जला रहा है।[296] द्वितीय अङ्क में पंचवटी में पूर्वपरिचित स्थानों को देखकर सीता की स्मृति से उनकी मनोदशा तीव्रतर हो जाती है। इधर राम के वियोग में सीता की दशा भी अत्यन्त चिन्तनीय है। तृतीय अङ्क का विष्कम्भक राम और सीता के यथार्थ चित्र को खींच देता है। तमसा और मुरला का वार्तालाप यह स्पष्ट कर देता है कि इस अङ्क में देवि सीता छाया के रूप में उपस्थित होंगी।

कवि ने सीता को करुणरस की साक्षात् मूर्ति अथवा शरीरिणी विरहावस्था के रूप में चित्रित किया है। उनका कृश और परिपाण्डु शरीर सहसा ही करुणा का उद्रेक कर देता है।

विष्कम्भक के पश्चात् कवि ने अङ्क का प्रारम्भ ही करुणा से ओत-प्रोत वातावरण में किया है। जिस करिकलभ का देवी सीता ने अपने हाथ से सल्लकी लता के अग्रभागों से पालन-पोषण किया था, उसी पर किसी उद्दाम गजेन्द्र ने आक्रमण कर दिया।[297] अतः वासन्ती उसे पुत्र-पुत्र कहकर सम्बोधित करती है। इसी स्थिति में पुष्प चुनने में व्यस्त करुणा और उत्सुकता के साथ सुनती हुयी छाया सीता प्रवेश करती हैं। वे वासन्ती की बोली से निकट से परिचित हैं, अतः कहती हैं ऐसा लग रहा है कि मेरी प्रियसखी वासन्ती बोल रही है अतएव शीघ्रता के साथ कतिपय पग चलकर अधीर होकर कहने लगती हैं–आर्यपुत्र मेरे पुत्र को बचाइये, इसे बचाइये। परन्तु बीच में ही सोचकर खिन्नचित्त होकर कहने लगती हैं–हा धिक्, हा धिक् वे ही चिरकाल से परिचित अक्षर पंचवटी को देखने से मुझ अभागिनी का अनुसरण कर रहे हैं–हाय आर्यपुत्र ! कहकर मूच्छित हो जाती है।[298]

यहाँ कवि ने मार्मिक करुणा की अनुभूति करायी है। अपने पुत्रसदृश पीड़ित करिकलभ को देखकर सीता उसके दुःख में इतनी तन्मय हो जाती हैं, कि उन्हें यह भी स्मरण नहीं रहता कि वे राम से दूर हैं। अतः वे अधीर होकर कहने लगती हैं–आर्यपुत्र मेरे इस पुत्र को बचायें। परन्तु उन्हें जब यह स्मरण होता है कि वे इस समय परित्यक्ता है तो पश्चात्ताप करती हुई कहने लगती हैं कि चिरकाल से परिचित आर्यपुत्र शब्द इस पंचवटी को देखने से मुझ मन्दभागिनी को पुनः स्मरण हो रहा है। सीता को यह कथमपि सहन नहीं है और वे मूच्छित हो जाती हैं। इसी मध्य विमान के द्वारा

राम वहाँ पहुँचते हैं और वे विमानराज से वहाँ रुकने के लिए कहते हैं। सीता के लिए राम के वाक्य उसी प्रकार उत्कण्ठित करने में सक्षम हैं, जिस प्रकार मेघ का अस्पष्ट शब्द मयूरी को उत्कण्ठित करने में सक्षम है। अतएव वे सजल जलधर के मन्द गर्जन के सदृश गम्भीर और मांसल रामवाणी की ध्वनि को सुनकर भय और हर्ष के साथ तर्क करने लगती हैं कि न जाने यह विचित्र ध्वनि मुझ अभागिनी को सहसा क्यों उत्कण्ठित कर रही है ? स्वर संयोग से वे यह पहचान कर लेती हैं कि यह आर्यपुत्र की ही भणिति है। इसी मध्य राम वहाँ पहुँच जाते हैं। जिन्हें देखकर सीता अधीर होती हुई कहती हैं कि सौभाग्य से प्रातःकालीन चन्द्रमण्डल के सदृश कुछ शुभ्र क्षीण और कृश शरीर वाले आर्यपुत्र अपने शान्त एवं गम्भीर प्रभाव मात्र से पहचानने के योग्य हो गये हैं। भगवतितमसे मुझे सँभालिये। यह कहकर तमसा का आलिंगन कर मूर्च्छित हो जाती हैं।[299]

यहाँ कवि ने जहाँ एक ओर राम की सीता विषयक वियोगवेदना से कृश आकृति को निर्दिष्ट किया है। वहाँ दूसरी ओर परित्यक्ता होते हुए भी सीता का उनके प्रति अनन्य अनुराग अभिव्यञ्जित किया है। सीता को अपनी चिन्ता नहीं है परन्तु वे अपने प्रियतम राम को कृशकाय रूप में नहीं देख सकतीं। आज जब वे उन्हें अत्यधिक पीले, क्षीण और दुर्बल रूप में देखती हैं तो वे मूर्च्छित हो जाती हैं।

इधर राम भी पंचवटी के दर्शन से सीता के वियोग से प्रज्वलित दुःखाग्नि की धूमराशि सदृश मोह से आवृत हो जाते हैं और वे सीता को ही दण्डकारण्यवासप्रिय सखि विदेहराजपुत्रि शब्दों से सम्बोधित करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। राम की इस दशा को देखकर सीता कहती हैं कि मुझ अभागिन को पुकार कर नीलोत्पल सदृश नेत्रों को निमीलित कर आर्यपुत्र मूर्च्छित ही हो गये हैं। हाय, किस प्रकार अवरुद्ध श्वास वाले और दुर्बल होकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। भगवति तमसे ! बचाइये, बचाइये, आर्यपुत्र को जीवित करिये। यह कहकर प्रियतम के परित्राणार्थ तमसा के चरणों में गिर पड़ती हैं।[300] तमसा सीता को समझाती हैं कि हे कल्याणि ! तुम्हीं उन जगत्पति राम को जीवित कर सकती हो क्योंकि तुम्हारे प्रियस्पर्श पाणि में राम अनुरक्त हैं।[301] तमसा के इस कथन से प्रेरित सीता राम के दुःख को सहन नहीं कर पातीं और वे स्पष्ट कर देती हैं कि जो कुछ भी हो तमसा जैसा आदेश कर रही हैं वे वैसा ही करेंगी। राम के प्रिय कार्य के लिए वे उनके द्वारा किये गये निर्वासन एवं लोकलज्जा का भी परित्याग कर उनके स्पर्श के लिए सन्नद्ध हो जाती हैं। जब सीता के शयकुशेशयों के कोमल

स्पर्श से राम को चेतना प्राप्त होती है तो वे कहते हैं कि पूर्व परिचित उत्तम जीवन के हेतु और मन को सन्तुष्ट कर देने वाला निश्चय ही वही स्पर्श है जो कि सन्तापजन्य मूर्च्छा को दूर कर तत्क्षण आनन्द को उत्पन्न कर पुनः जड़ता को ला रहा है।[302] सीता के लिए अधीर होकर वे करुणायुक्त हो उसे इधर-उधर खोजने लगते हैं, परन्तु जब सीता नहीं दिखाई देती हैं तो वे निर्वेद के साथ कहने लगते हैं—हा न किञ्चिदन्न। सीता का मूर्तिमान् प्रसाद स्नेहार्द्र शीतल स्पर्श अब भी उन्हें आनन्दित कर रहा है, परन्तु देखने पर भी उन्हें सीता कहीं नहीं दिखलाई देती हैं अतएव वे कहते हैं कि अयि दयिते सीते तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत आनन्द की उपलब्धि हो तो रही है परन्तु आनन्ददायिनी तुम कहाँ हो ?[303] खोजने पर भी नहीं मिल रही हो। इसके पश्चात् सोच विचारपूर्वक कहते हैं, अथवा प्रियतमा कहाँ हैं ? यह तो सीताविषयक संकल्पों से उत्पन्न मेरा केवल भ्रम है।[304] क्या ही मधुर करुण योजना है।

राम के द्वारा खोजे जाने की सम्भावना पर सीता अपने को धिक्कारती हुई कहती हैं कि धिक्कार है। कष्ट है। क्या आर्यपुत्र मुझे खोजेंगे ? वह तमसा ने निवेदन करती है कि इस स्थिति में हम लोगों को यहाँ से हट जाना चाहिये। जब राम उन्हें हा प्रियजानकि ! के द्वारा संबोधित करते हैं तो वे नेत्रों में आँसू भरकर कहने लगती हैं कि भगवति तमसे ! दूसरे जन्म में भी जिनका दर्शन मेरे लिए दुर्लभ और असम्भावित है और मुझ अभागिन को ही लक्ष्य कर जो ऐसा कह रहे हैं, इतने स्नेहमय प्रियतम के ऊपर मैं वज्रमयी और निर्दय हो जाऊँगी। मैं ही इनका हृदय जानती हूँ और वे मेरा हृदय जानते हैं।[305] अत्यधिक निर्वेद का अनुभव करती हुई सीता कहती हैं कि भगवति ! बिना कारण के परित्याग करने वाले इनके ऐसे दर्शन से भी मेरे हृदय की दशा कैसी हो रही है ? यह मैं नहीं जानती। इस पर सीता के हृदय की मार्मिक स्थिति का उद्घाटन करती हुई तमसा कहती है कि पुत्रि ! मैं तुम्हारे हृदय की स्थिति को विधिवत् जानती हूँ। तुम्हारा हृदय इस समय निराशा के कारण उदासीन की तरह, पति के परित्याग रूप अप्रिय आचरण से कलुषित की तरह, इस दीर्घ वियोग में आकस्मिक मिलन से निश्चल की तरह, प्रिय की सम्बोधन सुजनता से प्रसन्न की तरह और प्रिय राम की शोकमयी अवस्थाओं से शोकाकुलित और प्रेम के कारण द्रवीभूत की तरह हो रहा है।[306] यहाँ तमसा ने सीता की आन्तरिक मनोवृत्ति का सम्यक् रूप से उद्घाटन किया है।

सीता को राम के अगाध स्नेहसम्भार को प्रदर्शित करने वाले उच्च विलाप आनन्दनिष्यन्दिनी सुधाधारा के सदृश मधुर प्रतीत होते हैं। अत-

एव अकारण परित्याग रूपी शल्य से विद्ध होने पर भी वे अपने को कृतकृत्य समझती हैं।

करिकलभ की विपत्तिवार्ता सुनकर राम का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट हो जाता है। वस्तुतः यहाँ कवि उनके शोकाकुलित मन को कुछ समय के लिए दूसरी ओर ले जाना चाहता है। राम जब यह सुनते हैं कि उनका पुत्र करिकलभ किसी से आक्रान्त हो रहा है तो वे कहते हैं–वह दुरात्मा कहाँ है ? जो पत्नी से युक्त प्रिया के पुत्रक पर आक्रमण कर रहा है। यहाँ भी प्रतिभा के धनी महाकवि भवभूति राम के हृदय को उनकी पुरातन स्मृति तरंगों के द्वारा उद्वेलित करने में सक्षम होते हैं। वासन्ती राम से कहती हैं कि महाराज शीघ्रता करें, शीघ्रता करें। यहाँ से जटायु के द्वारा आश्रित पर्वत की चोटी के दक्षिण की ओर सीतातीर्थ से गोदावरी में उतर कर महाराज देवी सीता के पुत्र की रक्षा करें।[307] वासन्ती के द्वारा प्रस्तुत यह कथा राम के हृदय के मर्मस्थल को भेदन करने वाली है और यहीं वासन्ती राम को यह सूचना दे देती हैं कि महाराज विजयी और वधूयुक्त देवी के पुत्र के साथ-साथ आप प्रसन्न होवें। यहाँ हम देखते हैं कि राम के ध्यान को दूसरी ओर आकृष्ट करने के लिए जो करिकलभ का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है, वह वस्तुतः पूर्व स्मृतिजन्य राम के सन्ताप को और अधिक बढ़ा रहा है। इस प्रकार कवि अपनी करुणयोजना में सफल होता चला जा रहा है।

करिकलभ को देखने के पश्चात् देवी सीता को अपने लाड़ले लव-कुश की याद आ जाती है और वे कहने लगती हैं अयि तमसे ! यह करिकलभ तो ऐसा हो गया है, उन दोनों को नहीं जानती हूँ कि अब तक वे मेरे प्रिय वत्स लव-कुश कैसे हो गये होंगे ? मैं ऐसी अभागिन हूँ जिसे केवल आर्यपुत्र का ही नहीं अपितु अपने पुत्रों का भी वियोग सहन करना पड़ रहा है। सीता का यह कथन मार्मिक करुणा की व्यञ्जना करा रहा है। इतना ही नहीं सन्तानों की स्मृतिमात्र से उनके प्रकम्पित पयोधरों से दूध बहने लगता है और उन बच्चों के पिता राम की उपस्थिति से वे कुछ समय के लिए असंसारिणी होते हुए भी संसारिणी हो जाती हैं। तमसा का यह वाक्य–'प्रसवः खलु प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य' मार्मिक करुण को अधिक तीव्र बना देता है। वासन्ती को यह विधिवत् ज्ञात है कि राम सीता के वियोग से अत्यधिक व्यथित हैं फिर वह राम को पंचवटी के उन दृश्यों को दिखला देती है जो कि उनकी वेदना को और तीव्रतर कर देते हैं। वासन्ती कहती है महाराज इधर देखें यह वही मयूर है, जिसे सखी सीता ने स्वयं पाला था। वासन्ती

के इस कथन से राम को उन दिनों की याद आ जाती है जब भोली भाली सीता अपने पल्लवसदृश हाथों के तालों से उस मयूर को नचाया करती थीं।[308] उन्हें यह भी स्मरण है कि कुछ फलों को उत्पन्न कर देने वाला यह कदम्ब वृक्ष भी देवी सीता के द्वारा ही परिवर्धित हुआ था।[309] वासन्ती राम की करुणा को उद्दीपित कराने के लिए उनका ध्यान उस घने और सुकुमार केलों के वन के मध्य में स्थित शयन करने योग्य शिलातल की ओर आकृष्ट करती है जहाँ पर बैठी हुयी सीता वन में रहने वाली हरिणी को घास दिया करती थीं। इसलिए उनको हरिण नहीं छोड़ते थे।[310] राम को उस स्थान की स्मृति करुणासागर में निमज्जित कर देती है और वे उस स्थान को देखने में असमर्थ होकर दूसरी ओर को मुख करके रोने लगते हैं। सीता का शोक पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वे वासन्ती को सम्बोधित करती हुयी कहती हैं कि तुमने आर्यपुत्र और मुझको यह स्थान दिखाकर क्या कर दिया ? सीता का यह वाक्य मार्मिक करुणा की व्यञ्जना कर रहा है। वासन्ती सीता से रामभद्र की अवस्था को प्रतिपादित करती हुयी कहती है जो रामभद्र नूतन नीलकमलों के सदृश चिकने अङ्गों से नेत्रों को आनन्दित करते हुए सदैव हम लोगों को इच्छानुसार दर्शन के योग्य होते हुए नये-नये लगते थे, वही इस समय शोक से व्याकुल इन्द्रियों वाले धूसर वर्ण से युक्त और अत्यन्त ही दुर्बल होने के कारण ये वे ही राम हैं, यह बड़ी कठिनाई से अनुमान किया जा रहा है, फिर भी नेत्रों को प्रिय लग रहे हैं।[311] प्रियतम राम को देख कर शोकाकुलित सीता कहने लगती हैं कि हा देव ! ये मेरे बिना और मैं इनके बिना रह सकूँगी ! यह किसने सम्भावना की थी। इसलिए मुहूर्तमात्र दूसरे जन्म में भी दुःख से पाये जाने योग्य दर्शन वाले वत्सल आर्यपुत्र को आँसुओं के निकलने के अनन्तर के समय में देख लूँ। यह कहकर देखती हुयी खड़ी रहती है। देवी सीता की उस दृष्टि की मीमांसा करती हुयी तमसा इस प्रकार कहती है कि अत्यधिक प्रवाहों से फैले हुए तथा आनन्द और शोक से उत्पन्न आँसू को छोड़ती हुई सुन्दर नेत्र लोमों से युक्त विस्फारित और दीर्घ तथा सफेद प्रिय और सुन्दर दुग्ध की नहर की तरह तुम्हारी दृष्टि प्रेम की वृष्टि करती हुयी हृदयेश्वर राम को स्नान करा रही है।[312]

खिन्न वासन्ती अश्रुपरिपूर्ण नेत्रों से कुमार लक्ष्मण का कुशल पूछती है परन्तु राम तो सीता की स्मृति के कारण जड़ताक्रान्त हैं। अतः वे वासन्ती के प्रश्न को सुन ही नहीं पाते और स्वयं कहे जाते हैं कि मैथिली ने अपने कमलसदृश कोमल करों के द्वारा अर्पित जल, नीवार और घास के द्वारा क्रमशः जिन वृक्षों, पक्षियों और मृगों को परिवर्धित किया था उन्हें देख लेने

पर प्रसरण की उत्पत्ति के योग्य मेरे हृदय के द्रव के सदृश कोई विकार उत्पन्न हो रहा है। राम के इस कथन पर वासन्ती कहती है–महाराज मैं कुमार लक्ष्मण को पूछ रही हूँ। वासन्ती के कुशल प्रश्न के वाक्य की मीमांसा करते हुए राम कहते हैं कि यहाँ प्रयुक्त महाराज पद शून्य है केवल लक्ष्मण में आँसुओं के कारण अस्पष्ट अक्षरों से युक्त कुशल शून्य है। इसलिए मैं अनुमान कर रहा हूँ कि ये सीता के वृत्तान्त को जान गयीं और वासन्ती को उत्तर देते हुए कहते हैं कि हाँ, कुमार लक्ष्मण का कुशल है। यह सुनकर वासन्ती रोने लगती है और राम को सम्बोधित करती हुई कहती है–महाराज आप बहुत ही कठोर क्यों हो गये हो ? वासन्ती कहती है कि कहाँ तो आप देवी सीता से कहा करते थे कि तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो। तुम मेरे नेत्रों की चन्द्रिका हो। तुम मेरे शरीर पर अमृत हो, इत्यादि सैकड़ों प्रिय वचनों के द्वारा उसका अनुनय किया करते थे और उन्हीं को अथवा शान्त रहें इसके आगे कहने से क्या लाभ ?[313] यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है। यहाँ वासन्ती के ये वाक्य करुणा की व्यञ्जना करा रहे हैं। राम वासन्ती को आश्वस्त करते हैं। आश्वस्त वासन्ती उनसे पूछती है कि आपने ऐसा अकार्य क्यों किया ? राम का उत्तर है कि लोक सहन नहीं कर रहा था। इसलिए ऐसा किया। वासन्ती राम को उपालम्भ देती हुयी कहती है कि अरे निष्ठुर तुम्हें यश प्रिय है परन्तु इससे अधिक भयंकर अपयश क्या होगा ? मृगनयनी सीता का वन में क्या हुआ है ? हे नाथ ! कहिये आप क्या विचार कर रहे हैं ? हा कष्ट है।[314] राम तो सीता की वियोगव्यथा से वैसे ही व्यथित हैं और ऊपर से वासन्ती के ये उपालम्भ। देवी सीता राम के हृदय को समझती हैं अतः वे वासन्ती को लक्ष्य कर कहती है कि सखि वासन्ती तुम्हीं दारुण और कठोर हो रही हो जो कि इस प्रकार से विलाप करते हुए आर्यपुत्र से प्रलाप करा रही हो। इस पर तमसा टिप्पणी करती हैं कि प्रेम और शोक इस प्रकार कह रहा है।

राम का शोक असीम है। उन्हें यह निश्चय हो चुका है कि सीता की अंगलतिका वन्य हिंस्र जन्तुओं के द्वारा नष्ट कर दी गई है।[315] सीता की उस दशा का स्मरण कर उनका शोक चरम सीमा पर पहुँच जाता है और वे कहते हैं–हा प्रिये जानकि ! तुम कहाँ हो ? इसे सुनकर सीता कहती है कि हे आर्यपुत्र ! यह मैं अपने शरीर को धारण कर रही हूँ। साधारण पुरुष की तरह आर्यपुत्र को मुक्तकण्ठ से रोते हुए देखकर वे अपने को धिक्कारने लगती हैं। इस पर तमसा उन्हें समझाती हैं कि शोक से क्षुभित हृदय को प्रलापों के द्वारा ही धारण किया जा सकता है। तमसा समझाती है कि विशेष रूप से

रामचन्द्र के लिए यह मनुष्य लोक अनेक प्रकार के कष्टों से युक्त है। सावधान मन से इस संसार का विधिपूर्वक पालन करना कर्तव्य है और राम ने उस कर्तव्य का पालन भी किया है परन्तु जिस प्रकार धूप पुष्प को मलिन कर देती है उसी प्रकार प्रिया सीता का शोक राम के जीवन को ग्लानियुक्त कर रहा है। स्वयं त्याग करके विलाप के द्वारा मन बहलाना भी दुर्लभ है, तभी तो अब तक प्राण धारण हो रहा है। इसलिए विलाप जीवन धारण करने के लिए लाभकारी है।[316] पंचवटी में राम की असह्य पीड़ा प्रस्फुटित हो उठी है। पूर्व वृत्त का स्मरण कर उनकी वेदना मुखरित होने लगी है। वे अपने उद्वेग, मोह, दाह और हृदय को छिन्न-भिन्न कर देने वाले दुःख का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हृदय शोक के उद्वेग से विदीर्ण हो रहा है परन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं हो रहा है शोकाभिभूत शरीर मोह धारण कर रहा है, परन्तु चैतन्य को नहीं छोड़ता। अन्तःकरण का सन्ताप शरीर को जला रहा है, परन्तु भस्म नहीं करता। मर्मच्छेदन करने वाला विधाता प्रहार तो कर रहा है, परन्तु जीवन को नष्ट नहीं कर रहा है।[317] वे नागरिकों और ग्रामवासियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि देवि सीता का घर में निवास करना आप लोगों को अभीष्ट नहीं था। अतः उसे शून्य वन में तृण के सदृश त्याग दिया और उस पर शोक भी नहीं किया, परन्तु यहाँ पंचवटी में चिरपरिचित अनेक भाव मेरे हृदय को द्रवित कर रहे हैं। इसलिए मैं असहाय होकर रो रहा हूँ। आप लोग प्रसन्न होवें। यहाँ हम देखते हैं कि राम के जीवन में कितनी करुण विवशता है। जब वासन्ती उन्हें समझाती है कि देव जो कुछ हुआ, वह हुआ, अब आप धैर्य धारण करें। यह सुनकर राम अत्यन्त क्षुब्ध हो उठते हैं और वासन्ती से कहते हैं क्या यह कह रही हो? धैर्य धारण करें। देवि सीता से शून्य संसार का बाहरवाँ वर्ष है। उनका नाम भी लुप्तप्राय हो गया है फिर भी राम जीवित हैं।[318] उधर आर्यपुत्र राम के इन प्रिय वचनों से देवी सीता कहती हैं कि मैं तो मोहित की तरह होकर समय व्यतीत कर रही हूँ। तमसा सीता से कहती हैं कि ये वचन अत्यन्त ही प्रिय, स्नेह से शीतल और शोक से कठोर नहीं है ये तो विषयुक्त मधु की धारायें तुम्हारे ऊपर बह रही है।[319] राम अपने असह्य दुःख को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि सखि वासन्ती अपने हृदय में प्रविष्ट इस तीव्र शोकशंकु को जो कि मेरे मर्मस्थलों को छेद रहा है, क्या मैंने सहन नहीं किया?[320] परन्तु आज मेरे अन्तःकरण का आवेग इन परिचित वस्तुओं को देखकर बढ़ता ही चला जा रहा है। मर्यादा या कगारों को तोड़ देने वाले अन्तस् को मथ देने वाले शोक के परिपाक से उदय शोक का नियन्त्रण करने

के लिए जो जो प्रयत्न किसी प्रकार से किया जा रहा है उस उस प्रयत्न को कोई अनिर्वचनीय चित्त का विकार न रोके जाने वाले वेग से युक्त जलराशि जिस प्रकार बालू के पुल को तोड़कर फैलता है उसी प्रकार मध्य में जाकर और भेदन कर फैल रहा है।[321] राम के इस भयंकर दुःख से सीता भी अत्यधिक खिन्न होती हुई कहती हैं कि आर्यपुत्र के इस असह्य दुःख के संयोग से जीवन को त्याग कर मानो स्वयं के दुःख से रहित सा मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। अत्यधिक सन्तप्त राम के हृदय को वासन्ती दूसरी ओर मोड़ना चाहती है अतएव वह उनसे कहती है कि महाराज अब आप चिरकाल से परिचित दण्डकारण्य के प्रदेशों का अवलोकन करें। वह उन्हें जनस्थान का एक परिचित भाग दिखा कर कहती है कि इसी लता कुञ्ज में आप सीता के मार्ग पर दृष्टि लगाये हुए बैठे हैं। सीता हंसों से कौतुक कर गोदावरी के तट पर बहुत समय तक रुकी रहीं, आती हुई सीता ने आपको खिन्न हृदय सा देखकर कातरता के साथ कमल के मुकुल की तरह सुन्दर प्रणामाञ्जलि को बाँध लिया।[322]

यद्यपि आचार्य धनञ्जय ने इस पद्य को प्रणयमान का उदाहरण बतलाया है परन्तु प्रकृत सन्दर्भ में यह करुणरस के उद्दीपन का कार्य कर रहा है। सीता इस विषय को विधिवत् समझती हैं। अतएव वे वासन्ती को सम्बोधित करती हुयी कहती हैं कि हे वासन्ती ! तुम कठोर हो जो इन हृदय के सन्धि स्थलों से निकाली गई कीलों को संयुक्त कर पुनः पुनः आर्यपुत्र को मुझ अभागिन का स्मरण दिला रही हो। सीता की यह सम्भावना उचित ही प्रमाणित होती है। क्योंकि वासन्ती के कथन को सुनकर राम इतने उद्वेलित हो उठते हैं कि वे सीता को सम्बोधित कर कहने लगते हैं कि अयि कोपने सीते ! इधर-उधर दिखाई दे रही हो परन्तु कृपा क्यों नहीं कर रही हो ? हा देवि मेरा हृदय फट रहा है। शरीर के सन्धिस्थल शिथिल हो रहे हैं। यह सम्पूर्ण जगत् मुझे शून्य सा लग रहा है। मेरा अन्तःकरण निरन्तर ज्वालाओं से जल रहा है। अन्तरात्मा प्रगाढ़ अन्धकार में डूब रही है। मोह ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। मन्दभाग्य वाला मैं क्या करूँ ?[323] यहाँ सीता की स्मृति राम की वेदना को उद्दीप्त कर उन्हें मूर्च्छित कर देती है। सीता उनके ललाट और हृदय को स्पर्श कर उन्हें आश्वस्त करती हैं। सीता के स्पर्श से समुद्भूत आनन्द का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि अमृतमय लेपों के द्वारा भीतर अथवा बाहर के शरीर और धातुओं को लीपते हुए की तरह करता हुआ अचानक ही होने वाला यह स्पर्श पुनः आनन्द को उत्पन्न कर मानो दूसरे प्रकार की मूर्च्छा को उत्पन्न कर रहा है।[324] आनन्द-निमग्न राम नेत्रों को बन्द किये हुए ही सीता की प्राप्ति पर वासन्ती को

बधाई देते हैं। वासन्ती के द्वारा प्रश्न किये जाने पर वे स्पष्ट रूप से कहते हैं, कि सीता फिर से मिल गयी। परन्तु वासन्ती पूछती है कि वह है कहाँ ? तो राम स्पर्श के सुख का अनुभव करते हुए कहते हैं, देखो, वह सामने ही तो है। वह राम के कथन को उन्मादजन्य प्रलाप मानकर और अधिक व्यथित हो उठती है। राम का भी यह सीता के पणिस्पर्श से उत्पन्न सुख क्षणिक ठहरता है क्योंकि सीता शीघ्र अपने हाथ को खींचकर वहाँ से दूर हट जाती हैं। सीता के वहाँ से हट जाने पर राम धिक्कारते हुए कहते हैं कि प्रमाद हो गया। जड़, कम्पनयुक्त पसीजता हुआ सीता का वह पल्लवसदृश पाणि, जड़, काँपते हुए और पसीजते हुए मेरे हाथ से सहसा ही छुट गया।[325]

यहाँ राम और सीता के परस्पर स्पर्श से उत्पन्न स्तम्भ सात्त्विक भाव और जड़ता नामक व्यभिचारिभाव के वर्णन से परिपुष्ट स्थायिभाव रति शृंगार की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। अतएव यहाँ शृंगार रस ध्वनि की स्थिति है।

राम से पृथक् हुयी सीता भी अपने को धिक्कारती हुयी कहती है कि अत्यधिक वेदना से युक्त अपने को अभी तक नहीं स्थिर कर पा रही हूँ। तमसा स्नेह, कौतूहल और स्मित के साथ सीता को देखकर कहती है कि वत्सला सीता प्रियतम राम के स्पर्श के सुख से प्रकम्पित और नूतन जल से सिञ्चित विकसित कलिकाओं से युक्त कदम्ब वृक्ष की शाखा के सदृश स्वेद, रोमाञ्च और कम्प वाले अंगों से युक्त हो गई है।[326]

राम चारों ओर देखते हैं परन्तु जब उन्हें सीता नहीं दिखाई देती है तो वे कहने लगते हैं कि हाय, क्या नहीं ही है। खिन्न होकर वे पुकारने लगते हैं देवि सीते ! तुम कहाँ हो ? मुझ पर दया करो। तुम्हें इस दशा में मेरा परित्याग नहीं करना चाहिये। उधर राम की इस स्थिति को देखकर सीता कहती हैं कि मैं वस्तुतः निर्दयी हूँ जो कि इस तरह से दुःखित आपको देखती हुयी भी जी रही हूँ। जब राम को यह विधिवत् ज्ञात हो जाता है कि सीता वहाँ नहीं हैं तो वे कहने लगते हैं कि सीता यहाँ नहीं हैं; नहीं तो उन्हें वासन्ती भी कैसे न देखती ? क्या यह स्वप्न है ? मैं सोया भी नहीं हूँ। राम को निद्रा कहाँ ? सभी प्रकार से ऐश्वर्यसम्पन्न और चिन्ता से परिकल्पित वह विप्रलम्भ ही मेरा पुनः अनुसरण कर रहा है। वासन्ती के द्वारा पूर्ववृत्त सीताहरण के वर्णित किये जाने पर राम वेग के साथ उठकर कहने लगते हैं—अरे पापी पिता जटायु के प्राण और सीता का अपहरण करने वाला रावण तू कहाँ जायेगा ? इस पर उन्हें वासन्ती आश्वस्त करती हुई कहती है कि रावण का तो आपने पहले ही विनाश कर दिया था। क्या वह अभी

तक आपके क्रोध का विषय है। इस पर खिन्न राम अत्यधिक विषाद का अनुभव करते हुए कहते है कि उपायों के रहने से निरन्तर मनोविनोद के सम्बन्धों से युक्त और वीरों के युद्ध से संसार में अत्यधिक अद्‌भुत रस को उत्पन्न कर देने वाला सीता का वह वियोग शत्रुवध पर्यन्त रहने वाला था, परन्तु कठोर और चुपचाप सहन करने के योग्य सीता का यह वियोग अवधिरहित है।[327] कष्ट की तीव्र अनुभूति करते हुए वे कहते हैं कि हे प्रिये ! जहाँ मेरी सुग्रीव के साथ की गई मित्रता व्यर्थ है। वानरों का शौर्य भी निरर्थक है। जाम्बवान् की बुद्धि भी समर्थ नहीं है। हनूमान् की भी गति नहीं है जहाँ विश्वकर्मा के पुत्र नल भी मार्ग निर्माण करने में समर्थ नहीं हैं। मेरे और लक्ष्मण के भी वाणों के अविषयभूत तुम ऐसे किस स्थान में विद्यमान हो ?[328] वे वासन्ती को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि सखि वासन्ती इस समय राम का दर्शन मित्रों के सुख के लिए ही है। इसलिए मुझे जाने के लिए आज्ञा कीजिये। राम के इस कथन को सुनकर सीता उद्वेग और मोह के साथ तमसा का आलिङ्गन कर कहती है—हा भगवति तमसे ! सम्प्रति आर्यपुत्र जा रहे हैं। अब मैं क्या करूँगी ? यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है। तमसा उन्हें आश्वस्त करती है। वे तमसा से निवेदन करती हैं कि भगवति कृपा करें ताकि दुर्लभ दर्शन वाले आर्यपुत्र को क्षणभर भी देख लूँ। इसी मध्य राम यह कहते हैं कि इस समय तो अश्वमेध यज्ञ की मेरी सहधर्मचारिणी है जिस पर सीता आक्षेपपूर्वक कहती हैं वह कौन है ? वासन्ती राम से कहती है क्या विवाह भी कर लिया ? राम कहते हैं नहीं, नहीं स्वर्णनिर्मित सीता की मूर्ति। राम के इस कथन से सीता को अत्यधिक आनन्द होता है और वे उच्छ्वास के साथ आँसुओं को भरकर कहती हैं। आर्यपुत्र आप सचमुच आर्यपुत्र हैं। यहाँ आर्यपुत्र ने इस समय मेरे परित्याग रूपी शल्य को उखाड़ डाला। राम कहते हैं कि अब तो उस सीता की मूर्ति में भी अश्रु परिपूर्ण नेत्रों को बहलाऊँगा। यहाँ राम का कथन सीता के दुःख का परिमार्जन कर देता है और सीता को यह स्पष्ट हो जाता है कि राम वस्तुतः हृदय से सीता से प्रेम करते हैं। उन्होंने प्रजापालन रूपी कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर ही उनका परित्याग किया है। इस प्रकार राम का शुद्ध अन्तस् सीता के हृदय को अत्यधिक प्रभावित करता है। इस अंक में महाकवि भवभूति की नैसर्गिकी प्रतिभा ने सीता को राम के लिए अदृश्य रखकर राम सीता के विचित्र मिलन को करा दिया। इस विचित्र शृंगार एवं करुण की स्थिति सामान्यतया देखने पर कुछ सन्दिग्ध तो लगती है और इसी अंक के आधार पर कतिपय विद्वान् करुण को अङ्गीरस मानते हैं।

चतुर्थ अङ्क में भी करुण के दर्शन होते हैं। अङ्क के प्रारम्भ में ही राजा जनक का शोक दृष्टिगत होता है। दण्डायन उनके शोक की ओर संकेत करते हैं। पराक् सान्तपन आदि कठिन तपस्याओं के द्वारा वे अपने शरीर को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका यह प्रयत्न शोक का अनुभव है। इतने वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी उनका दुःख संवेग सीता की स्मृति से नवीन सा होकर बढ़ता ही जा रहा है। वे भगवती वसुन्धरा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–अयि मातर्देवयजनसंभवे, ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतः। येन लज्जया, स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितुं न शक्यते। यहाँ उनका दैन्य एवं शोक अभिव्यक्त-हो रहा है। वे पुत्री सीता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि कारण के बिना भी रोने और हँसने वाले कलियों के अग्रभाग के सदृश कतिपय दाँतों से सुशोभित लड़खड़ाते हुए असम्बद्ध और सुन्दर वचनों से युक्त शैशवावस्था के तुम्हारे मुखमण्डल का स्मरण कर रहा हूँ।[329] यहाँ जनक की यह उक्ति वात्सल्य का उद्रेक करती हुयी करुण को ही पुष्ट कर रही है। जनक और कौशल्या का मिलन भी करुणा से ओत-प्रोत है। कौशल्या के निर्वेद, विषाद, स्मृति, चिन्ता, मूर्च्छा आदि के द्वारा करुण की व्यञ्जना होती है। कौशल्या के दर्शन से जनक का दुःख और भी असह्य हो उठता है। पुत्री के असामान्य दुःख जनक में कहीं-कहीं अनर्थ और उपालम्भ को ला देता है, परन्तु उसके मूल में भी करुणा ही है। अपने प्रिय मित्र महाराज दशरथ और सुता वत्सला सीता की स्मृति से उन्हें अपने जीवन के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है।[330] वन में छोड़ी गयी असहाय सीता के करुणा से ओत-प्रोत हृदय द्रावक चित्र को राजा जनक इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। अयि पुत्री सीते चारों ओर व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओं के व्याप्त होने पर संत्रस्त होकर तुमने पति द्वारा परित्याग रूप तिरस्कार, भयंकर वन और प्रसवकाल में होने वाली वेदना को पाकर मुझे रक्षक समझकर निश्चय ही पुनः पुनः स्मरण किया होगा।[331] यहाँ तो ऐसा लग रहा है मानो मार्मिक करुण रस ने वात्सल्य को अपने क्रोड में ले लिया हो।

पंचम अङ्क में यद्यपि लव और चन्द्रकेतु के संवाद में वीररस की निष्पत्ति मिलती है तथापि यत्र-तत्र करुण रस की भी व्यञ्जना देखने को मिलती है। महाराज दशरथ के साथ ही वयोवृद्ध सुमन्त्र लव को ध्यानपूर्वक देखकर न जाने क्या सोचकर नेत्रों में आँसू भरकर कहते हैं–हृदय तू अन्यथा क्यों चंचल हो रहा था। उसका तो भाग्य ने पहले ही अपहरण कर लिया। लता को पहले से काट देने पर फल की उत्पत्ति कहाँ से होगी ?[332] चन्द्रकेतु का यह प्रश्न करुण की निष्पत्ति कर रहा है कि कुल में ज्येष्ठ पूज्य रामचन्द्र

के सन्तानहीन होने पर हमारे कुल की क्या प्रतिष्ठा है ? इसी दुःख से हमारे और तीन पिता भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सन्ताप का अनुभव कर रहे हैं।[333] षष्ठ अंक के प्रारम्भ में ही लव को देखकर राम का हृदय स्नेह से परिपूर्ण हो जाता है। राम का यह स्नेह सहज ही करुण में परिवर्तित हो जाता है। कुश और लव के मुग्ध मुखमण्डल पर सीता की आभा को देखकर[334] राम को सीता का स्मरण हो जाता है और उनके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। कुश सीता के वियोग से व्यथित राम के दुःख का अनुमान कर लेता है। अतः वह लव से कहता है कि अयि वत्स महारानी सीता के बिना रामचन्द्र को कौन सा पदार्थ दुःखदायी नहीं है ? क्योंकि प्रिया के नष्ट हो जाने पर सम्पूर्ण संसार जीर्ण अरण्य के सदृश हो जाता है वह प्रेम उस परिणाम का था। यह विरह अवधिशून्य है।[335] कुश के इस कथन से राम अपने हृदय के आवेश को सँभाल नहीं पाते और उनके नेत्रों में आँसू भर आते हैं। उन्हें इसका दुःख है कि उनकी असह्य पीड़ा ने उन्हें एक बालक का दयापात्र बना दिया। अतः वे विषय परिवर्तन की इच्छा से लव कुश से कहते हैं कि मैं रामायण का कुछ अंश सुनना चाहता हूँ। इस पर उन्हें रामायण का प्रसंग सुनाते हुए कुश कहता है कि प्रिया सीता पिता जनक के द्वारा दी गई राम की पत्नी थी इसलिए शील और सौन्दर्यादि गुणों से भी सीता में प्रीति और भी बढ़ गयी थी। उसी प्रकार से राम सीता को प्राणों से अधिक प्रिय थे परन्तु पारस्परिक प्रेम सम्बन्धों को तो केवल हृदय ही जान सकता है।[336] यहाँ यद्यपि राम अपना ध्यान सीता से दूसरी ओर हटाने के विचार से रामायण का कुछ अंश सुनना चाह रहे थे, परन्तु संयोग से कुछ ऐसे अंशों को उद्धृत कर देता है कि उनकी वियोग बेदना को और अधिक उद्दीप्त करने लगता है, जिससे उन्हें उन दिनों का स्मरण हो जाता है जब वे प्रिया सीता के साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे। उसका स्मरण करते हुए कहते हैं कि अत्यधिक विश्वास से प्रवृद्ध वह अपरिमेय आनन्द कहाँ ? अथवा परस्पर का वह प्रेम कहाँ ? अगाध पीड़ा का अनुराग कहाँ ? सुख में अथवा दुःख में दोनों हृदयों की वह एकता कहाँ ? तथापि पापपूर्ण यह प्राणवायु चल रहा है नष्ट नहीं होता।[337]

सीता की स्मृति से उसके सहस्रों गुण उनके मस्तिष्क में उमड़ने लगते हैं और उन्हें उस स्निग्ध जीवन की स्मृति झकझोर देती है। इसी समय लव उन्हें चित्रकूट पर्वत के मार्ग में मन्दाकिनी विहार के प्रसंग का स्मरण करा देते हैं, जिससे राम की पीडा और अधिक बढ़ जाती है। वे शोक सागर में निमज्जित होते हुए कहते हैं, कि प्रियजन के प्रवासकाल में बहुत समय तक

बार-बार ध्यान करके कल्पना से रचना कर सामने स्थापित किये गये की तरह होकर प्रियजन सान्त्वना करता है। परन्तु पत्नी के लोकान्तरित हो जाने पर संसार वृक्षादि से रहित हो जाने पर जीर्ण अरण्य के समान हो जाता है और तत्पश्चात् हृदय तुषानल की राशि में मानों स्वयं दग्ध होने लगता है।[338]

सप्तम अङ्क में भी राम और सीता के मिलन से पूर्व करुण रस के दर्शन होते हैं। गर्भाङ्क की प्रस्तावना में नेपथ्य से सुनाई देने वाला सीता का मार्मिक विलाप करुण रस से ओत-प्रोत है। इससे राम का शोक और बढ़ जाता है। अपने समक्ष भगवती वसुन्धरा और भागीरथी के द्वारा सुस्थिर की की गई मूर्च्छित सीता को देखकर राम के नेत्रों में आँसू आ जाते हैं और वे लक्ष्मण का सहारा लेते हैं। भगवती वसुन्धरा के प्रत्येक वाक्य से राम के हृदय में तीव्र करुणा उत्पन्न होती है। विलाप करती हुयी सीता जब पृथ्वी से करबद्ध प्रार्थना करती है—हे माँ ! मुझे अपनी गोद में लीन कर लो और अपने नवजात शिशुओं को देखकर कहती हैं कि मैं अनाथ हूँ। मुझे इन पुत्रों से क्या लेना ? इस स्थिति में राम का विषाद असह्य हो जाता है। सीता का यह प्रश्न कि इन दोनों अनाथ बालकों का क्षत्रियोचित संस्कार कौन करेगा ? राम के हृदय में शूल सा चुभो देता है। जब भगवती वसुन्धरा और भागीरथी के साथ सीता चली जाती हैं तो राम "कथं वैदह्या विलय एवं सम्पन्नम्" कहते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। इस प्रकार इस अंक में भी मार्मिक करुणा के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तरामचरित नाटक के प्रथम अंक से प्रवाहित होने वाली करुणरस की धारा अविच्छिन्न रूप से सप्तम अंक तक बहती है। इस प्रकार करुणरस से ओत-प्रोत इस नाटक में कतिपय आचार्य करुण को ही अंगीरस मान लेते हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए वे "एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्।"[339] कवि की इस उक्ति को प्रस्तुत कर यह तर्क देते हैं कि 'महाकवि भवभूति' ने करुण रस को ही सभी रसों का हेतु माना है और इसलिए उन्होंने अपने नाटक में इसे अङ्गीरस के रूप में उपन्यस्त किया है। परन्तु यहाँ विचारणीय है कि सप्तम अंक में कवि सहसा ही राम और सीता का मिलन करा देता है। इस स्थिति में करुणरस इस नाटक का अङ्गीरस नहीं बन पाता। क्योंकि करुणरस में नायक अथवा नायिका का आत्यन्तिक वियोग अनिवार्य है और यह तभी संभव है, जब कि दो में से एक की मृत्यु हो जाये और पुनर्मिलन की सम्भावना ही न रह जाये। करुणरस के लक्षण में कविराज विश्वनाथ लिखते हैं कि इष्ट के नाश से अनिष्ट की

प्राप्ति होने पर करुणरस होता है।[340] इस दृष्टि से विचार करने पर उत्तर-रामचरित में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक राम का करुण विलाप सार्थक है। क्योंकि उन्हें ऐसा विश्वास है कि उनकी प्रियतमा सीता की अंगलतिका वन में हिस्र पशुओं के द्वारा विनष्ट कर दी गयी है। नाटक के कतिपय अन्य पात्र भी इसी आधार पर शोक करते हैं। यद्यपि राम आदि नाटक के पात्र सीता को विनष्ट समझकर पुनर्मिलन के विश्वास को समाप्त कर देते हैं। परन्तु चतुर कवि ने इस विषय में सामाजिकों को भ्रान्त नहीं किया। नाटक के प्रथम अंक में सीता का निर्वासन होता है अतएव जो सामाजिक सीता के विषय में प्रथम अंक के अन्त में निराश हो गया था। वह द्वितीय अङ्क के विष्कम्भक में भी आत्रेयी के द्वारा सीता के कुश लव नामक पुत्रों का परिचय प्राप्त कर इस विषय में पूर्ण आश्वस्त हो जाता है कि राम के द्वारा निर्वासित सीता जीवित हैं और वही सामाजिक तृतीय अंक में विष्कम्भक की समाप्ति के पश्चात् उनका दर्शन भी प्राप्त कर लेता है। यही नहीं इस अंक में देवी सीता का पाणिस्पर्श राम की मूर्च्छा को दूर करने में समर्थ होता है। अतएव सामाजिक की दृष्टि में राम का निरवधि वियोग अस्थायी बन जाता है और इस स्थिति में सामाजिकों के लिए उनका शोक स्थायी भाव न रहकर विप्रलम्भ श्रृंगार के रूप में परिवर्तित हो जाता है क्योंकि रस का अनुभविता राम न होकर सहृदय सामाजिक जन हैं। जिनकी दृष्टि में सीता जीवित हैं। अतः नायक रामगत शोक उसका स्थायिभाव नहीं बन पाता। इस स्थिति में सहृदय सामाजिक में करुण विप्रलम्भ श्रृंगार की नींव सुदृढ़ होने लगती है। करुण विप्रलम्भ श्रृंगार का लक्षण कविराज विश्वनाथ ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः॥

अर्थात् नायक और नायिका में से एक के पुनः लभ्य रहते हुए भी परलोक चले जाने पर जब दूसरा विनायमान होता है तो करुण विप्रलम्भ श्रृंगार होता है।

उत्तररामचरित नाटक में राम और सीता में से सीता का लोकान्तर-गमन पुनर्लभ्य नहीं है अतः सीता की प्राप्तिपर्यन्त राम में तो करुणरस की स्थिति रहती है। परन्तु सहृदय सामाजिक की दृष्टि में सीता का परलोक-गमन पुनर्लभ्य से रहित नहीं है। क्योंकि उसकी दृष्टि में राम का निरवधि वियोग अस्थायी बन जाता है और तब उनका शोक भी स्थायिभाव न रह

कर विप्रलम्भ श्रृंगार का ही अंग बन जाता है और इस प्रकार हम देखते हैं कि 'महाकवि भवभूति' ने अपने सम्पूर्ण नाटकों में करुणरस की प्रधानता रखी है परन्तु अन्त में राम और सीता का मिलन दिखाकर सहसा-ही करुण रस को श्रृंगार में पर्यवसित कर दिया और इस प्रकार "एक एव भवेदङ्गी श्रृंगारो वीर एव वा" इस शास्त्रीय मर्यादा के अतिक्रमण के अपराध से स्वयं को मुक्तकर लिया है ।

जो कतिपय आचार्य 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्' इस श्लोक के आधार पर 'उत्तररामचरित' नाटक में करुणरस की प्रधानता प्रतिपादित करते हैं, वह समीचीन नहीं हैं । क्योंकि करुणरस अन्य रसों का कारण है यह बात न तो किसी समीक्षाशास्त्री ने कही है और न ही महाकवि भवभूति कहीं भी इसकी चर्चा करते हैं । दृष्टान्त के रूप में विवर्त के स्थान पर जो विकार शब्द प्रयुक्त हुआ है, यदि उसी के अर्थ में विवर्त को ले लिया जाये तो उसका अर्थ यह होगा कि विभिन्न मनोविकार करुणरस के निमित्त भेद से उत्पन्न होते है जो कि उचित है । इसके अतिरिक्त एक बात और है कि कवि यहाँ यह नहीं कह रहा है कि इन मनोविकारों को करुण ही जन्म देता है । प्रत्युत उसका कथन यह है कि उन सबका आश्रय करता है । नाटक के तृतीय अङ्क के प्रसंग को देखने पर इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट होता है–नाटक के तृतीय अङ्क में भगवती भागीरथी के अनुग्रह से सीता को वह दिव्य शक्ति प्राप्त हो जाती है कि उन्हें राम देख नहीं पाते और वे उनके पास पहुँचकर उनका स्पर्श कर उनकी मूर्च्छा को दूर कर देती हैं । इधर वासन्ती राम को उनकी सीता साहचर्यकालिक अनेकानेक उद्दीपनों को दिखलाती है, जिनका राम पर गहरा प्रभाव पड़ता है । इसी संविधानिक को लक्ष्य कर तमसा अङ्क के अन्त में कहती है–"एको रसः करुण एव......।" इसके निमित्त भेद का दर्शन दण्डकारण्य एवं पंचवटी का दर्शन, सीता के पाणिपल्लव का मनोज्ञ स्पर्श, दर्शन द्वारा परिपालित गजराज दर्शन और उसकी कान्तानुवृत्ति चतुरता, सीता के द्वारा परिपालित सपत्नीक दर्शन ततश्च शिलातल दर्शन, वासन्ती के द्वारा विभिन्न पुरातन स्मृतियों का जागरण और राम का उपालम्भ, प्राचीन लतामण्डप का वैशिष्ट्य प्रतिपादन, इन समस्त दृश्यों में होते हैं । ये ही वे निमित्त हैं, जिनके भेद के कारण महाकवि भवभूति ने भिन्न-भिन्न विवर्तों के आश्रय की चर्चा की है । इन सभी प्रसंगों में 'एको रसः करुण एव' पूर्णतया चरितार्थ हुआ है । यहाँ करुण एवं रस शब्दों का प्रयोग कवि ने काव्यशास्त्रीय अर्थों में नहीं किया है क्योंकि ऐसा करने पर स्वशब्दवाच्यत्व नामक रस दोष की स्थिति हो जायेगी ।[341] वस्तुतः यहाँ रस शब्द

का अर्थ स्वाद है। इसी प्रकार करुण शब्द का अर्थ भी करुणा से युक्त है। 'करुणा अस्ति अस्मिन् इति करुणः' न कि करुण रस। क्योंकि करुण रस में तो इष्ट के विनाश से शोक की उत्पत्ति होती है जबकि यहाँ इष्ट विनाश-बोधजन्य शोक का सर्वथा अभाव है। यद्यपि राम का शोक स्थायित्व लिए रहता है, परन्तु रसानुभूति सामाजिक को होती है न कि रामादि या नटादि को। यहाँ जिन सामाजिकों को रसानुभूति हो रही है उन्हें यह विधिवत् विदित है कि देवताओं और ऋषियों के प्रसाद से देवी सीता सकुशल हैं। इसके अतिरिक्त नाटक में कतिपय स्थलों पर यह संकेत भी कर दिया गया है कि इस नाटक की पर्यवसिति सुखद रूप में होगी। कवि का यह वाक्य 'सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति' यह मंगलवाक्य नाटक की सुखद परिणति का संसूचक है। अतएव यहाँ शोक स्थायी भावात्मक करुणरस की प्रधानता मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वस्तुतः यहाँ करुण विप्रलम्भ श्रृंगार की ही स्थिति है। यदि यहाँ 'एको रसः करुण' का अर्थ रसपरक ही करना है तो यह पद करुण विप्रलम्भ श्रृंगार का ही व्यञ्जक होगा। क्योंकि करुण विप्रलम्भ श्रृंगार ही करुणादि रसों का जन्मदाता हो रहा है। यदि राम सीता का परित्याग न करते तो उनके हृदय में विप्रलम्भ (करुण विप्रलम्भ) की जाग्रति न करते तो उनके हृदय में और यदि वे विविध प्रकार के विलाप न करते तो उनके विविध प्रकार के शोकों के अभाव में करुण रस की स्थिति कहाँ होती ? इस प्रकार इस नाटक में करुण विप्रलम्भ श्रृंगार ही अङ्गीरस के रूप में ठहरता है। इसके अतिरिक्त यह श्लोक मात्र तृतीय अंक को ही लक्षित कर रहा है न कि सम्पूर्ण उत्तररामचरित को। इस प्रकार सूक्ष्म पर्यालोचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तररामचरित का अङ्गीरस करुण विप्रलम्भ श्रृंगार ही है।

करुण विप्रलम्भ श्रृंगार रस

उत्तररामचरित नाटक में करुण विप्रलम्भ श्रृंगार को अङ्गीरस के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। राम प्रजानुरंजन के लिए सती साध्वी प्रिया सीता का निर्वासन कर देते हैं। परन्तु सीता का यह परित्याग राम के लिए अत्यधिक कष्टकारक होता है। प्रियतमा सीता की स्मृति राम के हृदय को झकझोर देती है। वे दण्डकारण्य में पहुँचकर प्रिया सीता के साथ व्यतीत किये गये अतीत के दिनों का स्मरण कर खिन्न हो उठते हैं। दण्डकारण्य में राम शम्बूक से कहते हैं कि मैं खवर नामक राक्षस के पुरातन निवास जनस्थान को देख रहा हूँ और पहले के वृत्तान्तों का प्रत्यक्ष सा अनुभव कर रहा हूँ।

जनस्थान को देखकर वे सहसा सीता का स्मरण कर कहने लगते हैं कि सीता को वन बहुत प्रिय था । ये महावन हैं । इनसे अधिक भयानक क्या होगा ? वे नेत्रों में आँसू भरकर स्मरण करने लगते हैं कि सीता का स्वाभाविक प्रेम अनुपमेय था । प्रीतिसिक्त हृदय सीता यह कहा करती थीं कि आपके साथ पुष्परसों के गन्धों से युक्त वनों में निवास करूँगी और यह कहकर सीता इन वनों में भी प्रसन्न रहा करती थी । उसका वह अनिर्वचनीय प्रेम था ।[343] जो मनुष्य जिसका जितना प्रिय होता है वह कुछ भी न करता हुआ सान्निध्य मात्र से समुद्भूत सुखों के द्वारा दुःखों को नष्ट करता रहता है । इसलिए वह उसका अनिर्वचनीय पदार्थ है ।[344] यहाँ कवि ने सीता के मुग्ध विशुद्ध प्रेम परिपूर्ण हृदय का चित्र खींचा है । राम सीता के उस अनिर्वचनीय प्रेम का स्मरण कर रहे हैं । विरही राम सम्प्रति सीता के सामीप्य मात्र से पूर्वानुभूत सुखों का वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार कवि यहाँ अत्यन्त कुशलता के साथ विप्रलम्भ रति का चित्रण कर रहा है । पुरातन दृश्यों में रम रहे राम सीता की अनुपस्थिति से विह्वल हो जाते हैं । अतएव सीता वियोगी राम का पुरातन शोक भी उस समय उन्हें नवीन के सदृश विकल करने लगता है ।[345] पंचवटी के प्रति अपने आकर्षण पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि जिस पंचवटी में मैंने देवी सीता के साथ अपने गृह के सदृश उन दिवसों को व्यतीत किया था, निरन्तर जिस पंचवटी विषयक बड़ी-बड़ी कथाओं से ही हम लोग अयोध्या में रहा करते थे, इस समय प्रियतमा सीता को नष्ट कर देने वाला अकेला पापी राम उसी पंचवटी को कैसे देखे अथवा अनादर करके किस प्रकार चला जाये ?[346] यहाँ राम का यह मार्मिक कथन करुण विप्रलम्भ रति को पुष्ट कर रहा है ।

तृतीय अङ्क में करुण मूर्ति जानकी शरीरिणी विरहव्यथा के रूप में प्रस्तुत होकर सामाजिकों को करुण विप्रलम्भ की अनुभूति कराती हैं । राम की मूर्च्छा भी इसी रस को पुष्ट करती है । इस अङ्क में कवि ने अत्यधिक प्रभावी ढंग से करुण विप्रलम्भ की विविध भंगिमाओं को महीयसी प्रतिभा के बल से विविध प्रकारों से समुन्मीलित किया है । कवि के द्वारा प्रस्तुत प्रायः समस्त प्रसंग सहृदय हृदयहारी बन पड़े हैं । राम को देखकर सीता कहती हैं, अकारण परित्याग करने वाले इनके इस प्रकार के दर्शन से मेरे हृदय की कैसी अवस्था हो रही है ? यह मैं नहीं जान रही हूँ ।[347] राम की भी पीड़ा असीम है । सीता की करुणदशा को सोचते हुए उनका विषाद चरमसीमा पर पहुँच जाता है और वे विलाप करने लगते हैं । वे वासन्ती के द्वारा समझाये जाने पर भी धैर्य नहीं रख पाते और कहते हैं, अयि वासन्ती ! मेरे

हृदय में धँसे हुए तीव्र शोकशंकु को जो मेरे मर्मस्थलों को छेद रहा है, क्या मैंने सहन नहीं किया ? षष्ठ अङ्क में राम लव कुश के मुखमण्डल पर सीता की कान्ति को देखकर उनकी स्मृति से व्यथित हो उठते हैं। बालक कुश राम के दुःख के कारण का अनुमान कर लेता है।[348] जब राम रामायण के कुछ अंश को सुनने के लिए कहते हैं तो कुश ऐसे अंश को उद्धृत कर देते हैं जिससे राम की विरहवेदना और उद्दीप्त हो उठती है। कुश के कथन की स्मृति से राम के मस्तिष्क में सीता के सहस्रों गुण उमड़ने लगते हैं और उन्हें अपने जीवन पर पश्चात्ताप होने लगता है। पतिव्रता पत्नी सीता के वियोग में उन्हें सारा संसार जीर्ण अरण्य के समान लगने लगता है और उनका हृदय मानों तुषानल की राशि में दग्ध होने लगता है। इसी प्रकार सप्तम अङ्क में भी सहृदय सामाजिक करुण विप्रलम्भ की अनुभूति करता है। गर्भाङ्क की प्रस्तावना में सीता के करुण विलाप को सुनकर राम का शोक और अधिक बढ़ जाता है। यहाँ राम का विषाद असह्य हो जाता है। यह सप्तम अंक ही इस नाटक को करुण से करुण विप्रलम्भ शृंगार की ओर मोड़ देता है, क्योंकि इसमें राम और सीता का मिलन हो जाता है। इस प्रकार करुण इस नाटक का अङ्गीरस न होकर करुण विप्रलम्भ शृंगार रस ही अङ्गीरस के रूप में प्रतिष्ठित होता है। यद्यपि कवि ने इस नाटक में शृंगार रस के विप्रलम्भ और सम्भोग दोनों का ही सहज संयोजन किया है परन्तु प्रधानता विप्रलम्भ की ही है। महाराज भोज ने करुण शृंगार के बारह भेद किये हैं—

(१) देवाश्रय, (२) पौरुषाश्रय, (३) देशाश्रय, (४) कालाश्रय, (५) स्वरूपाश्रय, (६) परिमाणाश्रय, (७) प्रमाणाश्रय, (८) अनुरागाश्रय, (९) सम्भोगाश्रय, (१०) विप्रलम्भाश्रय, (११) नायकाश्रय और (१२) नायिकाश्रय।

उत्तररामचरित नाटक में इन सभी के उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं—

१. देवाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।"[349]

यहाँ 'कथं मन्दभाग्यः करोमि' में 'देवाश्रय' प्रकट हो रहा है।

२. पौरुषाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"उपायानां भावादविरलविनोदव्यतिकरै–
विमर्दैर्वीराणां जनितजगदत्यद्भुतरसः।

वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्
कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः ।।"[350]

यहाँ 'कटुस्तूष्णीं' इस पदोच्चय के द्वारा पौरुषाश्रयता प्रकट हो रही है।

३. देशाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"अस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।
एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं
पापः पंचवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा ।।[351]

यहाँ कवि ने 'पंचवटीं' में रामाश्रित करुण शृंगार को प्रस्तुत किया है।

४. कालाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृत्मन्दमन्दाकिनी
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति ।
अंकुकुमकलंकितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम् ।।"[352]

यहाँ तत्समयविश्रम्भातिप्रसंग शब्द के द्वारा करुण शृंगार की कालाश्रयता व्यक्त हो रही है।

५. स्वरूपाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थातु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नाहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तात्प्राप्यते।"[353]

यहाँ स्वरूपाश्रय करुण शृंगार की स्थिति है।

६. परिमाणाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"परां कोटिं स्नेहे परिचयविकासादधिगते-
रहो विस्रब्धाया अपि सहजलज्जाजडदृशः।
मयैवादौ ज्ञातः करतलपरामर्शकलया
द्विधागर्भग्रन्थिस्तदनु दिवसैः कैरपि तया ।।"[354]

यह परिमाणाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण है।

७. प्रमाणाश्रय करुण शृंगार का उदाहरण

"स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव
सञ्जीवनश्च मनसः परितोषणश्च।

सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति ।"[355]

यहाँ प्रमाणाश्रय करुण श्रृंगार की स्थिति है ।

८. अनुरागाश्रय करुण श्रृंगार का उदाहरण

"क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः
क्व वाऽन्योन्यप्रेम ? क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः ।
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो-
स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति ।"[556]

यहाँ क्व वाऽन्योन्यप्रेम तथा क्व न खलु तदैक्यं हृदययोः इत्यादि पदोच्चय अनुरागाश्रय करुण रस की अभिव्यक्ति कर रहा है ।

९. सम्भोगाश्रय करुण श्रृंगार का उदाहरण

"तदा किञ्चित्किञ्चित्कृतपदमहोभिः कतिपयै-
स्तदेतद्विस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगदृशः ।
वयः स्नेहाकूतव्यतिकरघनो यत्र मदनः
प्रगल्भव्यापारः स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि ।"[357]

यहाँ सम्भोगाश्रय करुण श्रृंगार की स्थिति है ।

१०. विप्रलम्भाश्रय करुण श्रृंगार का उदाहरण

"वे लोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः ।
हित्वा भित्त्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ।"[358]

यहाँ विप्रलम्भाश्रय करुण श्रृंगार की स्थिति है ।

११. नायकाश्रय करुण श्रृंगार का उदाहरण

"इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति ।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ-
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम् ।"[359]

यहाँ 'स्वयं कृत्वा त्याग, के द्वारा नायकाश्रय करुण श्रृंगार की व्यंजना हो रही है ।

१२. नायिकाश्रय करुण श्रृंगार का उदाहरण

**"परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।"**[360]

यहाँ नायिकाश्रय करुण श्रृंगार की व्यञ्जना हो रही है ।

(आ) अंग रस

(क) सम्भोग श्रृंगार

महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक में सम्भोग श्रृंगार की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है । उत्तररामचरित का श्रृंगार उत्तम कोटि का है । इसमें राम और सीता दिव्य दम्पति के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । इसका श्रृंगार रस दाम्पत्य प्रेम के उच्चतम आदर्श को प्रस्तुत करता है । नाटक के प्रारम्भ में ही नायक और नायिका का अन्योन्यानुराग प्रस्तुत होता है । राम सीता के साथ अतीत की स्मृतियों के साथ आह्लाद का अनुभव करते हैं । सीता का कोमल स्पर्श राम को अनिवर्चनीय आनन्द प्रदान करता है । परिश्रान्ता सीता जब नींद का अनुभव करने लगती हैं तो राम उनसे कहते हैं कि यहीं शयन करने के लिए गाढ़भाव से मेरा सहारा लो । वे सीता से कहते हैं कि भय और परिश्रम के कारण स्वेद बिन्दुओं से परिपूर्ण चन्द्र किरणों के स्पर्श से पिघलने वाले चन्द्रकान्तमणियों की माला की तरह विलास वाले और मुझे जीवित करते हुए की तरह अपने बाहु को मेरे गले में डाल दो ।[361] और वैसा ही कराते हुए सानन्द होकर कहने लगते हैं— प्रिये यह क्या है ? तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श से इन्द्रिय समूह को मूढ कर देने वाला विकार मेरे चैतन्य को कभी भ्रान्त कर देता है और कभी प्रकाशित कर देता है । अतएव यह विकार सुख है अथवा दुःख है, मूर्च्छा है या निद्रा, विष का प्रसार है अथवा मद है । यह निश्चय नहीं किया जा सकता है ।[362] हे कमलनयने सीते तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाये हुए जीवन कुसुम को विकसित कर देने वाले, विधिवत् तृप्त कर देने वाले, सभी इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले कानों के लिए अमृत स्वरूप और हृदय के लिए पौष्टिक रसायन के सदृश हैं ।[363]

यहाँ सीता आश्रय हैं और राम आलम्बन । सीता की उक्तियाँ एवं चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं । सीता की चेष्टाओं से राम का स्तम्भित हो जाना, रोमाञ्चित हो जाना, सीता की बाहु को अपने गले में डलवाना आदि अनुभाव हैं । जडता, हर्ष, मोह, औत्सुक्य आदि व्यभिचारिभाव हैं । इन सबसे अभिव्यक्त होकर रतिभाव श्रृंगार रस के रूप में परिणत हो रहा है ।

जब सीता शयन के लिए इधर-उधर उपधान को खोजती हैं तो राम उपधान के लिए अपने बाहु को प्रस्तुत कर देते हैं। सीता राम के वक्षःस्थल पर ही अपने मस्तक को रखकर सो जाती हैं। राम उन्हें स्नेहिल दृष्टि से देखकर भावसागर में निमग्न हो जाते हैं और उनके हृदय में तरह-तरह के भाव उमड़ने लगते हैं। कहीं वे उन्हें घर की लक्ष्मी बतलाते हैं तो कहीं नेत्रों में अमृत की शलाका। सीता का शीतल स्पर्श उन्हें गाढ़े चन्दन का रस लगता है और उनकी बाहुलता गले में पड़े हुए शीतल और कोमल मुक्ताहार प्रतीत होती है। इस प्रकार उन्हें सीता के सभी अङ्ग प्रियतर लगते हैं।

तृतीय अङ्क में सीता की वास्तविक स्थिति का चित्रण करती हुई तमसा कहती है—कि अत्यधिक प्रवाहों से फैले हुए तथा आनन्द और शोक से उत्पन्न आसुओं को छोड़ती हुई सुन्दर नेत्र लोमों से युक्त विस्फारित और दीर्घ तथा श्वेत[364] प्रिय तथा सुन्दर दुग्ध की नहर की तरह तुम्हारी दृष्टि प्रेम की वृष्टि करती हुई हृदयेश्वर राम को स्नान करा रही है।[365]

सीता राम का स्पर्श करने के पश्चात् शीघ्र ही अपने हाथ को खींचकर दूर हो जाती हैं परन्तु वेदना की तीव्रता उन्हें सुस्थिर नहीं होने देती। इधर राम भी प्रियतमा के स्पर्श से आकण्ठ श्रृंगार रस में निमग्न हो जाते हैं। सीता के कुरकुशेशय के हट जाने से राम पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—जड़, कम्पनयुक्त और पसीजता हुआ सीता का वह पल्लवसदृश कर स्तब्ध, प्रकम्पित और पसीजते हुए मेरे हाथ से सहसा ही छूट गया है। सीता की स्थिति भी विचित्र हो जाती है। तमसा उन्हें स्नेह, कौतूहल और मुस्कराहट के साथ देखकर कहती हैं—कि वत्सला सीता राम के स्पर्श के सुख से वायु से प्रकम्पित और नूतन जल से सिञ्चित और विकसित कलिकाओं से युक्त कदम्ब वृक्ष की शाखा की तरह श्वेद, रोमाञ्च और कम्प से युक्त अङ्गों वाली हो गयी है।[366]

यहाँ राम और सीता दोनों के परस्पर स्पर्श से समुत्पन्न स्तम्भादि सात्त्विक भाव और जड़ता नामक व्यभिचारी भाव के द्वारा परिपुष्ट होता हुआ रति नामक स्थायी भाव श्रृंगार रस के रूप में परिणत हो रहा है।

कवि सम्भोग श्रृंगार के चित्रण में कहीं-कहीं मर्यादा का अतिक्रमण-सा करता हुआ दिखायी दे रहा है। राम और सीता दिव्य प्रकृति के पात्र हैं। उनके श्रृंगार चित्रण में ग्राम्यधर्म को अभिव्यक्त करना उचित नहीं है, परन्तु कवि के "अलसललितमुग्धानि ·[367] तथा 'किमपि किमपि मन्दं-मन्दं ··[368]" इत्यादि पद्य अधम कोटि के ग्राम्य धर्म को भी अभिव्यंजित कर रहे हैं। इस प्रकार के प्रयोगों का आचार्य आनन्दवर्धन ने स्पष्ट रूप से खण्डन किया है—

तस्मादभिनेयार्थेऽनभिनेयार्थे वा काव्यं यदुत्तमप्रकृतेः राजादेरुत्तमप्रकृतिभिर्नायिकाभिः सह ग्राम्यसम्भोगवर्णनं तत्पित्रोः सम्भोगवर्णनमिव सुतरामसमयम्। तथैवोत्तमदेवतादिविषयम् ।[369]

(ख) वीररस

महाकवि भवभूति ने अङ्ग रस के रूप में अपने नाटक उत्तमरामचरित में वीररस को पर्याप्त परिपोष प्रदान किया है। चतुर्थ और पंचम अङ्क तो वीररस की अभिव्यक्तियों से पूर्णतया आप्लावित हैं। षष्ठ अङ्क में भी हमें वीररस के दर्शन होते हैं। वीररस शृंगार रस का विरोधी नहीं है। अतः इसका सम्पोष अनुचित नहीं है।

चतुर्थ अङ्क में द्वादशवर्षीय बालक लव का उत्साह अभिव्यक्त होता है। अश्वरक्षकों की वीरघोषणा को सुनकर उसका स्वाभिमान जाग जाता है और वह गर्व के साथ कहता है तो क्या पृथ्वी क्षत्रियों से रहित हो गयी है ? जो इस प्रकार कहा जा रहा है। वह निर्भीक होकर सप्तलोकैकवीर महाराज रामचन्द्र की विजयपताका का हरण कर लेता है और सैनिकों के चमकते हुए शस्त्रों को देखकर स्वयं अपने धनुष पर प्रत्यञ्चा को चढ़ाते हुए कहता है– प्रत्यञ्चा रूपी जीभ से लिपटी हुई उत्कट अटनी रूपी दाढ़ों से युक्त और असंख्य भयंकर बादलों की गड़गड़ाहट से स्वर वाला यह धनुष निगलने में लगे हुए अतएव फैले हुए यमराज के मुखरूपी मशीनरूपी जँभाई की अनुकृति करने वाला भारी उदर वाला हो जाये ।[370]

यहाँ वीररस का आश्रय लव है। अश्वमेध का अश्व आलम्बन है। वीर घोषणा और 'रे, रे, महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः, धिक् चापलम्' आदि वाक्य उद्दीपन विभाव हैं। लव की दर्पोक्तियाँ, अश्व को मारते हुए ले जाना, धनुष चढ़ाना आदि अनुभाव हैं। गर्व, उग्रता, अमर्ष, आवेग आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे पुष्ट होता हुआ लव का उत्साह वीररस के रूप में परिणत हो जाता है।

पंचम अङ्क में वीररस पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। लव चन्द्रकेतु के सैनिकों पर बाणवृष्टि करता है। क्रोध के कारण उसका मुख लाल हो जाता है। उसके धनुष की प्रत्यञ्चा का घोष गरजते हुए गिरिगजों के कर्णकुहरों को भी पीड़ित कर देता है। अपनी अपूर्व बाणवर्षा के द्वारा रुण्ड-मुण्डों के समूह से पृथ्वी को आच्छादित कर देता है। अपने प्रतिद्वन्द्वी चन्द्रकेतु को वीरोचित सम्मान देने के लिए धीरोद्धत गति से उसके पास पहुँचता है। वह चन्द्रकेतु से स्पष्ट कर देता है कि क्षात्र धर्म किसी व्यक्ति विशेष तक

सीमित नहीं है। इसी प्रसंग में राम के शौर्य की आलोचना कर देता है जिससे चन्द्रकेतु भी क्रुद्ध हो जाता है।[371]

षष्ठ अङ्क के विष्कम्भक में जहाँ विद्याधर दम्पति लव और चन्द्रकेतु के शौर्य का वर्णन करते हैं, वीररस की प्रधानता है। इसी अङ्क में कुश के आगमन पर पुनः वीररस की व्यञ्जना हुयी है। क्रुद्ध कुश कहता है कि आज लोकों में राजा शब्द नाश को प्राप्त हो और क्षत्रियों की शस्त्ररूपी अग्नि बुझ जाये।[372] अपने धनुष को क्रोध और धैर्यपूर्वक सम्भालते हुए कहता है कि भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर इन्द्र तक को अभय दक्षिणा देने वाले अहंकार से युक्त पुरुषों के दमन के लिए अपने क्षत्रिय प्रताप रूप अग्नि को प्रज्वलित करने वाले सूर्यवंशीय राजाओं से यदि विरोध हो जाये तो प्रज्वलित अस्त्रों की देदीप्यमान और भयंकर किरणों से आरती की गयी प्रत्यंचा से युक्त मेरा यह धनुष धन्य होगा।[373] यहाँ कुश का उत्साह अभिव्यञ्जित हो रहा है। उसके उदात्त पौरुषातिरेक से राम भी प्रभावित हो जाते हैं और उसके विषय में इस प्रकार कहते हैं—इस क्षत्रिय बालक में किसी अनिर्वचनीय तेज का आधिक्य है। इसकी दृष्टि तीनों लोकों के बल के उत्कर्ष को तृण के सदृश तुच्छ कर रही है। धीर और उद्धत गति पृथ्वी को झुका सी रही है। बाल्यावस्था में भी पर्वत के सदृश गौरव को धारण करता हुआ क्या यह वीर रस है ? अथवा साक्षात् दर्प ही आ रहा है।[374]

(ग) अद्भुत रस

महाकवि भवभूति ने अङ्ग रस के रूप में अद्भुत रस की योजना की है। लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध में दिव्यास्त्रों के प्रयोग होने पर अद्भुत रस की उपस्थिति होती है। जब चन्द्रकेतु आग्नेयास्त्र का प्रयोग करता है जिसके द्वारा अग्नि की वृष्टि होने लगती है तब लव वरुणास्त्र का प्रयोग करके गगनमण्डल को मेघाच्छन्न कर देता है। बिजलियाँ चमकने लगती हैं। जलधाराओं के सम्पात से चन्द्रकेतु का पावकास्त्र शान्त हो जाता है। लव के वरुणास्त्र को शान्त करने के लिए चन्द्रकेतु वायव्य अस्त्र का प्रयोग करता है। प्रचण्ड पवन के द्वारा मेघमाला सहज में ही लुप्त हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ कवि ने अद्भुत रस की व्यञ्जना की है। द्वितीय अंक के उस स्थल में अद्भुत रस की स्थिति है जहाँ राम के द्वारा शम्बूक के वध होने पर दिव्य पुरुष प्रकट होता है और ब्राह्मण का मृत बालक जीवित हो जाता है। तृतीय अंक में तमसा के द्वारा दी गयी सूचना में और सप्तम अंक में जृम्भकास्त्रों के प्राकट्य के समय पर भी अद्भुत रस की योजना दृष्टिगोचर होती है।

(घ) भयानक रस

उत्तररामचरित नाटक में अङ्ग रस के रूप में भयानक रस दृष्टिगोचर होता है। लव के भयंकर कार्य का वर्णन करता हुआ चन्द्रकेतु कहता है–कि यह वीरबालक घोर नगाड़ों की गड़गड़ाहट के कारण बढ़े हुए अत्यधिक गर्जनों वाले गजों की पंक्ति के कानों को पीड़ित कर देने वाले डोरी के टंकार को उत्पन्न करता हुआ छटपटाते हुए कबन्धों और उनके शिरों के समूह से पृथ्वी को मानों प्यास से बेचैन यमराज के भयंकर मुख के जूठन से आच्छादित-सा कर रहा है।[375]

यहाँ लव आलम्बन है और उसकी चेष्टायें उद्दीपन हैं। विवर्णता, गद्गद, भाषण, रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं। आवेग, त्रास, ग्लानि, शंका आदि व्यभिचारिभाव हैं। इनसे पुष्ट भय नामक स्थायी भाव भयानक रस के रूप में परिणत हो रहा है।

इसी प्रकार षष्ठ अंक में विद्याधर विद्याधरी से कहते हैं–कि क्या आज निश्चय ही विश्वकर्मा के शाणयन्त्र के चक्रों में घूमते हुए सूर्य के प्रकाश के सदृश चमकीले महादेव के मस्तक पर स्थित तीसरे नेत्र का यह उन्मीलन है। इस समय तो कुछ जले हुए तथा बर्बर शब्द करने वाले ध्वजाओं और चाँमरों से युक्त विमानों के समूह तो भाग ही गये। नूतन पलाश पुष्प की कान्ति के सदृश अग्नि ध्वजों के सूक्ष्म वस्त्रों की पंक्ति को जला रहा है।[376]

इस वर्णन में भयानक रस की व्यञ्जना हो रही है।

(ङ) रौद्र रस

महाकवि भवभूति ने अङ्गरस के रूप में रौद्र रस की योजना की है। चंद्रकेतु और लव के भड़के हुए क्रोध के विषय में सुमन्त्र इस प्रकार कह रहे हैं–कि इन दोनों के क्रोध से केशसमूह को अत्यधिक कम्पित कर देने वाला समस्त शरीर में उत्पन्न कम्प प्रकट हो रहा है। स्वभाव से ही लाल कमल के पत्ते के कुछ सादृश्य वाले दोनों नेत्र लाल हो रहे हैं। भ्रूभंग से भयंकर इन दोनों के मुख भी कलंकयुक्त चन्द्रमा को तथा ऊपर भ्रमण करने वाले भ्रमरों से युक्त कमल की कान्ति को धारण कर रहे हैं।[377]

यहाँ सुमन्त्र आश्रय हैं, लव और चन्द्रकेतु आलम्बन हैं। उनकी चेष्टायें उद्दीपन हैं। शरीर का काँपना, नेत्रों का लाल हो जाना, भृकुटिभंग आदि अनुभाव हैं। आक्षेप, मोह, अमर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं। इनके द्वारा परिपुष्ट क्रोध नामक स्थायिभाव रौद्र रस के रूप में परिणत हो रहा है।

(च) हास्य रस

महाकवि भवभूति के विरुद्ध कतिपय विद्वान् एक आलोचना प्रस्तुत करते हैं कि उनकी रूखी एवं गम्भीर प्रकृति ने उन्हें नाटकों में हास्य रस की व्यञ्जना से वञ्चित कर दिया है परन्तु उनका यह कथन अनुचित है। कवि-वर भवभूति ने अनेक स्थानों पर हास्य की योजना की है। भवभूति के द्वारा प्रस्तुत अष्टावक्र नामक पात्र के विषय में वीरराघव इस प्रकार लिखते हैं–"हास्यरसानुप्रवेशार्थम् अष्टावक्रप्रवेशः।" चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में दाण्डायन और सौधातकि के वार्तालाप में हास्यरस मिलता है। इसी अंक में ब्राह्मण बालकों के द्वारा वर्णित अश्व भी हास्यरस पोषक है। प्रथम अंक में लक्ष्मण से सीता का प्रश्न "वत्स ! इयमपरा का ?" हास्यरस का पोषक है।

(छ) वात्सल्य रस

उत्तररामचरित नाटक में अनेक स्थलों पर वात्सल्य रस की व्यञ्जना हुई है। कवि ने लव और कुश को आलम्बन बनाकर सीता के वात्सल्य का मधुर अभिव्यञ्जन प्रस्तुत किया है।[378] चतुर्थ अंक में सीता को लक्ष्य कर राजा जनक इस प्रकार कह रहे हैं कि अकारण ही हँसने और रोने वाले कोमल कलिकाओं के सदृश विरल दन्तदीधिति से सुशोभित तथा तुतलाते हुए बिना किसी क्रम के मनोहर वचन बोलने वाले शैशवावस्था के तुम्हारे कमल तुल्य मुख का स्मरण कर रहा हूँ।[379] यहाँ सीता को आलम्बन बनाकर कवि ने जनक के वात्सल्य की व्यञ्जना की है। इसी प्रकार कवि ने लव को आलम्बन बनाकर अरुन्धती जनक तथा कौशल्या के वात्सल्य का मधुर अभि-व्यञ्जन किया है। चन्द्रकेतु[380], लव[381] और कुश[382] को आलम्बन बनाकर लोकाभिराम श्रीराम के मधुर वात्सल्य की व्यञ्जना प्रस्तुत की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने अनेक स्थलों पर वात्सल्य रस का मधुर स्वाभाविक एवं रुचिर अभिव्यञ्जन प्रस्तुत किया है।

(ज) शान्त रस

पुण्यानुभाव दर्शन वाले महाराज श्रीराम के दर्शन से प्रभावित लव परम निर्वृति का अनुभव करते हुए इस प्रकार कहते हैं–उनके दिव्य दर्शन से विरोध शान्त हो गया है। आनन्द के द्वारा प्रगाढ़ अनुराग फैल रहा है। वह दर्प कहीं चला गया है। नम्रता मुझे झुका रही है। इनको देखने पर न जाने क्यों पराधीन हो गया हूँ अथवा तीर्थस्थानों की तरह महापुरुषों का कोई बहुमूल्य उत्कर्ष होता है।[383] यहाँ शान्तरस के आश्रय भगवान्

श्रीराम हैं, आलम्बन लव हैं। पुण्यानुभाव वाले श्रीराम का दर्शन उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं। हर्ष, निर्वेद, स्मरण एवं मति आदि सञ्चारीभावों से पुष्ट शम नामक स्थायिभाव शान्त रस के रूप में परिणत हो जाता है।

सन्दर्भ

१. हिन्दी अभिनव भारती–आचार्य विश्वेश्वर पृ. ४६४ से ४६७ दिल्ली विश्वविद्यालय १६६०
२. आनन्दवर्धन–डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी पृ. १६०, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल १६७२
३. नाट्यशास्त्र पृ. ८०
४. साहित्यदर्पण ३/२६
५. वही
६. वही
७. वही ३/१३२–१३३
८. वि अभि इत्येतावुपसर्गौ। चर्गतौ धातुः। धात्वर्थवागंगसत्त्वोपेतान् विविधमभिमुखे रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।

–नाट्यशास्त्र पृ. ८४

९. साहित्यदर्पण ३/१४०
१०. दशरूपक ४/७
११. दशरूपक ४/३४ साहित्यदर्पण ३/७४
१२. नाट्यशास्त्र ६/१५–१७
१३. विक्रमोर्वशीय १/१८
१४. एन० एफ० आर० पी० पृ. १३
१५. अभिनवभारती १/३४२
१६. काव्यप्रकाश ४/३५
१७. ध्वन्यालोक पृ. ३६४
१८. वही पृ. ३६०
१९. साहित्यदर्पण ३/२५१
२०. काव्यप्रकाश ४/३५
२१. साहित्यदर्पण ३/१८३ से १८६
२२. वही ३/१८६ से १८७
२३. वही ३/१८७–१८८

२४. वही ३/१९८
२५. वही ३/२०४–२०५
२६. वही ३/२०९
२७. वही ३/२१०
२८. वही ३/२१४–२१६
२९. वही ३/२२२–२२५
३०. वही ३/२२६
३१. वही ३/२२७–२३०
३२. वही ३/२३१
३३. वही ३/२३१–२३४
३४. वही ३/२२५–२३८
३५. वही ३/२३९–२४१
३६. वही ३/२४२–२४४
३७. वही ३/२४५–२४८
३८. वही ३/२५१–२५३
३९. वही ३/२६०
४०. वही ३/१
४१. ध्वन्यालोक १/९
४२. वही ४/५
४३. वही ३।२१
४४. काव्यालंकार १/२१
४५. काव्यादर्श १६/५
४६. साहित्यदर्पण ६/१०
४७. महावीरचरित १/१६, १७, १८
४८. वही १/२५
४९. वही पृ. ३५
५०. वही १/४२, ४६
५१. वही १/५३
५२. वही १/६२
५३. वही २/५
५४. वही २/६
५५. वही २/७
५६. वही २/११
५७. वही २/१६
५८. वही २/२८
५९. वही २/३०
६०. वही २/३१
६१. वही २/३२
६२. वही २/३३
६३. वही २/३५
६४. वही २/३६
६५. वही २/३७
६६. वही २/३८
६७. वही २/३४
६८. वही २/४०
६९. वही २/४१
७०. वही २/४४
७१. वही २/४५
७२. वही २/४८
७३. वही २/४९
७४. वही ३/३
७५. वही ३/४
७६. वही ३/८
७७. वही ३/९
७८. वही ३/११
७९. वही ३/१७
८०. वही ३/२५
८१. वही ३/२७
८२. वही ३/२८
८३. वही ३/२९
८४. वही ३/३४
८५. वही ३/३७
८६. वही ३/३९
८७. वही ३/४१

८८. वही ३/४२	८९. वही ३/४३
९०. वही ३/४५	९१. वही ४/१२
९२. वही ४/१३	९३. वही ४/१५–१८
९४. वही ४/२०	९५. वही ५/१९
९६. वही ५/४५	९७. वही ५/४७
९८. वही ५/४९	९९. वही ५/५१
१००. वही ५/५२	१०१. वही ६/११
१०२. वही ६/१५	१०३. वही ६/१९
१०४. वही ६/२०–२२	१०५. वही ६/२५
१०६. वही ६/२७–३०	१०७. वही ६/३६
१०८. वही ६/३७	१०९. वही ६/३८
११०. वही ६/४७	१११. वही ६/४९
११२. वही ६/५१	११३. वही ६/५४
११४. वही ७/८	११५. वही ७/३८, ४०, ४१
११६. वही पृ. १८	११७. वही पृ. ७७
११८. वही २/१९	११९. वही २/२२
१२०. वही ५/२२	१२१. वही ५/२३
१२२. वही ५/२८	१२३. वही ५/६१
१२४. महावीरचरित पृ. २९६	१२५. वही ५/२९
१२६. वही ५/५३	१२७. वही ६/४
१२८. वही पृ. ११५	१२९. वही पृ. ११७
१३०. वही ३/१९	१३१. वही ३/२०
१३२. वही ३/२१	१३३. वही ३/२४
१३४. वही ३/२५	१३५. वही ३/२६
१३६. वही ३/२७	१३७. वही ३/२८
१३८. वही ३/२९	१३९. वही ३/३२
१४०. वही ३/३४	१४१. वही ३/३५
१४२. वही ३/३७	१४३. वही ३/३९
१४४. वही ३/४०, ४१	१४५. वही ३/४३
१४६. वही ३/४४	१४७. वही १/३५
१४८. वही १/३९	१४९. वही ५/३३
१५०. वही १/४३	१५१. वही १/४४
१५२. वही १/५४	१५३. वही ६/५१

१५४. वही ६/५३ १५५. वही ४/२५
१५६. वही ५/५८ १५७. वही १/५५
१५८. आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः पुंसः पश्चात्तदिङ्गितैः । साहित्यदर्पण ३।१६५
१५९. मालतीमाधव १/१६ १६०. मालतीमाधव १/१८
१६१. वही १/१९ १६२. वही १/२०
१६३. वही १/२२ १६४. वही १/२३
१६५. वही १/२५ १६६. वही १/२४
१६७. वही १/२७ १६८. वही १/२८
१६९. वही १/२९ १७०. वही १/३०
१७१. वही १/३१ १७२. वही १/३२
१७३. वही १/३६ १७४. वही १/३७
१७५. वही १/३९ १७६. वही १/४१
१७७. वही १/४२ १७८. वही २/१
१७९. वही २/२ १८०. वही २/३
१८१. वही २/४ १८२. वही २/५
१८३. वही २/६ १८४. वही २/७
१८५. वही पृ. ११० १८६. वही २।११
१८७. वही ३/५ १८८. वही ३/६
१८९. वही ३/७ १९०. वही ३/८
१९१. वही ३/९ १९२. वही ३/१०
१९३. वही ३/१२
१९४. कलकण्ठकलालापश्रुतिर्मन्द्रानिलादरः ।
ज्योत्स्नाप्रवेशमाकन्दमञ्जरीवीक्षणादयः ॥
रा० सु० द्वितीय विलास
१९५. अस्माकमपि भर्तृदारिका .... प्रियसख्याः ।
मालतीमाधव पृ. १४५–१५५
१९६. मालतीमाधव ३/१५ १९७. मालतीमाधव ३/१६
१९८. वत्स .... प्रीतिदानस्य । मालतीमाधव पृ. १७५
१९९. मालतीमाधव ४/३ २००. मालतीमाधव ४/४
२०१. „ „ मालती .... दृष्टोऽसि । पृ. १९१
२०२. परिणत .... प्रतिपद्य । मालतीमाधव पृ. १९२
२०३. मालतीमाधव ५/७ २०४. मालतीमाधव ५/८
२०५. वही ५/९

२०६. यत्सत्यमधुना..................चैतन्यम् ।

मालतीमाधव पृ. २११–२१२

२०७. मालतीमाधव ५/१०
२०८. मालतीमाधव ५/२८
२०९. वही ५/३०
२१०. वही पृ. २७१–२७२
२११. वही ६/८
२१२. वही पृ. २७३–२७४
२१३. वही ६/९

२१४. न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते ।।

साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेद पृ. ११४

२१५. मालतीमाधव ६/१०
२१६. मालतीमाधव ६/११
२१७. वही ६/१२
२१८. वही ६/१५
२१९. वही ६/१८
२२०. वही ८/२
२२१. वही ८/३
२२२. वही ८/१
२२३. परिहासार्थमिदमनयोक्तमिति चानुक्तमपि ब्रूयात् ।

कामसूत्र अधिकरण ३. अध्याय २. पृ. ४१३

२२४. मालतीमाधव ८/१२
२२५. मालतीमाधव ८/१३
२२६. वही ९/१०
२२७. वही ९/१२
२२८. वही ९/१४
२२९. वही ९/२०
२३०. वही ९/२६
२३१ वही ९/२७
२३२. वही ९/२९
२३३. वही ९/३०
२३४. वही ९/३१
२३५. वही ९/३२
२३६. वही ९/३५
२३७. वही ९/४४
२३८. वही पृ. ४२९--४३०
२३९. वही ९/४६
२४०. वही ९/४७
२४१. वही पृ. ४६२
२४२. वही १०/२२
२४३. वही १०/२३
२४४. वही ४/२
२४५. वही पृ० १८२
२४६. वही पृ० ३२१
२४७. वही पृ० ३२२
२४८. वही पृ० ३२४–३३०
२४९. वही पृ० ३३१
२५०. वही पृ० ३३३
२५१. वही ७/२
२५२. वही ७/३
२५३. वही ७/४
२५४. स च विहारदासीं मन्दारिकां कामयते । मालतीमाधव
२५५. अङ्गमन्ये रसाः सर्वे । साहित्यदर्पण ६/१०

२५६. मालतीमाधव ३/१८
२५७. मालतीमाधव ५/३२
२५८. वही ५/३४
२५९. वही ९/१२
२६०. वही ६/१८
२६१. वही पृ. ३६७
२६२. वही ६/२०
२६३. वही ६/२२
२६४. वही पृ ४१८
२६५. वही ६/३७
२६६. वही ५।१६
२६७. वही ५।१७
२६८. वही ५।२६
२६९. वही ५।३१
२७०. वही ५।१३
२७१. वही ३।१८
२७२. वही ३।१७
२७३. वही ५।१५
२७४. वही ५।३
२७५. वही ५।४
२७६. वही पृ० १६३
२७७. वही पृ० ३००–३०२
२७८. वही पृ० ३०३–३२६
२७९. वही १०।१
२८०. वही १०।२
२८१. वही १०।५
२८२. वही १०।६
२८३. (क) एकोरसोंऽगीकर्तव्यो वीर श्रृंगार एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।।

दशरूपक ३।३३–३४

(ख) एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।।

साहित्यदर्पण ६।१०

२८४. उत्तररामचरित–सम्पादक–डॉ० लालरमायदुपाल सिंह, श्री शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण १९६५ की भूमिका से उद्धृत पृ० सं० ५१
२८५. उत्तररामचरित १।७
२८६. उत्तरामचरित १।८
२८७. वही प्रथम अङ्क
२८८. वही १।१४
२८९. वही १।३३
२९०. वही १।३८
२९१. वही पृ० १०७
२९२. वही २।६
२९३. वही २।२८
२९४. वही २।२९
२९५. वही २।२६
२९६. वही ३।१
२९७. वही ३।६
२९८. वही पृ० १८७
२९९. वही पृ० १९१
३००. वही पृ० १९३
३०१. वही ३।१२
३०२. वही
३०३. वही ३।१४
३०४. वही २०३

३०५. उत्तररामचरित १।६६
३०६. उत्तररामचरित ३।१३
३०७. वही
३०८. वही ३।१६
३०६. वही ३।२०
३१०. वही ३।२१
३११. वही ३।२२
३१२. वही ३।२३
३१३. वही ३।२६
३१४. वही ३।२७
३१५. वही ३।२८
३१६. वही ३।३०
३१७. वही ३।३१
३१८. वही ३।३३
३१६. वही ३।३४
३२०. वही ३।३५
३२१. वही ३।३६
३२२. वही ३।३७
३२३. वही ३।३८
३२४. वही ३।३६
३२५. वही ३।४१
३२६. वही ३।४२
३२७. वही ३।४४
३२८. वही ३।४५
३२६. वही ४।४
३३०. वही ४।१७
३३१. वही ४।२३
३३२. वही ५।२०
३३३. वही ५।२५
३३४. वही ६।२६–२७
३३५. वही ६।३०
३३६. वही ६।३१–३२
३३७. वही ६।३३
३३८. वही ६।३८
३३६. वही ३।४७
३४०. इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् । सा० द० ३।२२२
३४१. व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता ।

—काव्यप्रकाश ७।६०

३४२. उत्तररामचरित २।१७
३४३. उत्तरामचरित २।१८
३४४. वही २।१६
३४५. वही २।२६
३४६. वही २।२८
३४७. वही पृ० १६६
३४८. वही ६।३०
३४९. वही ३।३८
३५०. वही ३।४४
३५१. वही २।२८
३५२. वही ६।३७
३५३. वही १।२६
३५४. वही ६।२८
३५५. वही ६।३५
३५६. वही ६।३३
३५७. वही ६।३५
३५८. वही ३।३६
३५६. वही ३।३०
३६०. वही १।३४
३६१. वही १।३५
३६२. वही १।३६
३६३. वही १।३८
३६४. वही ३।२३
३६५. वही ३।४२

३६६. वही १।२४
३६७. वही १।२७
३६८. ध्वन्यालोक २१०
३६९. उत्तररामचरित ४।२९
३७०. उत्तररामचरित ४।३२, ४।३४
३७१. वही ६।१६
३७२. वही ६।१८
३७३. वही ६।१९
३७४. वही ५।६
३७५. वही ६।४
३७६. वही ५।३५
३७७. वही
३७८. वही ४।४
३७९. वही ६।८
३८०. वही ६।१३
३८१. वही ६।१७
३८२. वही ६।११

तृतीय अध्याय

महाकवि भवभूति के नाटकों में भावध्वनि

आचार्य अभिनवगुप्त लिखते हैं कि जब कोई व्यभिचारिभाव उद्रिक्तावस्था में पहुँचकर चमत्कारातिशय का प्रयोजन बनता है, तब उसे भावध्वनि कहते हैं।[1] तात्पर्य यह है कि रस में अनुभव होने वाले भावों की मात्रा समान रहती है। कोई भी भाव किसी से न्यूनाधिक मात्रा में नहीं रहता। जैसे पानकरस[2] (आम का पना या ठण्डाई) में पड़ने वाले पदार्थों—काली मिर्च, सौंफ, बादाम आदि-की मात्रा इतनी सन्तुलित रहती है कि उसमें किसी एक विशेष पदार्थ का पृथक् अनुभव नहीं होता। इसी प्रकार विभावादि के अनुभव प्रसंग में जब तक उपर्युक्त समता संरक्षित रहती है तब तक रस का अनुभव होता रहता है। परन्तु जब इनमें से किसी संचारिभाव की मात्रा अधिक बढ़ जाती है तथा उसका पृथक् रूप में अनुभव होने लगता है, तब वह अनुभव रसात्मक न रहकर भावात्मक हो जाता है, इसे ही भावध्वनि कहते हैं। जैसे पानकरस में कालीमिर्च की मात्रा अधिक हो जाने से उसकी पृथक् उत्कृष्ट प्रतीति।

आचार्य मम्मट देवादिविषयकरति तथा विशिष्ट प्रकार से व्यंजित व्यभिचारी भाव को भावसंज्ञा देते हैं।[3] आचार्य हेमचन्द्र स्थायित्व की बहुलता के कारण रसादि को स्थायिभाव मानते हैं परन्तु अल्पविभावत्व की स्थिति में उन्हें व्यभिचारी भाव के रूप में प्रतिपादित करते हैं।[4] यहाँ यह अवधेय है कि जहाँ भावध्वनि की स्थिति है वहाँ रस तो रहता ही है, अतः भावध्वनि को रसध्वनि से पृथक् नहीं माना जा सकता। जहाँ केवल किसी एक भाव की प्रधानता रहती है, वहाँ प्रधानता के कारण रस नाम न रहकर भाव हुआ करता है।

(क) महावीरचरित में भावध्वनि

महावीरचरित नाटक में अङ्गी एवं अङ्गरसों की निष्पत्ति के साथ ही

साथ भावों की भी मनोरम अभिव्यञ्जना हुई है। नाटक के प्रारम्भ में नान्दी के रूप में कवि ने देवविषयक रति का उपस्थापन किया है। नाटकीय विघ्नों के विघात के लिए कवि सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म से प्रार्थना करता हुआ लिखता है कि "अपने ही आधार में अवस्थित सनातन पाप विनाशक उत्पत्ति आदि क्रमशून्य ज्ञानस्वरूप तेजोमय परब्रह्म को प्रणाम है।"[5]

यहाँ कवि की आलम्बन परब्रह्म के प्रति रति की व्यञ्जना हो रही है। रति में परब्रह्म के जिस गौरव एवं माहात्म्य का चित्रण हुआ है, वह अनुभाव है विबोध, स्मृति, मति, धृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

कवि की गुरुविषयक रति उसके इस कथन से ध्वनित हो रही है कि महर्षियों में अंगिरा की तरह परमहंसों में श्रेष्ठ यथार्थनामा ज्ञाननिधि महावीरचरित के प्रणेता कवि के गुरु थे।[6]

यहाँ कवि की आलम्बनरूप श्रद्धेय गुरु ज्ञाननिधि के प्रति रति अभिव्यञ्जित हो रही है। गुरु का गौरव एवं माहात्म्य अनुभाव है। मति, स्मृति, धृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

इसी प्रकार कवि की देवविषयक एवं मुनिविषयक रति उसके इस कथन से प्रकट हो रही है कि आदिकवि मुनिवर वाल्मीकि में जिस रामचन्द्र के पवित्र चरित्र का वर्णन किया है, भक्त होने के कारण हमारी वाणी भी उस चरित्र पर अनुरक्त हो गई है। विद्वज्जन प्रसन्नचित्त होकर उसका आस्वादन करें।[7] राजा कुशध्वज की मुनिविषयक रति उस प्रसंग में ध्वनित हो रही है जब वे सीता और उर्मिला से कहते हैं कि आज तुम लोग महाराज विश्वामित्र को श्रद्धायुक्त हृदय से प्रणाम करना[8], क्योंकि वे विश्वामित्र चतुर्थ अग्नि, पञ्चम वेद अथवा जङ्गम तीर्थ या मूर्ति धारण कर सञ्चरण करने वाले धर्म के सदृश हैं। राजा के इस कथन को सुनकर सूत कहता है कि भगवन् ! आपका कथन सर्वथा उचित है। प्रभाव में महर्षि विश्वामित्र से बढ़कर कोई नहीं है। इनकी त्रिशंकु सम्बन्धी, शुनः शेप सम्बन्धी और रम्भाविषयक आश्चर्यजनक घटनाओं के आख्यान के ज्ञाता प्रशंसा करते हैं।[9] देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मादि जिनकी शांति के लिए प्रार्थना कर चुके हैं। तपस्याजन्य तेजोनिधान और जो स्वयं ब्रह्मरूप हो रहे हैं जिनके पास विद्या रहा करती है उन तेजस्वी विश्वामित्र के साथ आपने कुटुम्बी जैसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है अतः आप गृहस्थों में श्लाघ्य गृहमेधी हैं।[10] राजा सूत की सराहना करता हुआ कहता है कि तुम सत्य और प्रिय बोल रहे हो। इन सत्यप्रतिज्ञ तथा ब्रह्मज्ञानी महर्षियों के संसर्ग से उत्कृष्ट कल्याण प्राप्त होता है। इस प्रकार के महर्षियों के संसर्ग से अज्ञान दूर होता है। शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है।

एक बार भी बात कर लेने से इहलोक तथा परलोक में कल्याण प्राप्त होता है। इनका साहचर्य अनिर्वचनीय माहात्म्य को प्रदान करता है। यदि ये महात्मा प्रसन्न होकर कुछ कह दें तो वह अपरिमेय फल को प्रदान करने वाला होता है।[11]

यहाँ राजा कुशध्वज आश्रय हैं। महर्षि विश्वामित्र आलम्बन हैं। उनका लोकातिशायी चरित्र उद्दीपन विभाव है। प्रेम से पुलकित हो जाना, महर्षि विश्वामित्र की महिमा का कथन करना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

राजा कुशध्वज की रामलक्ष्मणविषयक रति उनके इस कथन से ध्वनित हो रही है कि क्षत्रिय जाति, ब्रह्मचर्य आश्रम और बाल्यावस्था की अद्वितीय रमणीय मूर्ति हैं। इन्होंने शिखा को छूने वाले बाणों को तूणीर में रख रक्खा है। वह तूणीर पीठ पर लटक रहा है। भस्म के द्वारा वक्षःस्थल पवित्र किया जा रहा है। रुरु मृग का चर्म धारण किये हैं, मूजनिर्मित मेखला से बाँधे गये मजीठ रंग के वस्त्र को पहने हुए हैं और कर-किसलयों में अक्षसूत्र तथा पिप्पल दण्ड हैं।[12]

रघुवंशीय नृपतियों के प्रति राजा कुशध्वज की नृपविषयक रति विश्वामित्र वार्तालापप्रसंग में मिलती है। वे कहते हैं कि हे भगवन्! आप जिन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं उनका तो कल्याण होगा ही। रघुवंशियों के उत्कर्ष तो सिद्ध ही हैं। भगवान् वसिष्ठ जिन्हें वैदिक विधि की शिक्षा देते हैं, जिनका अनन्य साधारण अधिकार त्रैवर्णिक रक्षा पर स्थिर है, सावित्र मनु के वंश में जिनका जन्म है, उनका महत्त्व ज्ञान और वचन के अगोचर है।[13]

यहाँ आश्रय कुशध्वज हैं। आलम्बन रघुवंशीय राजा, उनका वैदिक ज्ञान शौर्य, औदार्य, उनकी कुलीनता आदि उद्दीपन विभाव हैं। उनके महत्त्व और ज्ञान का प्रतिपादन करना अनुभाव है। हर्ष, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

राजा कुशध्वज के इस कथन में भी मुनिविषयक रति अभिव्यञ्जित हो रही है कि कठोर तपोयुक्त तेजोराशि अप्रतिमेय पराक्रमी आपकी महाभागता की स्तुति करने में साहस करने वाला स्तोता अपनी वाणी में शक्ति न पाकर प्रवृत्ति के विफल होने से विपन्न होकर लज्जित हो जाता है।[14] विश्वामित्र का उत्कर्ष राजा कुशध्वज के इस कथन से भी प्रकट होता है कि जनकवंशियों और रघुवंशियों का यह सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं लगेगा? जिसमें कल्याणप्रतिभू आप ही दाता तथा ग्रहीता दोनों ही हों।[15]

राम के उन कथनों से भी मुनिविषयक रति ध्वनित हो रही है जिनमें वे

उनके अलौकिक एवं अनुपमेय शौर्य, ज्ञान, त्याग, औदार्य आदि को प्रतिपादित करते हैं।[16] वे कहते हैं कि ये सामने त्रिभुवनैकवीर परशुराम उपस्थित हैं जो दुर्धर्षणीय तेजोराशि शरीरधारी प्रताप समूह के सदृश और कुछ घनत्व को प्राप्त वीररस के समान सुशोभित हो रहे हैं।[17] पवित्र होकर भी भयंकर व्रतों के निधान, मनोहर तथा भयंकर मूर्ति को धारण करने वाले परशुराम अथर्ववेद के सदृश अमित शक्ति सम्पन्न दिखायी पड़ रहे हैं।[18] प्रलय की इच्छा रखने वाले कालरुद्र शिव की क्रोध कठोर शक्ति ही ब्राह्मण परशुराम के रूप में हमारे समक्ष स्थित है जो समस्त संसार के संहार की क्षमता रखती है और मानों राशीभूत सामर्थ्य सार के रूप में पृथक्भावेन स्थित है।[19] इनका उग्र और शान्त वेष दोनों प्रकार की शोभा को धारण कर रहा है।[20] क्रुद्ध मुनि परशुराम पर राम का पाणिपंकज नवशिक्षित धनुर्विद्या के उपयुक्त कार्य को करने के लिए और चरणवन्दन के लिए हठात् चलना चाहता है।[21] परशुराम की प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं कि जिस परशु के टुकड़े को लेकर महादेव संसार में खण्डपरशु के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। तारकरिपु के जीतने के कारण लभ्यमान उसी परशु के टुकड़े से आप परशुराम कहलाने लगे। जमदग्नि आपके जन्मदाता हैं। महादेव गुरु हैं। आपका पराक्रम अनिर्वचनीय है। सप्त समुद्रवेष्टित पृथ्वी का निर्व्याज दान आपका त्याग है। क्षात्र और ब्रह्मतेज के निधान आपका सब कुछ लोकोत्तर ही है।

यहाँ आश्रय राम हैं, आलम्बन परशुराम। उनकी दीप्ति, प्रभाव, शौर्य, त्याग आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम के द्वारा परशुराम के गुणों की प्रशंसा करना अनुभाव है। हर्ष, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

परशुराम के राम के प्रति प्रेमार्द्र वाक्य कुमारविषयक रति की व्यंजना करा रहे हैं। परशुराम राम से कहते हैं कि हे राम! हृदय की तरह सुन्दर आकृति को धारण करने वाले तुम और तुम्हारे गुण की रमणीयता अत्प्रतर्क्य है। इस प्रकार तुम हमारे हृदय में बस गये हो।[22] मेरी यह कठोर छाती तुम्हें लिपटा लेना चाहती है और तुम्हारे जैसे अद्भुत वीर को प्राप्त कर रोमाञ्च से व्याप्त हो रही है।[23] बालक राम के असाधारण चरित के उत्कर्ष पर परशुराम इतना अधिक आकृष्ट हो जाते हैं कि उनकी अहंकार पर अनास्था हो जाती है। उन्हें वीर बालक राम अनन्त सामर्थ्य से युक्त सारमय पदार्थ के समान प्रतीत होता है।[24] राम में वे लक्ष्मीसत्त्व गुण से ज्वलित तेज, धर्म, मान, विजय और पराक्रम की स्पष्ट झलक देखते हैं।[25] उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि मानों बालक राम समस्त भुवन की रक्षार्थ शरीरधारी

अस्त्रवेद हो, ब्रह्माण्ड की रक्षा के लिए देहधारी क्षात्रधर्म हो, सामर्थ्य का समूह हो, गुणों का सञ्चय हो अथवा जगत् का पुण्यकर्म ही मूर्ति के रूप में स्थित हो गया हो।[26]

यहाँ आश्रय परशुराम हैं। आलम्बन राम हैं। उनका मधुर मुग्ध सौंदर्य, शौर्य, औदार्य आदि उद्दीपन विभाव है। परशुराम के द्वारा राम के गुणों का कथन अनुभाव है। हर्ष, मोह, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

वसिष्ठ एवं विश्वामित्र की पुत्र सदृश शिष्य राम के प्रति रति उस समय अभिव्यञ्जित होती है जब वे उनके अलौकिक कार्य से प्रभावित होते हैं। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि राम की ऐसी महिमा होगी, इसकी तो मुझे आशा भी न थी उसने तो हमें और त्रिभुवन को भी कृतार्थ कर दिया।[27] विश्वामित्र राम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि राम ने कार्तवीर्यार्जुनजयी परशुराम को भी जीत लिया है। राम वीरलक्ष्मी तथा नम्रता से अलंकृत हैं। वे मान्य मुनि के प्रति आदरावनत और गुणों से उन्नत हैं। अपने द्वारा पराजित परशुराम के प्रति उनके हृदय में वैसा ही संकोच है जिस प्रकार शिष्य को गुरु के साथ अभद्रता करने पर हृदय में संकोच होता है।[28] दशरथ की मुनि विषयक रति उनके इस कथन से प्रकट होती है कि स्वभावतः पवित्र आपको दूसरी शुद्धियों की क्या आवश्यकता? तीर्थजल और अग्नि की शुद्धि दूसरे पदार्थों से नहीं होती।[29] आप वन में निवास करते हैं, हम लोग गृहकार्य में व्यस्त रहते हैं, इसलिए हम लोग आपके समागम से वञ्चित रहे। आज हमारे पुण्यपरिपाक से चिरप्रतीक्षित और मनोवाञ्छित आपका समागम प्राप्त हुआ।[30] स्तुतिपथातीत तेज होने के कारण आपकी क्या स्तुति की जाय? आप जब समस्त पृथ्वी का दान कर चुके हैं तब आपको क्या दिया जाय? शान्त आपके लिए परिजन की भी आवश्यकता नहीं है फिर भी पुत्रों के साथ यह दशरथ आज आपका दास है।

यहाँ आश्रय राजा दशरथ हैं। आलम्बन परशुराम हैं। उनका अप्रतिमेय प्रभाव, त्याग, तपस्या आदि उद्दीपन है। राजा दशरथ के द्वारा परशुराम के गुणों का कथन अनुभाव है। हर्ष, मोह, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

यहीं जामदग्न्य के इस कथन में नृपविषयक रति प्रकट हो रही है कि हे नृपति दशरथ! मुनिजन जिसे दीप्त तेज कहते हैं, वे सूर्य आपके कुल के प्रवर्तक हैं। इससे बढ़कर क्या प्रशंसा हो सकती है? इक्ष्वाकु राजा सदैव यज्वा तथा परमार्थ राजर्षि होते आये हैं जिनके धर्मोपदेशक वेदोपम वसिष्ठ हैं।[31] युद्धों में इन्द्र को अभय देने वाला धनुष, अप्रतिहत शासन, यज्ञयूप से चिह्नित सप्त द्वीप वसुन्धरा, कीर्ति पताका रूप गंगा तथा सागर से प्रख्यात

वस्तुगण आपके महत्त्व को कह रहे हैं। [32]

यहाँ आश्रय परशुराम हैं। आलम्बन राजा दशरथ। उनकी कुलीनता धर्मपरायणता, शौर्य आदि उद्दीपन विभाव है। परशुराम के द्वारा राजा दशरथ के गुणों का कथन अनुभाव है। हर्ष, स्मृति, मति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

पुत्र एवं पुत्रीविषयक रति की व्यञ्जना उस प्रसंग में हुई है जिसमें जनक राम और लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि इक्ष्वाकुवंशीय वृद्ध राजा पुत्र को सिंहासनासीन करके जिस कार्य को करते थे, तुम लोगों को यह वनवास व्रत बाल्यावस्था में ही करना पड़ा। वत्सले सीते ! तुम धन्य हो। [33] तुम्हें गुरुजनों की आज्ञा से ही अपने पति के साथ वन जाना पड़ा।

यहाँ आश्रय राजा जनक हैं। आलम्बन राम, लक्ष्मण और सीता हैं। उनका अनुपमेय त्याग उद्दीपन विभाव है। उनके गुणों का वर्णन अनुभाव है। मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं।

इसी प्रकार देवादिविषयक रति के अन्य उद्धरण भी देखे जा सकते हैं। यद्यपि प्रबन्धकाव्य में भाव प्रायः रस के अंग के रूप में प्रस्तुत होते हैं, अतः उन्हें पूर्णरूप से स्वतन्त्र व्यभिचारी कहने में थोड़ी हिचक होती है तथापि यत्र-तत्र कहीं किसी न किसी भाव की प्राधान्येन अभिव्यक्ति हो ही जाती है। अतः वहाँ व्यञ्जित व्यभिचारिभाव को ही भावध्वनि माना जाता है। यहाँ हम महावीरचरित नाटक से कतिपय भावध्वनियों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

चतुर्थ अंक में जब राम परशुराम से क्षमा माँगते हैं तो परशुराम कहते हैं कि आपने परशुराम का क्या बिगाड़ा है ? प्रत्युत आपने उपकार किया है। हमारे चैतन्य का हरण करके–ब्राह्मण जाति की पवित्रता वंश गौरव तथा श्लाघ्य आचरण को–अकेले होकर भी अनन्त दोषों से परिपूर्ण जिस दर्प व्याधि ने छीन लिया था, ब्राह्मण-प्रिय होने के कारण आपने हमारे कल्याण के लिए उसे शान्त किया। [34]

यहाँ निर्वेद भाव की व्यञ्जना हो रही है।

रामचन्द्र के विजयावसर पर जनक राजा दशरथ से कहते हैं कि आपका भाग्य है कि आपके पुत्र रामचन्द्र ऐसे हैं। उन वीर और महान् रामचन्द्र के चरित केवल हमारे ही लिए नहीं प्रत्युत तीनों लोकों के लिए कल्याणकारी हैं। उनके चरित गुण से युक्त तथा अलौकिक होने के कारण लोकोत्तर और महोदय हैं। [35]

यहाँ सम्भ्रम नामक भाव की व्यञ्जना हो रही है।

परशुराम के मिथला में आने पर वहाँ की स्थिति विचित्र हो जाती है। सत्त्व क्षय से विषण्ण प्रहरी वेत्रधारीगण किसी प्रकार उन्हें देख भर रहे हैं। उनकी आँखें उनकी ओर उठ नहीं रही हैं। उन्होंने उनकी ओर से मुँह फेर लिया है। उनकी गति अव्याहत है। प्रहरी उन्हें रोक नहीं पाते। वे राम की खोज में तत्पर हैं। परिजन हाहाकार कर रहे हैं। हाँ, क्रुद्ध परशुराम तो कन्यान्तःपुर में ही पैठे आ रहे हैं।[36]

यहाँ शत्रुज सम्भ्रम भाव की व्यञ्जना हो रही है।

भाले से बिधे योद्धाओं के शरीर का रुधिर सिक्त अभिनव माँस खाने के लोभ में मँड़राने वाले गृध्रों की विशाल पक्षच्छाया के द्वारा जिनकी धूप बचायी जा रही है, ऐसे वीर योद्धा शस्त्र प्रहार से व्याप्त शरीरभाग से शोणित की धार निकलते रहने पर भी थोड़े समय के लिए युद्धस्थल में ही विश्राम कर लेते हैं।

यहाँ श्रमभाव व्यंग्य हो रहा है।

षष्ठ अङ्क में रावण अत्यधिक गर्वपूर्वक कहता है--विधाता ही क्या है ? मैं ब्रह्माण्ड को पीसकर नूतन ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता हूँ जिसकी कोई उपमा ही न हो। हमारी कीर्ति और प्रताप उसमें सूर्य और चन्द्र का काम करें, तब हमें आनन्द हो। मैं ऐसा कर देता परन्तु आलस्य ही मुझमें बड़ा दोष है। फिर दयापात्र ब्रह्मा आदि को क्यों दोष दिया जाय ?[37] जो मैं युद्ध के क्षेत्र में दो हाथों से मतवाले हाथियों के दाँतों को पकड़कर चार हाथों से वेगपूर्वक आने वाले दिग्गजों को भी रोक सका था और वज्रादि भयंकर अस्त्रों की चोट से जिसकी छाती का चमड़ा खुरच भर गया था उसी के शत्रु हो रहे हैं, यह तो नई ही बात सुनने को मिल रही है।[38]

यहाँ गर्वभाव की व्यञ्जना हो रही है।

क्रोधोद्धत परशुराम के आगमन पर सखियाँ कहती हैं कि हाय, चमकते हुए सूर्य के सदृश दुष्प्रेक्ष्य भासुर शरीर कान्ति को फैलाता हुआ जलते हुए तेज कुठार को लिए इधर-उधर बिखरी वह्निज्वाला तुल्य जटाओं को धारण किए हुए लम्बे-लम्बे डग भरने के कारण विकट जंघा के आघात से पृथ्वी को थर्राता हुआ यह क्षत्रिय संहारी आ ही गया।[39]

यहाँ अनिष्ट परशुराम के दर्शन से सखियों की आपत्ति प्रकट हो रही है। उनके इस कथन से परशुराम को टकटकी लगाकर देखना, चुप हो जाना आदि अनुमित हो रहे हैं, अतः यहाँ जडता भाव की व्यञ्जना हो रही है।

शान्ति का उपदेश करने वाले वसिष्ठ और विश्वामित्र से जामदग्न्य कहते हैं कि आप सब पूज्य जनों के व्यतिक्रम (आज्ञोल्लंघन) का मैं प्रायश्चित्त तो कर लूँगा परन्तु क्षत्रियों को निर्बीज करने के लिए प्रारम्भ किये गये इस शस्त्रग्रहण रूप महाव्रत को दूषित नहीं करूँगा।[40]

यहाँ अमर्षभाव व्यंग्य हो रहा है।

राम-लक्ष्मण को देखकर राजा कुशध्वज सोचने लगते हैं कि स्वभावतः पवित्र शोभाधारी ये दोनों कौन हैं ? मुझे ऐसा लग रहा है कि ये दोनों क्षत्रियकुमार हैं जिनका उपनयन संस्कार हो चुका है।[41] क्षत्रिय जाति, ब्रह्मचर्य आश्रम और बाल्यावस्था की कितनी अच्छी रमणीय मूर्ति हैं।[42]

यहाँ वितर्क, हर्ष और औत्सुक्य भावों की व्यञ्जना हो रही है।

जामदग्न्य के परुष वचनों को सुनकर राजा जनक आवेगपूर्वक कहते हैं कि अधिक क्या कहें ? हमारा यह धनुष कवच ग्रहण करने के लिए विकृत यमराज के मुख का अनुकरण करने वाला हो जाये, जिसकी प्रत्यञ्चा रूपी जीभ से समुन्नत कोटिरूप दन्त लिपटे हुए हैं और जिससे मेघ जैसा शब्द हो रहा है।[43]

यहाँ उग्रता भाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम के द्वारा व्यापादित ताटका को देखकर लक्ष्मण कहते हैं कि हृदय मर्म का भेदन करने वाले भयंकर बाणों के वेग से तत्क्षण अङ्ग कट रहे हैं और दोनों नासिकाविवरों से एक साथ बुलबुले के रूप में खून गिर रहा है। लो यह मृत्यु को प्राप्त हो गई।[44]

यहाँ मरण भाव की व्यञ्जना हो रही है।

सर्वमा राक्षस से सिद्धाश्रम के वृत्तान्त को सुनकर माल्यवान् कहते हैं कि जिसने पर्वत सदृश मारीच को तृणवत् परास्त कर दिया। ताटका और सुबाहु का भी संहार कर दिया, वह राजपुत्र हृदय में चुभ रहा है।[45] देवताओं के पराक्रम के सार के द्वारा जिसे ब्रह्मा ने बनाया, उस शैव धनुष को राम ने तोड़ दिया और कृशाश्व शिष्य विश्वामित्र से विजयप्रद अस्त्रविद्या की शिक्षा भी राम को प्राप्त हो गई है।[46] राम के मनुष्य होने से क्या ? उसके चरित को तो देवता और असुर भी गाते हैं। ऋषि और देवगण वस्तुओं में तर्कातीत शक्ति उत्पन्न कर देते हैं और वरदान के समय में ब्रह्मा ने भी मनुष्य से ही हमारे भय की बात कही थी।[47]

यहाँ असूया भाव की व्यञ्जना हो रही है।

हनुमान् प्रणामपूर्वक राम से कहते हैं कि हे महाराज ! मेरे द्वारा आपका समाचार सुनकर हृदय में आपके चरित का ध्यान करते हुए जटा-

धारी वल्कलवस्त्र पहने अमृततुल्य आपका नाम लेते हुए समस्त प्रजा से सानन्द अनुयात भरत चल पड़े हैं।[48]

यहाँ हर्ष भाव की व्यञ्जना हो रही है।

रावणादि राक्षसों की विपत्ति को देखते हुए माल्यवान् कहते हैं हा वत्स खरदूषण त्रिशिरा ! मैं तुम्हारे मरण की बात सोचा करता हूँ। हा वत्स विभीषण ! कार्यवश तुम्हें भी छोड़ देना पड़ रहा है। हा वत्स रावण तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा संकट देख रहा हूँ। हा वत्सले केकसि ! तुम थोड़े ही दिनों में अपने तीन पुत्रों को नहीं देख सकोगी।[49]

यहाँ विषादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

जामदग्न्य श्रीराम से कहते हैं कि क्षत्रियों के वध से निवृत्त होकर जिस धनुष को मैं लिए रहा वह यह धनुष अब मेरे पास व्यर्थ ही पड़ा है।[50] पुण्य सरोवरों के तट पर दण्डकारण्य में जो अनेक ऋषिजन रहते हैं उन्हें मारने और सताने के लिए वहाँ लंकानिवासी राक्षस घूमा करते हैं उनके विनाश में इस धनुष का उपयोग हो सकता है अतः इस धनुष के साथ इसका भार भी अब तुम्हीं को सौंप रहा हूँ।[51]

यहाँ धृतिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

उद्भ्रान्त एवं प्रमुग्ध युधाजित् कहते हैं कि स्वामी मृत्यु के मुख में और सुतयुगल वन में जा रहे हैं। पुत्रवधू सीता राक्षसों के समक्ष उपहार की तरह प्रस्तुत कर दी गई हैं। लोक निराश्रय हो रहा है। हमारे कुल को अपयश ढक रहा है। हाय, हमारी बहन की दुष्टता ने समस्त संसार को विह्वल कर दिया है।[52]

इसी प्रकार राजा दशरथ अपने प्रियपुत्र राम से कह रहे हैं वत्स रामचन्द्र ! मत जाओ, मत जाओ, हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। चारो ओर अँधेरा छा रहा है। मर्मवेधी पीड़ा हो रही है। नेत्र के समक्ष मुखचन्द्र लाओ। कुछ बोलो। हा पुत्र, सहसा ही मुझपर निर्दय मत बनो।[53]

यहाँ मोहभाव की अभिव्यक्ति हो रही है।

युधाजित् राम से कह रहे हैं अयि वत्स राम ! देखो, सभी एकमत होकर कामधाम छोड़कर तेजी से हाहाकार कर रहे हैं। यह क्या हुआ ? ऐसा कहते हुए नरनारी इधर-उधर दौड़ रहे हैं। यह तुम्हारी समस्त नगरी अन्य प्रकार की हो रही है जिसमें लोगों के रोने से वर्षा तथा पङ्क उत्पन्न हो गया है।[54]

यहाँ त्रासभाव की व्यञ्जना हो रही है।

मृत वाली को देखकर राम कहते हैं कि असाधारण वंश, अनुपमेय परा-

क्रम, यज्ञ तथा चरित्र से युक्त कुलपर्वत के सदृश सार वाले लोगों को भी यह दुरन्तकाल समाप्त कर देता है। यह अत्यन्त ही विषम है।[55]

यहाँ जडताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

क्रुद्ध जामदग्न्य कहते हैं कि क्षत्रियाश्रित इस शतानन्द की गर्जना तो देखो। इससे क्या ? अरे कौशल और विदेह के टुकड़ों पर पलने वाले ब्राह्मणों और सप्तद्वीप तथा कुलपर्वतवासी क्षत्रियों ! मैं कहे दे रहा हूँ जो कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय हमारे तेज को सहन न कर सकने के कारण दर्प से तपस्या अथवा शस्त्र को व्यर्थ में ही व्यय करना चाह रहा हो, करे, परन्तु मैं परशुराम संसार को राम तथा दशरथ से रहित कर भी तृप्त न होकर उनके वंशधरों को समाप्त कर दूँगा।[56]

इसी प्रकार वाली राम से कह रहे हैं कि मेरा चरित संसार विख्यात है उसे वचनों से क्या कहा जाये ? युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। तुम सत्य प्रिय तथा सच्चे मनुष्य हो। शस्त्रों का न होना मेरी विजय में बाधक नहीं होता और यदि तुम शस्त्र के लिए आग्रह करो तो यह पर्वत तो हैं ही। वानर इन्हें भी शस्त्र मानते हैं।[57]

यहाँ चपलताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

मातलि वासव से कह रहा है कि प्रलयकालीन समृद्ध सप्तसागरों की तरङ्गों के परस्पर टकराने के कारण अत्युग्र शब्द के समान राक्षसों के द्वारा यह निर्घोष किया जा रहा।[58]

यहाँ चपलताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम सीता से कह रहे हैं अयि प्रिये सीते ! स्वस्थ होकर लौट जाओ। भय, श्रम तथा लज्जा के संयोग से उत्पन्न इस कम्प को सुन्दर मधूक पुष्प सदृश और लावण्यमय तुम्हारे ये अङ्ग कैसे सहन कर सकेंगे ? और इन कसे हुए स्तनयुगल पर पड़ने वाले श्वास से झुका त्रिवलियुक्त तुम्हारा यह मध्य भाग कहीं टूट न जाय।[59]

यहाँ ग्लानिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

ताटका के वध से खिन्न होकर राक्षस कहता है कि आर्ये ताटके ! यह क्या हुआ ? तुमड़ी पानी में डूब रही है और पत्थर तैर रहे हैं। रावण का प्रताप आज समाप्त हो रहा है। मनुष्य के बालक से यह पराभव प्राप्त हुआ। मैं यहाँ खड़ा-खड़ा स्वजन की मृत्यु देख रहा हूँ बुढ़ापा और दैन्य रोक रहा है।[60]

यहाँ दैन्यभाव की व्यञ्जना हो रही है।

जामदग्न्य महर्षि वसिष्ठ से कहते हैं कि जमदग्नि पुत्र मैं प्रणाम के

पश्चात् विश्वामित्र के सहित आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वृद्धों के अनादर से उत्पन्न पाप की शुद्धि के लिए आप प्रायश्चित्त का उपदेश करें। राम ने हमारा निग्रह कर दिया है। पहले पहल आप ही धर्म के द्रष्टा हुए थे, आप ही से ज्ञान प्राप्त कर मनु आदि ने अनेक प्रकार की स्मृतियाँ बनायीं।[61]

यहाँ व्रीडाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

सम्पाति जटायु से कह रहा है कि राम ने जो चौदह हजार चौदह राक्षस तथा खर-दूषण और त्रिशिरा का जो वध कर दिया है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है फिर भी बहुत भारी शत्रुता का द्वार खुल गया है। इसलिये भाई जटायु इस आड़े समय में तुम क्षण भर भी राम, सीता और लक्ष्मण को न छोड़ना। सोदर बहिन सूर्पणखा के अपमान को दशमुख कैसे सहेगा ? बार-बार अपने बन्धु-बान्धव के वध की वह कैसे उपेक्षा कर देगा ? मदान्ध मायावी, प्रभु, पराक्रमी शत्रु समीप में स्थित है इसलिए हमें कष्ट हो रहा है। बच्चों की ठीक से रक्षा करना।[62]

यहाँ चिन्ताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार षष्ठ अङ्क में चिन्ता करता हुआ माल्यवान् कहता है कि हाय, रावण के अविनय वृक्ष का कोरक चारों ओर फैल-सा रहा है। सीता की चाहना ही इस वृक्ष का बीज है। शूर्पणखा का राम लक्ष्मण की वञ्चना के लिये जाना अंकुर, मारीचकृत माया नवीन पत्ते, सीतापहरण शाखा, अक्षयकुमार का वध और विभीषण की राम से मैत्री ही कोरक हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है इस वृक्ष में शीघ्र ही फल भी लगेंगे।[63]

यहाँ भी चिन्ताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

माल्यवान् त्रिजटा से कह रहा है कि उत्पत्तिपरिपूत रावण की पाप बुद्धि प्रबल भवितव्य को छोड़कर दूसरी ओर नहीं जा रही है। जिस प्रकार सूर्य और उसकी किरण सम्पूर्ण आकाश में घूमकर भी अस्ताचल पर पहुँचती है।[64] इसी प्रकार नेपथ्य से कहा जाता है कि अरे रे लंकाद्वार रक्षक राक्षसों ! शीघ्र ही दरवाजे बन्द करके उनमें लोहे की कीलें डाल दो। उसके ऊपर अस्त्रों को ठीक करके रक्खो। अपने बाल-बच्चों पर ध्यान दो। शान्त स्वभाव वाले बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों की रक्षा करो। खाद्यान्न पर ध्यान दो। सुग्रीवादि वानरों के सहित सानुज राम आ गये हैं।[65]

यहाँ शंकाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम सीता से कह रहे हैं कि हे देवि सीते ! जिस समय रावण आपको लिये जा रहा था उसी समय बेहोशी में आपका यह अनसूया नामांकित उत्तरीय गिर गया था जिसे हमने प्रथम अभिज्ञान के रूप में पाया था। यह

उत्तरीय दृष्टमात्र से ही नेत्रों के लिए चन्द्रमा का प्रकाश, शरीर के लिए कर्पूरधूलि और हृदय के लिये अमृतकुम्भ सेक सा लगा था।[66] लक्ष्मण कहते हैं कि पिता के मित्र गृध्रराज ने पापी रावण का पीछा करके यहाँ पुरातन शरीर को छोड़कर नवीन यश: शरीर को प्राप्त किया था।[67]

यहाँ स्मृतिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम परशुराम से विनम्र निवेदन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मवादी ऋषि-आपके चरणों की वन्दना किया करते हैं। आप विद्या तथा तपस्या में वरिष्ठ हैं। दैवयोग से मैंने जो आपके प्रति अविनय व्यवहार किया उसके लिये मैं करबद्ध क्षमायाचना कर रहा हूँ। आप क्षमा करें और प्रसन्न होवें।[68]

इसी प्रकार जब वसिष्ठ और विश्वामित्र राम की प्रशंसा करते हैं तो दशरथ विश्वामित्र से कहते हैं कि हमारे पूर्वज सूर्यवंशीय दिलीप आदि राजा कुलदेवता की तरह वसिष्ठ की जो आराधना करते थे और तपस्विजनों ने आशीर्वाद प्रदान किये थे उन्हीं सबका फल है कि मंगल के निधान आप हम पर प्रसन्न हैं।[69]

यहाँ अवहित्था भाव की व्यञ्ना हो रही है।

दशरथ राम से कहते हैं–रघुवंशी राजा सदा से सत्यप्रतिज्ञ होते आये हैं। वत्स ! तुम्हें संशय क्यों हो रहा है ? उसके दूत के रूप में जब तुम आये हो तब कौन अपने प्राणों का भी लोभ करेगा ?[70]

राम अपने पिता दशरथ से कहते हैं हे पिताजी ! यदि आप अपनी प्रतिज्ञा को निभाना चाहते हैं और यदि आप राम को प्यार करते हैं तो मँझली माँ की माँग पूरी कीजिये।[71]

यहाँ मतिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

(ख) मालतीमाधव में भावध्वनि

मालतीमाधव प्रकरण में भावध्वनि के अनेक रमणीय स्थल प्राप्त होते हैं। प्रकरण के प्रारम्भ में ही कवि देवाधिदेव महादेव के प्रति भक्तिभाव को प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि शिर पर स्थित माला में विद्यमान नरक-पालों में व्याप्त और नीचे गिरते हुए गंगाजल से युक्त विद्युत्सदृश ललाट पर स्थित लोचनानल की ज्वालाओं से मिश्रित कान्ति वाली, क्या यह कोमल केतकी पुष्प का अग्रभाग है ? इस प्रकार के सन्देह का विषय मुग्धचन्द्र से सम्बद्ध और सर्पलतारूप वलय मालाओं से जिनका समुदाय बाँधा गया है, भूतेश भगवान् शिव की ऐसी जटायें तुम्हारी रक्षा करें।[72]

यहाँ देवविषयक रति की मनोरम व्यञ्जना हुई है।

कवि एवं सहृदय प्रेक्षक आश्रय हैं, आशुतोष भगवान् शिव आलम्बन हैं, मालतीमाधव प्रकरण की निर्विघ्न समाप्ति की कामना उद्दीपन विभाव है, भगवान् शिव के गौरव और महिमा का कथन अनुभाव है। निर्वेद, दैन्य, मोह, आवेग, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे देवविषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

यद्यपि यहाँ कवि ने यह कामना की है कि महादेव की जटायें तुम्हारी रक्षा करें। परन्तु कवि के इस कथन से यह ध्वनित होता है कि वह शिव-प्रीणन के लिये उनकी जटाओं की वन्दना कर रहा है। जटायें भगवान् शिव के शिर पर विराजमान हैं जो उन्हें अत्यधिक प्रिय हैं। उनके स्तवन से आशुतोष भगवान् शिव सहज में ही प्रसन्न हो सकते हैं अतः कवि जटाओं के प्रति प्रणत है। महादेव की जटायें तुम्हारी रक्षा करें। इस कथन से यह भी ध्वनित हो रहा है कि कवि तथा प्रेक्षक उन जटाओं का स्तवन कर रहे हैं। अतः उनके द्वारा स्वरक्षा की कामना कर रहे हैं। इस श्लोक में प्रयुक्त 'त्वाम्' पद भी वक्ता एवं श्रोता दोनों का ही उपलक्षक है। विघ्न विनाशक शिवसुतविनायक की स्तुति करता हुआ कवि कहता है कि भगवान् शिव के ताण्डव नृत्य में नन्दी के हाथों से ताडित पखावज के शब्दों में मेघध्वनि की भ्रान्ति से आये हुये षडानन के मयूर के त्रास से शरीर को सिकोड़ने वाले सर्पराज वासुकि के अपनी रक्षा के लिए गणेश की नासिका के छिद्र में आनन्द-पूर्वक प्रविष्ट होने पर कपोलों से उड़ने वाली भ्रमरपंक्ति से दिशाओं को शब्दायमान करने वाले चीत्कार शब्द से युक्त गणेश के मुख के कम्पन तुम्हारी बहुत समय तक रक्षा करें [78]

यहाँ देवविषयक रति की व्यञ्जना हुई है।

कवि एवं प्रेक्षक आश्रय हैं। विघ्नविनाशक आलम्बन हैं। प्रकरणरत्न की निर्विघ्न समाप्ति की आकांक्षा उद्दीपन विभाव है। गणेश का गौरव एवं महिमा अनुभाव हैं। निर्वेद, दैन्य, मोह, आवेग, मति, स्मृति आदि व्यभि-चारिभाव हैं। इन सबसे देव विषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

यहाँ भी पूर्ववत् कवि एवं प्रेक्षक गणेश को प्रणाम कर रहे हैं और उनसे प्रकरण की रक्षा की कामना करते हैं।

देवविषयक रति की अत्यन्त ही सुन्दर व्यञ्जना सूत्रधार के द्वारा की गई भगवान् भास्कर की आराधना में हो रही है। सूत्रधार कहता है कि समस्त लोकों एवं जम्बू आदि द्वीपों के प्रदीप सदृश भगवान् सूर्य उदित हो चुके हैं, इसलिए आराधना करता हूँ—हे विश्वमूर्ते सूर्यदेव ! आप मंगलरूप तेजों के भाजन हैं इसलिए यहाँ मुझमें समस्त सौख्यों के सम्पादन में समर्थ

सम्पत्ति को पर्याप्त रूप में धारण करावें। हे देव ! आप प्रसन्न हों। हे जगन्नाथ ! मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ। मेरा जो जो पाप हो उसे नष्ट कर दीजिये। हे भगवन् प्रचुर मंगल के लिए कल्याण को निर्विघ्नपूर्वक प्रदान कीजिये।[74]

यहाँ देवविषयक रति की मनोरम व्यञ्जना हुई है।

सूत्रधार आश्रय हैं। भगवान् सूर्य आलम्बन हैं। मङ्गल की आकांक्षा उद्दीपन विभाव हैं। भगवान् सूर्य के गौरव और महिमा का कथन अनुभाव है। निर्वेद, दैन्य, मोह, आवेग, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे देवविषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

कवि ने अपने पूर्वजों के प्रति भी श्रद्धा प्रकट करते हुये लिखा है कि पद्मपुर नामक नगर में तैत्तिरीय शाखा वाले पंक्तिपावन काश्यप गोत्र वाले दक्षिणाग्नि आदि पाँच अग्नियों का आधान करने वाले सोमपायी चान्द्रायणादि व्रत करने वाले उदुम्बर नाम वाले वेद अथवा ब्रह्मतत्त्व को विधिवत् समझने वाले कुछ ब्राह्मण रहते हैं।[75] वे क्षेत्रीय ब्राह्मण तत्त्व निर्णय के लिए अधिक शास्त्रश्रवण का यज्ञादि अनुष्ठान और तड़ागादि निर्माण कार्य के लिए धनों का, सन्तान के लिए पत्नी का और तपस्या के लिए आयु का नित्य आदर करते हैं।[76]

यहाँ पूज्य पितृजन विषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

कवि भवभूति आश्रय हैं। उनके पितृजन आलम्बन हैं। निर्विघ्न प्रकरण की मङ्गल समाप्ति की कामना उद्दीपन विभाव है। पूर्वजों के गौरव एवं महिमा का कथन अनुभाव है। हर्ष, धृति, मति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे पितृजन विषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

कवि की गुरुविषयक रति की व्यञ्जना उसके इस कथन में हो रही है कि प्रकाशित किये जाने वाले सज्जनों के गुणों से मेरा कौन सा गुण प्रकाशित न होगा ? क्योंकि मेरे यथार्थ नाम वाले भगवान् ज्ञाननिधि गुरुदेव हैं।[77]

पञ्चम अङ्क में कपालकुण्डला और अघोरघण्ट भगवती चामुण्डा को प्रणाम करते हुए कहते हैं कि हे देवि ! दर्पयुक्त निशुम्भ नामक नृत्य विशेष में त्वरा से नीचे झुकने वाले पृथ्वीमण्डल के निष्पीडन से जिसकी पीठ की हड्डी अवनत हो रही है ऐसे कच्छप के कम्प से जिसमें ब्रह्माण्ड की स्थिति खण्डित होने जा रही है, पाताल के सदृश कपोलछिद्रों में जिसमें सात समुद्र प्रक्षिप्त किये गये हैं, आनन्दित नीलकण्ठ की सभा में प्रसिद्ध ऐसी तुम्हारी क्रीडा की वन्दना कर रहा हूँ।

हे देवि ! नृत्य में अङ्गविक्षेप सम्भ्रम से विक्षिप्त उत्तरीय हस्तिचर्म के

पर्यन्त भाग में चञ्चल नखों के आघात से विदीर्ण चन्द्रमा से निस्यन्दमान अमृत के क्षरण से जीवन को प्राप्त करने वाले मुण्डमाला में ग्रथित कपालों की पंक्ति से छोड़े गये अट्टहासों से भयातुर प्रचुर प्रमथों की स्तुति का जिसमें आरम्भ हो रहा है, ताण्डव के आडम्बर के आयास श्वास छोड़ने वाले कृष्ण वर्ण भुजङ्गों के शरीर से केयूर बन्धनों के निष्पीडन से विशाल और विकसित फणापीठों से निःसृत विष तेज के उद्वर्धन से भयंकर व्यस्त और फैलने वाली भुजाओं के समूह से पर्वत चारों ओर फेंके गये हैं, जलते हुए अग्नि से पीले नेत्र के किरण प्रवाहों के समूह से भयङ्कर शिर के मण्डलाकार वाला भ्रमर अग्नि प्रज्वलित काष्ठ की चक्राकारक्रिया के सदृश प्रतीत हो रहा है जिससे दिङ्मण्डल गुम्फित की तरह प्रतीत हो रहे हैं। ध्वज के सदृश उन्नत खट्वाङ्ग नामक आयुध के अग्रभाग के उत्कम्प से तारागण विशीर्ण हो गये हैं। नृत्य में हर्षित कटपूतना नामक पिशाच और उत्ताल वेताल के तालों के तालों से विदीर्ण होने वाले कर्णों से युक्त अतएव भयाकुलित अथवा शीघ्रता करने वाली पार्वती के गाढ़ आलिङ्गन से प्रसन्नचित्त वाले महादेव को आनन्दित करने वाला इस प्रकार का आपका ताण्डव हम लोगों के अशुभ के अभाव के लिए और हृष्टि (हर्ष) के लिए हो।[78]

यहाँ देवविषयक रति की रमणीक अभिव्यञ्जना हुयी है।

कपालकुण्डला और अघोरघण्ट आश्रय हैं। भगवती चामुण्डा आलम्बन हैं। अभीष्ट मनोरथ की प्राप्ति की कामना उद्दीपन विभाव है। भगवती चामुण्डा के महिमा और गौरव का कथन अनुभाव है। मोह, दैन्य, धृति, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे भगवती चामुण्डाविषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

नवम अङ्क में भगवान् भवानीपति सुवर्णबिन्दु को प्रणाम करती हुयी सौदामिनी कह रही है–लोकों की उत्पत्ति करने वाले हे देव! आपकी जय हो, सभी को वर देने वाले वेदों के निधान हे भगवन्! आपकी जय हो। रुचिर चन्द्र को शिरोभूषण बनाने वाले हे देव! आपकी जय हो। कामदेव का संहार करने वाले हे देव! आपकी जय हो। हे आदिगुरो! आपकी जय हो।[79]

यहाँ भी देवविषयक रति की सुन्दर व्यञ्जना हो रही है।

सौदामिनी आश्रय हैं। देवाधिदेव महादेव आलम्बन हैं। अभीष्ट प्राप्ति की कामना उद्दीपन विभाव है। भगवान् शिव के गौरव और महिमा का कथन अनुभाव है। दैन्य, मोह, मति, स्मृति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे भगवान् शिव विषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

दुःख का अनुभव करता हुआ माधव कहता है–मालती के साथ माधव का इतना ही लोकव्यवहार है।[80] उसे अपना जन्मसाफल्य सभी प्रकार से शङ्कायुक्त लगता है। इसलिए वह विचार करता है कि सम्प्रति उसे क्या करना चाहिए ? बहुत कुछ सोच विचार कर संसार के प्रति उदासीन होता हुआ माधव विचार करता है कि उसे अब देवाराधन के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य को नहीं करना चाहिए।[81]

यहाँ माधव के निर्वेदभाव की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार जब मालती को यह ज्ञात होता है कि उसका विवाह नन्दन के साथ होगा तो वह इस विपत्ति से स्वयं को ही धिक्कारने लगती है। वह कहने लगती है कि सम्प्रति जीवन की तृष्णा का फल समाप्त हो गया। दुष्ट भाग्य के भीषण कर्म का परिपाक सम्पन्न हो गया है।[82]

यहाँ मालती के निर्वेद भाव की व्यञ्जना हो रही है।

उत्कण्ठित मकरन्द कहता है कि आर्द्र प्रहार वाले मुझको देखकर अपने स्तनों से गिरते हुए उत्तरीय की अपेक्षा न कर भयभीत एक वर्ष के मृग-शावक के सदृश चञ्चल नेत्रों से युक्त मदयन्तिका ने अमृत से मिश्रित की तरह अवयवों से मेरा जो आलिंगन किया वह मेरे चित्त को अब भी सम्मोहानन्द से युक्त कर रहा है।[83]

यहाँ मद एवं हर्ष भावों की व्यञ्जना हो रही है।

माधव कहता है कि निश्चयात्मक ज्ञान का अतिक्रमण करने वाला समस्त वचनों का अविषय पुनर्जन्म तथा इस जन्म में भी जो अनुभव का विषय नहीं हुआ, विवेक के विनाश से बढ़े हुए महामोह से विषम कोई अनिर्वचनीय विकार अन्तःकरण को जड़ बना रहा है और तीव्र ताप को उत्पन्न कर रहा है।[84]

यहाँ जडता और व्याधिभावों की व्यञ्जना हो रही है।

माधव अपने मित्र मकरन्द से कहता है कि सम्प्रति मैं मालती के रूप को चित्रित करने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ, उत्पन्न अश्रुप्रवाह नेत्रों को पुनः पुनः आवृत कर देता है। प्रिया मालती की चिन्ता से कार्य में असामर्थ्य को प्राप्त करने वाला शरीर स्तब्ध हो रहा है। यह हाथ चित्र लिखने की क्रियाओं में तत्क्षण पसीना आ जाने से और अनवरत काँपने से चञ्चल उँगलियों से युक्त हो जाता है, मैं क्या करूँ ?[85]

यहाँ माधव के इस कथन में जडता, दैन्य, व्याधि, चिन्ता, वितर्क आदि भावों की व्यञ्जना हो रही है।

माधव अपने मन में विचार करता है कि चन्द्रसदृश मुग्ध मुख वाली

उस मालती का बहुत समय तक चिन्तन करके मेरा चित्त असमय में ही मन्द विवेक वाला होकर लज्जा को जीतकर विनय को हटाकर और धैर्य को उन्मीलित कर पुनः लौट आया है।[86]

यहाँ उद्वेग, उन्माद एवं जडता आदि भावों की व्यञ्जना हो रही है।

मालती अपनी सखी लवङ्गिका से नेत्रों में आँसू भरकर कह रही है—असह्य और प्रमथनशील मनोरोग विष के सदृश अविरत व्याप्त हो रहा है। धूम से रहित कम्पित अग्नि के सदृश जल रहा है और गुरुतर ज्वर के सदृश प्रत्येक अंग को भीतर और बाहर पीड़ित कर रहा है मेरी रक्षा करने के लिए न पिता, न माता और न आप ही समर्थ हैं।[87]

यहाँ व्याधिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

मालती कहती है कि प्रत्येक रात्रि में गगन में सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होकर चन्द्रमा प्रज्ज्वलित हो और कामदेव दाह करें। ये लोग मृत्यु से अधिक क्या करेंगे ? मेरे तो पिता प्रिय और प्रशंसनीय हैं। माता निर्मल वंश में उत्पन्न और प्रिय हैं। इसी प्रकार वंश भी निष्कलङ्क और प्रिय हैं परन्तु ये जन माधव और अपना जीवन प्रिय नहीं है।[88]

यहाँ दैन्यभाव की व्यञ्जना हो रही है।

कामन्दकी मालती को देखकर कहती है कि आर्द्र कदली के भीतरी भाग के सदृश मनोहर कृश अङ्गों वाली कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमूर्ति के सदृश नेत्रों को आनन्द देने वाली कल्याणी मालती हम लोगों के चित्त को अतिशय आह्लादित कर रही हैं और कामाग्नि के उत्कट दाह से विह्वल अवस्था को प्राप्त होती हुई मन को कम्पित भी करती है।[89]

यहाँ हर्ष और विषाद भावों की व्यञ्जना हो रही है।

वियोग से व्यथितमानस माधव को देखकर मकरन्द कहता है कि इन माधव का तो गमन आलस्ययुक्त, दृष्टिशून्य, शरीर प्रसाधन के सौन्दय से रहित और श्वास निश्चित मात्रा से अधिक चल रहा है। यह क्या है ? अथवा इससे भिन्न क्या होगा ? लोक में कामदेव की आज्ञा विचरण कर रही है। यौवन विकारपूर्ण है, सुन्दर और प्रिय वे चन्द्र आदि प्रसिद्ध पथार्थ धैर्य को हटा रहे हैं।[90]

यहाँ मोह भाव की व्यञ्जना हो रही है।

माधव अपने प्रियमित्र मकरन्द से कह रहा है कि सम्प्रति सम्मुख स्थित विषय में भी निश्चय की अभिव्यक्ति नहीं हो रही है, पुनः पुनः अनुभूत पदार्थ में भी अतथाभाव से विपर्यस्त स्मरण हो रहा है। हिम, वापी और चन्द्रमा में भी सन्ताप का नाश नहीं हो रहा है। मन स्थितिशून्य होता

हुआ भ्रमण कर रहा है और किसी अनिर्वचनीय पदार्थ का आश्रय ले रहा है।[91]

यहाँ माधव के उन्माद भाव की व्यञ्जना हो रही है।

नवम अङ्क में तो माधव की उन्माद अवस्था चरम सीमा पर ही पहुँच जाती है। वह मेघ से अपनी प्रियतमा मालती तक सन्देश ले जाने के लिए कहता है। इसके लिए वह हाथ जोड़कर मेघ की प्रशंसा भी करता है।[92] मेघ से कहता है कि हे मेघ ! जगत् में विचरण करते हुए यदि तुम भाग्यवश मेरी प्रियतमा मालती को देखना तो सर्वप्रथम उसको आश्वासन देकर उसके पश्चात् माधव की अवस्था को कहना। कहने वाले तुम्हें उसके आशासूत्र का उच्छेद नहीं करना चाहिए क्योंकि विशाललोचना मालती का केवल वह आशासूत्र ही प्राणों की रक्षा कर रहा है।[93] मेघ के चले जाने पर वह मालती की दूसरे स्थान में सम्भावना करता है। उसका उन्माद भाव बढ़ता ही जाता है। उसे ऐसा लगता है कि उसकी प्रियतमा मालती की नवीन लोध्रपुष्पों में कान्ति, मृगों में निरीक्षण, गजों में गति और लताओं में नम्रता, इस प्रकार वन में मथन कर स्पष्ट रूप से विभक्त कर दिया गया है।[94] वह पर्वत और वन में रहने वाले प्राणियों को प्रणाम कर कहता है कि आप लोग कुछ समय तक एकाग्रता का अवलम्बन कर मुझे अनुगृहीत करें। यहाँ निवास करने वाले आप लोगों ने शरीर के समस्त अवयवों में स्वाभाविक सौन्दर्य रखने वाली कुलवधू मालती को देखा है क्या ? अथवा उसका क्या हुआ ? जाना है। हे मित्रों ! आप लोग उसकी अवस्था के विषय में सुनें। जिस वय में कामदेव हृदय में प्रौढ़ क्रिया वाले होकर शरीर में अप्रौढ़ होकर विचरण करते हैं वही उसकी अवस्था है।[95] जब उसकी ओर कोई वन्य प्राणी ध्यान नहीं देता है तो वह वन्यप्राणियों को देखकर कहता है कि ताण्डवनृत्य के कारण पिच्छभार को ऊँचा करने वाला मयूर अपनी वाणियों से मेरी वाणी को तिरोहित कर रहा है। मदनमद से जिसकी कनीनिका घूम रही हैं ऐसा चकोर पक्षी हृदय में उत्पन्न हर्ष से प्रियतमा चकोरी का अभिसरण कर रहा है। कृष्ण मुख वानर फल के पराग से प्रिया के कपोल को चर्चित कर रहा है। अतः मैं किससे प्रार्थना करूँ ? मेरी याचना यहाँ अप्रसङ्गग्रस्त है।[96] इसी प्रकार वह वन्यगज के अभिसरण को देखता है।[97] मत्त माधव वन्यगज से मित्र मकरन्द के सदृश वचन बोलता है परन्तु जब उसे कुछ प्रत्युत्तर नहीं मिलता है तो वह निराश हो जाता है।[98]

यहाँ उन्मादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

षष्ठ अङ्क में मालती बकुलमाला को अपने गले से उतारकर माधव के

हृदय में पहनाती हुई सहसा हटकर भयजनित कम्प का अभिनय करती है जिससे माधव हर्ष का अनुभव करता है। उस समय मालती कहती है अहो, लवङ्गिका ने मालती को प्रतारित किया है।[99]

यहाँ वस्तुतः मालती हृदय से माधव को चाहती है अतः उन्हें बकुल-माला को पहनाती हुई वह अन्तरात्मना प्रसन्न है परन्तु लज्जा के कारण वह यह कहती है कि उसे लवङ्गिका ने प्रतारित किया है। इस प्रकार लज्जा के कारण आकारगुप्ति होने से यहाँ अवहित्था भाव की व्यञ्जना हो रही है।

सप्तम अङ्क में बुद्धरक्षिता मदयन्तिका के शरीर का स्पर्श करती हुई कहती है—अस्वस्थ शरीर वाली मदयन्तिके ! कुछ भी कहने से क्या लाभ ? तुमने अपने शरीर से मकरन्द के समागम में उत्कण्ठा दिखलाई है। इस पर मदयन्तिका लज्जा के साथ कहती है सखि ! तुम दूर रहो, दूर रहो। सहवासिनी मालती से रोमाञ्चित हो गई हूँ।[100]

यहाँ मदयन्तिका वस्तुतः मकरन्द के स्मरण से उद्भूत आनन्द से रोमाञ्चित हो जाती है परन्तु वह नारीजनोचित लज्जा के कारण अपने भाव को छिपाती हुई बुद्धरक्षिता से कहती है कि मैं सहवासिनी मालती से रोमाञ्चित हो गई हूँ, अतः लज्जा के कारण आकारगुप्ति होने से अवहित्था भाव की व्यञ्जना हो रही है।

कामन्दकी कहती है कि मुझसे मालती की धात्रेयी लवङ्गिका ने कहा है कि जिस प्रकार रति नूतन शरीरधारी कामदेव को देखती है उसी प्रकार भवन के छत के ऊँचे झरोखे के समीप स्थित मालती नगर के समीपवर्ती मार्ग से बार-बार पर्यटन करते हुए माधव को देखकर गाढ़ उत्कण्ठा से युक्त होकर अत्यधिक कम्पित अङ्गों से म्लान हो जाती है।[101]

यहाँ औत्सुक्यभाव की व्यञ्जना हो रही है।

माधव मालती के प्रति उत्सुकता को प्रकट करता हुआ कहता है कि अनुराग से सरस, प्रकृष्ट प्रेम का आश्रय करने वाले परिचय से प्रगाढ़ अनुराग के आविर्भाव वाले स्वभावतः मुग्ध मालती को पूर्वानुभूत कटाक्षादि चेष्टायें पुनः पुनः मेरे ऊपर हो गयीं।[102] प्रिया मालती मेरे कर्णमूल में मुखमण्डल को स्थापित करें और वासन्ती पुष्पों से गुम्फित बकुलमाला के निरन्तर अधिवास से सुरभित सौभाग्ययुक्त मनोहर पयोधरों को मेरे वक्षःस्थल पर स्थापित करें। इस प्रकार मैं उनके अंगों से अपने अंगों का विनिमय भी प्राप्त करूँ।[103]

यहाँ औत्सुक्यभाव की व्यञ्जना हो रही है।

मालती को देखकर हर्षित माधव इस प्रकार कहता है कि अहो, मैं धन्य

हूँ जो कि अतर्कित रूप से मुझे देखकर ये मालती आनन्द प्राप्त कर रही हैं। इन्होंने तो मुझे जैसे पौण्डरीकमाला से बाँध लिया है। अतिशय दुग्धप्रवाह से मानों स्नान करा दिया है। विस्तारित नेत्रों के द्वारा मुझे पूर्णरूप से ग्रास कर लिया है और गाढ़ अमृतवर्षी मेघ से जैसे हठात् सेचन कर दिया है।[104]

माधव अपने प्रिय मित्र मकरन्द से मालती के अमृततुल्य वचनों को श्रवण कर इस प्रकार कहता है कि मैंने भी सौभाग्य से मुरझाये हुए जीवन-रूपी पुष्प के विकास जनक उत्तम तृप्ति के उत्पादक समस्त इन्द्रियों के लिए मोहक आनन्दजनक और हृदय के एकमात्र रसायन तुल्य मालती के वचन रूप अमृतों को प्राप्त कर लिया।[105]

यहाँ हर्षभाव की व्यञ्जना हो रही है।

जिस समय बुद्धरक्षिता मकरन्द से कहती है कि प्रियसखी ने अपने शरीर को स्वयं ही आपको दे दिया है, उस समय हर्षानुभव करता हुआ मकरन्द कहता है कि आज मैंने विजय प्राप्त कर ली है। आज मेरे सफल यौवन का उत्सव है जो कि प्रसन्नता से सुन्दर मुख वाले मकरध्वज ने मेरे इस बन्धु-कार्यभार को धारण किया है।[106]

यहाँ हर्षभाव अभिव्यक्त हो रहा है।

कामन्दकी सौदामिनी से कह रही है भूरिवसु को जीवनदान करने से पुण्यसमूह को धारण करने वाली सौदामिनि ! आओ, आओ। अहो, तुम बहुत काल के पश्चात् देखी गई हो, प्रमोदयुक्त मेरे शरीर का आलिङ्गन कर आनन्दित करो। हे सौहार्द्रनिधे ! प्रणाम से निवृत्त होओ।[107]

यहाँ भी हर्षभाव की व्यञ्जना हो रही है।

नवम अङ्क में खिन्नचित्त मकरन्द माधव से कहता है कि हम लोगों का चित्त विपत्ति में मालती को प्राप्त करने की आशा नहीं करता है और न उस आशा का परित्याग ही करता है। केवल अज्ञानरूप गाढ़ अन्धकार में प्रवेश करता है। इस प्रकार के ये हम लोग भाग्य की प्रतिकूलता से कुछ भी नहीं करते हुए पशुओं के सदृश होकर विपत्ति में पड़े हुए हैं। अहो, दुःख है।[108] माधव मालती को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हा प्रिये मालति ! तुम कहाँ हो ? मेरे ऊपर क्यों प्रणयशून्य हो गयी हो। अरी ! मैं वही हूँ जिसे पहले सुन्दर कङ्कण को धारण करने वाले मूर्तिमान् महोत्सव के सदृश तुम्हारे हाथ ने स्वयं आनन्दित किया था।[109]

यहाँ विषादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

माधव अघोरघण्ट को ललकारता हुआ कहता है कि अरे रे पापी ! प्रणय युक्त सखीजनों के परिहास में राग से प्राप्त कोमल शिरीष पुष्पों के प्रहारों

के द्वारा भी जिस मालती का शरीर म्लान हो जाता है उसी शरीर में मारने के लिए शस्त्र गिराने वाले तुम्हारे शिर पर सहसा गिरने वाला यमदण्ड के सदृश यह मेरा भुजदण्ड चले ।[110]

यहाँ उग्रताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार अघोरघण्ट माधव को ललकारता हुआ कहता है अरे ब्राह्मण बालक, पापी ! व्याघ्र से आक्रान्त मृगी में दया से आकुल मृग के सदृश तुम हिंसा में रुचि रखने वाले अतएव बलिदान के करने के स्थान की सेवा करने वाले मेरे विषय को प्राप्त हो गये हो। अतः मैं खड्ग के आघात से स्कन्ध-रहित कबन्ध के छिद्र से रक्तसमूह की वृष्टि करने वाले तुम्हारे द्वारा ही मालती के पहले प्रमथगणों की माता कराला देवी को प्रसन्न करता हूँ।[111]

यहाँ भी औग्र्य भाव की व्यञ्जना हो रही है।

पञ्चम अङ्क में माधव और अघोरघण्ट क्रमशः मालती और कपाल-कुण्डला से कह रहे हैं कि अयि भीरु ! हृदय में धैर्य रक्खो, यह पापी मारा जायेगा। कभी भी किसी ने भी मृग के संहार की विधि में हाथियों के मस्तक-पिण्डों को मर्दित करने वाले वज्र के सदृश हाथ से युक्त सिंह के प्रमाद का अनुभव किया है क्या ?[112]

यहाँ गर्वभाव की व्यञ्जना हो रही है।

कपालकुण्डला मालती से कहती है—तपस्वी अघोरघण्ट का हत्यारा तेरा प्रिय माधव कहाँ है ? कुमारीदूषक वह पति आकर तेरी रक्षा करे। अयि मालति ! वाज के आक्रमण से भीत मुखवाली मादा बटेर की तरह तुझे मैंने ग्रास कर लिया है, तू क्या नहीं देख रही है।[113]

यहाँ भी गर्वभाव की व्यञ्जना हो रही है।

माधव मालती के विषय में शङ्का करता हुआ कहता है कि कुवलयाक्षी मालती के अनिष्टमात्र की आशंका करने वाला मेरा अन्तःकरण अविरत कम्पित हो रहा है और वामनेत्र भी फड़क रहा है। आप दोनों का भी, मालती कहाँ है, यह वचन दुःखजनक है। हाय, सभी प्रकार से मैं हतप्राय हो गया हूँ।[114]

यहाँ शंकाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

मालती के लिए अधीर माधव कहता है हाय, चण्डि मालती ! कहने के लिए अयोग्य जो मङ्गलों से भिन्न है, मैं उसी की शङ्का कर रहा हूँ, अब परिहास मत करो, मैं अत्यधिक उत्कण्ठित हूँ। हा प्रिये ! क्या तुम मुझे जानना चाह रही हो ? मैं तुमसे जाना गया हूँ, उत्तर दो। मेरा शंकित हृदय बीच में घूम रहा है, तुम निर्दय हो।[115]

यहाँ भी शंकाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

माधव कामव्याधि से पीड़ित मालती के विषय में कह रहा है कि उसके हस्तपादादि अवयव परिमर्दित छोटी कमल की डण्डी के सदृश म्लान हैं, भोजनादि क्रियाओं में परिजनों की प्रार्थनाओं से उसकी प्रवृत्ति बड़ी कठिनाई से होती है और सद्यः काटे गये करिदन्त सदृश उसका सुन्दर कपोल कलंक से रहित चन्द्रमा की शोभा को धारण कर रहा है।[116]

यहाँ मालती के व्याधिभाव की व्यञ्जना हो रही है तथा माधव की ग्लानि भी प्रकाशित हो रही है।

अत्यधिक दुःख का अनुभव करता हुआ माधव कहता है कि मालती के साथ माधव का इतना ही लोकव्यवहार है। हाय, दुर्भाग्य पहले मित्र की तरह सुख देने वाली केवल प्रेमयुक्त अनुकूलता को प्रकाशित करके बाद में अनवसर में परिवर्तन से कठोर होता हुआ मन के दुःख को अत्यधिक बढ़ा रहा है।[117]

यहाँ ग्लानिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

नवम अङ्क में मकरन्द अपने प्रिय मित्र माधव को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि जो तुम मेरे शरीर के अवयवों में चन्दनरस, नेत्रों में शरत्काल के चन्द्र और हृदय में आनन्दरूप थे, मेरे जीवन के सदृश अतिशय सुन्दर उस प्रकार के तुम्हें अनवसर में ही उन्मूलित करने वाले समय के द्वारा मैं हत-प्राय हो रहा हूँ।[118]

यहाँ ग्लानिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

तृतीय अङ्क में कामन्दकी और माधव कहते हैं कि अहो, हम लोग दूर हैं; बेचारी कन्या व्याघ्र की चपेट में आ गई हैं परन्तु इसी बीच में वे देखते हैं कि सहसा आयुध के सहित मकरन्द वहाँ आ जाता है वह प्रचण्ड व्याघ्र मकरन्द को दृढ़ता के साथ आहत कर देता है परन्तु मकरन्द भी उसे निष्प्राण कर डालता है।[119]

यहाँ मरणभाव की व्यञ्जना हो रही है।

षष्ठ अंक में मालती लवङ्गिका से कहती है कि जिस कारण से आशा उत्पन्न करने वाली वचनों की रचनाओं से इस शरीर को जीवित कराकर मुझे अत्यधिक निन्दित उद्योग का अनुभव कराया है इस समय मेरा अभिलाष इतना ही है कि उन महानुभाव के अधीन होने से नन्दन के साथ विवाह का उपक्रम होने से अपराधी शरीर का परित्याग कर निर्वृत हो जाऊँगी।[120]

यहाँ विषादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

(ग) उत्तररामचरित में भावध्वनि

उत्तररामचरित नाटक महाकवि भवभूति की उत्कृष्टतम नाट्यकृति है। इसमें मधुर नाट्य रस धारा प्रवाहित हुई है। स्वाभाविक एवं मधुर रस-योजना के साथ ही साथ इसकी भाव-योजना भी सर्वथा स्पृहणीय है। यहाँ हम भावध्वनि के कतिपय स्थल प्रस्तुत कर रहे हैं–

कवि नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए पुरातन वाल्मीकि, व्यास आदि कवियों को प्रणाम कर यह कामना करता है कि वह ब्रह्मा की अंश-भूता सनातनी देवी वाणी (सरस्वती) को प्राप्त करें।[121]

यहाँ देवमुनि विषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

महर्षि वसिष्ठ के प्रति हार्दिक श्रद्धा अभिव्यक्त करते हुए श्रीराम कहते हैं कि लौकिक सत्पुरुषों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है परन्तु पुरातन ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ स्वयं चलता है।[122]

यहाँ आश्रय महर्षि वसिष्ठ हैं। आलम्बन श्रीराम हैं। महर्षि वसिष्ठ के द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद अनुभाव है। हर्ष आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार मुनिविषयक रति की सुन्दर व्यञ्जना हो रही है।

पवित्र पुण्यसलिला भगवती भागीरथी को प्रणाम करते हुए भगवान् राम कहते हैं–हे भगवति ! भगीरथ ने शरीर के कष्ट की चिन्ता न करते हुए तपस्या करके सगर के यज्ञ में अश्व के अन्वेषण में संलग्न पृथ्वी को खोदने वाले क्रोध से कपिल मुनि के तेज से जले हुए पिता दिलीप के पितामहों (सगरपुत्रों) को आपके जल के स्पर्श से बहुत दिनों के पश्चात् उद्धार किया था।[123]

यहाँ आश्रय भगवती भागीरथी हैं। आलम्बन श्रीराम हैं। श्रीराम द्वारा भागीरथी के गुणों की प्रशंसा करना अनुभाव है। हर्ष आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार देवविषयक रति की व्यञ्जना हो रही है।

पुत्री विषयक रति अथवा वात्सल्य की व्यञ्जना राजा जनक[124] एवं अरुन्धती[125] के द्वारा सीता को लक्ष्य कर कहे गये वचनों में मिलती है।

सीता को लक्ष्य कर राम कहते हैं– अयि कोपने सीते ! इधर-उधर दिखलाई तो दे रही हो परन्तु कृपा नहीं कर रही हो। हाय हाय देवि ! हृदय टुकड़ा-टुकड़ा हुआ जा रहा है। शरीर के जोड़ टूटे जा रहे हैं। संसार शून्य सा लग रहा है। अनवरत घनी लपटों से अन्दर ही अन्दर जल रहा हूँ। अवसन्न होकर प्रियतमा रहित अन्तरात्मा मानों प्रगाढ़ अन्धकार में डूब रही है। मूर्च्छा चारों ओर से आवृत कर रही है। मन्दभाग्य वाला मैं क्या करूँ ?[126]

यहाँ हृदय टुकड़ा-टुकड़ा हुआ जा रहा है, इस कथन के द्वारा विषाद भाव की व्यञ्जना हो रही है। देहबन्धन शिथिल हो रहा है, इस कथन के द्वारा व्याधि की, समस्त संसार को शून्य समझ रहा हूँ, इस कथन के द्वारा निर्वेद की, शरीर के अन्दर अविच्छिन्न ताप से जल रहा हूँ, इस कथन के द्वारा चिन्ता जनित दाह की, प्रियतमा से रहित अन्तरात्मा अवसन्न होकर मानों प्रगाढ़ अन्धकार में डूब रहा है, इस कथन के द्वारा मोह की, मन्दभाग्य वाला में क्या करूँ ? इस कथन के द्वारा दैन्य की व्यञ्जना हो रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ विषाद, व्याधि, निर्वेद, चिन्ता, ग्लानि, मोह और दैन्य भावों की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

राम सीता को लक्ष्यकर कहते हैं कि हे सुमुखि सीते ! यह वह समय सा लग रहा है जिसमें शतानन्द से समर्पित कमनीय कंकण से अलंकृत इस तुम्हारे पाणि-पल्लव ने मूर्तिमान् महोत्सव की तरह मुझ आनन्दित किया था।[127] राम कहते हैं कि अयि सीते ! इस स्थान को भला कैसे भुलाया जा सकता है जहाँ तुम मार्ग में चलने के परिश्रम से आलस्ययुक्त कोमल और सुन्दर दृढ़ आलिंगनों से दाबे गये मर्दित कमलनाल के सदृश दुर्बल अंगों को मेरे वक्ष:स्थल पर रखकर सो गई थी।[128]

पर्वत की नदियों के तटों पर वानप्रस्थों से आश्रित वृक्षों वाले ये तपोवन हैं जिनमें अतिथि सत्कार में तत्पर मुट्ठी भर नीवार धान्य को पकाने वाले संयमी गृहस्थ घरों में निवास करते हैं।[129]

हे सुतनु सीते ! उस पर्वत पर लक्ष्मण के द्वारा की गयी परिचर्या से प्रसन्न हम दोनों के उन दिनों का स्मरण कर रही हो ? अथवा वहाँ सुस्वादु जल वाली गोदावरी का स्मरण कर रही हो अथवा गोदावरी के किनारों पर हम दोनों के रहने का स्मरण कर रही हो।[130]

अनुराग के आधिक्य से कपोलों को मिलाकर कुछ-कुछ धीरे-धीरे बिना क्रम के बातचीत करते हुए एक-एक बाहु को गाढ़ आलिंगन में लगाते हुए हम दोनों की बिना जाने ही व्यतीत हुए प्रहरों वाली रात्रि भी बीत जाया करती थी।[131]

यहाँ स्मृति भाव ध्वनि की व्यञ्जना हो रही है।

सुमन्त्र लव को देखकर चन्द्रकेतु से कहते हैं—कुमार देखो, देखो। यह वीर बालक आपके द्वारा ललकारने पर सेना के विनाश कार्य से उसी प्रकार निवृत्त हो गया है जिस प्रकार दर्पयुक्त सिंह शावक मेघ के शब्द को सुनकर हस्तिसमूह के मर्दन से विरत हो जाता है।[132]

यहाँ लव के देखने से सुमन्त्र में सम्भ्रम उत्पन्न हुआ है अतः आवेग भाव

की व्यञ्जना हो रही है।

विद्याधर कहते हैं कि तो क्या आज निश्चय ही विश्वकर्मा के शाणयन्त्र के चक्करों में घूमते हुए सूर्य के प्रकाश के सदृश उद्दीप्त महादेव के मस्तक में विराजमान तृतीय नेत्र का यह उन्मीलन है ?[133]

यहाँ विस्मय एवं आवेग भावों की व्यञ्जना हो रही है।

लक्ष्मण का कथन है कि इसके अनन्तर आर्य के और वीर वानरों तथा राक्षसों के असंख्य उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक कार्य हैं। ये आर्या भी थक गयी हैं इसलिए निवेदन करता हूँ कि विश्राम करें। सीता भी कहती हैं कि परिश्रम की निद्रा से आकृष्ट हो गई हूँ।[134]

यहाँ श्रमभाव की व्यञ्जना हो रही है।

हा हा धिक्कार है, सीता का दूसरे के घर में रहने का जो दोष अद्भुत उपायों के द्वारा शान्त कर दिया गया था, भाग्य के दुष्परिणाम से वही पागल कुत्ते के विष की तरह पुनः सर्वत्र फैल गया।[135]

यहाँ श्रमभाव की व्यञ्जना हो रही है।

सीता के दिव्य स्पर्श से आनन्दित राम कहते हैं कि पूर्व परिचित उत्तम जीवन का हेतु तथा मन को सन्तुष्ट कर देने वाला निश्चय ही वही स्पर्श है जो कि सन्ताप से उत्पन्न मूर्च्छा को दूर कर तत्काल आनन्द के द्वारा पुनः जड़ता को उत्पन्न कर देता है।[136]

यहाँ विषादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि स्तब्ध, कम्पयुक्त और पसीजता हुआ पल्लव के तुल्य सीता का वह पाणि उसी प्रकार स्तब्ध काँपते हुए और पसीजते हुए मेरे हाथ से अकस्मात् ही छूट गया।[137]

यहाँ जडताभाव व्यंग्य हो रहा है।

अश्व के विषय में वटुगण लव से कहते हैं कि वह अश्व शरीर के पीछे बड़ी पूँछ धारण करता है और वह उसे हिलाता रहता है। उसकी गर्दन लम्बी होती है, उसके चार ही खुर होते हैं। वह घास खाता है और आम्रफल के सदृश लीद को छोड़ता है। बहुत कहने से क्या ? वह फिर दूर जा रहा है। आओ, आओ हम जाते हैं।[138]

यहाँ चपलता भाव की व्यञ्जना हो रही है।

मुरला का कथन है कि यह सीता वृन्त के बन्धन से छूटे हुए कोमल पल्लव के समान दुर्बल और पाण्डु वर्ण इस सीता के शरीर को हृदय पुष्प का सुखाने वाला दारुण दीर्घ शोक इस प्रकार परिग्लान करता है जैसे आश्विन की कड़ी धूप केतकी के कोमल गर्भपत्र को सुखाती है।[139]

यहाँ ग्लानिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम सीता से कहते हैं कि भय और परिश्रम के कारण स्वेद बिन्दु से युक्त चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघलने वाली चन्द्रकान्तमणिमाला की तरह विलास वाले और मुझे जीवित करते हुए की तरह अपने बाहु को मेरे गले में डाल दें।[140]

यहाँ श्रमभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम कहते हैं कि प्रिये सीते ! यह क्या है ? तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श में इन्द्रिय समूह को गूढ करने वाला विकार मेरे ज्ञान को कभी तिरोहित करता है और कभी प्रकाशित करता है। अतएव यह सुख है अथवा दुःख है, मूर्च्छा है अथवा निद्रा है, विष का प्रसरण है अथवा मादक द्रव्य के सेवन से उत्पन्न मद है, यह निश्चय नहीं किया जा सकता है।[141]

यहाँ मद, मोह और वितर्क भावों की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन हैं कि चित्रदर्शन से उत्कण्ठा करने वाली यह वही वियोग चिन्ता सीता के स्वप्न में भी उद्योग कर रही है।[142]

यहाँ स्वप्नभाव की व्यञ्जना हो रही है।

लव सैनिकों को धिक्कारते हुए कहते हैं–वीर क्षत्रिय नहीं हैं क्या ? हैं ही। आज यह डर इसलिए दिखला रहे हो, इस समय इन कथनों से क्या ? तुम लोगों की उस विजयपताका (अश्व) का हरण कर रहा हूँ।[143]

यहाँ गर्वभाव की व्यञ्जना हो रही है।

कुश का कथन है कि भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर इन्द्र तक को अभय दक्षिणा देने वाले दर्पयुक्त पुरुषों के दमन के लिए अपने क्षत्रिय प्रताप रूपी अग्नि को प्रज्वलित करने वाले सूर्य वंशोत्पन्न राजाओं से यदि विरोध हो जाए तो प्रज्वलित अस्त्रों की प्रकाशमान और भयंकर किरणों की शिखा से आरती की गई मौर्वी से युक्त मेरा यह धनुष धन्य होगा।[144]

यहाँ शौर्य गर्व की व्यञ्जना हो रही है।

चन्द्रकेतु का कथन है–हे कुमार अतिशय आश्चर्य कारक गुणों के उत्कर्ष से भी तुम मेरे प्रिय मित्र हो, इसलिए जो पदार्थ मेरा है वह तुम्हारा ही है, अतः अपने परिजनों को क्यों पीड़ित कर रहे हो ? यह चन्द्रकेतु तुम्हारे गर्व की कसौटी है।[145]

यहाँ अमर्षभाव की व्यञ्जना हो रही है।

इसी प्रकार चन्द्रकेतु का लव से कथन है कि हे महाबाहो लव ! इन सैनिकों से तुम्हें क्या प्रयोजन है ? तुम्हारे लिए यह मैं हूँ। मेरे समीप आओ। तेज तेज में शान्त हो।[146]

यहाँ भी अमर्षभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि इन दोनों बालकों का आकारमात्र ही हमारे वंश के साथ सादृश्य वाला नहीं है अपितु इन दोनों बालकों में अच्छी तरह अनुमान करने योग्य अवयव आदि और गुण समूह सीता के सदृश स्पष्ट है। नये कमल के सदृश शोभायमान पूर्वदृष्ट प्रिया सीता का मुख फिर मेरे नेत्रों के समक्ष प्रकट हो गया है, ऐसा लग रहा है। शुभ्र और निर्मल दाँतों की कान्ति से सुन्दर यह ओष्ठ मुद्रा सीता की ही है। कर्णपाश भी वही है। यद्यपि नेत्र लाल और काले हैं, तथापि सौन्दर्यगुण वही है।[147]

यहाँ औत्सुक्य और स्मृति भावों की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि मन्दभाग्य सम्प्रति क्या करूँ अथवा यह क्या विचार करना है किसी भी कार्य के द्वारा लोक का अनुरञ्जन करना सज्जनों का श्रेष्ठ कार्य है। मुझे और प्राणों को छोड़ते हुए पूज्य पिता ने उस कर्म को प्रख्यात किया।[148]

यहाँ मतिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि सचमुच सीता यहाँ नहीं है। नहीं तो वासन्ती भी उन्हें क्यों न देखती ? कदाचित् यह स्वप्न हो ? मैं सोया भी नहीं हूँ, राम को नींद कहाँ ? सब तरह से ऐश्वर्यसम्पन्न और चिन्ता से परिकल्पित वह भ्रम ही बार-बार मेरा अनुसरण करता है।[149] सखि वासन्ती आनन्द से नेत्र निमीलित कर भी प्रिया के स्पर्श से श्रृंगारजन्य भय के कारण मैं पराधीन हूँ, अतः तुम भी मुझको पकड़ो।[150]

यहाँ उन्मादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

भयभीत एक वर्ष के मृग के सदृश चंचल नेत्रों वाली और कम्पित गर्भ के भार से आलस्ययुक्त उन सीता का कोमल छोटे मृणाल के सदृश चन्द्रिका से बने हुए की तरह और, लतासदृश कृश शरीर हिंस्रजन्तुओं के द्वारा निश्चय ही नष्ट कर दिया होगा।[151]

यहाँ शंकाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

जनक का कथन है कि अहो, दुष्ट नागरिकों की निर्दयता और रामभद्र की क्षिप्रकारिता सीतादेहत्यागरूप इस घोर वज्रपात की निरन्तर चिन्ता करने वाले मेरे क्रोध के धनुष से अथवा शाप से शीघ्र प्रज्वलित होने का यह अवसर है।[152]

यहाँ उग्रताभाव की व्यञ्जना हो रही है।

परिचय के आधिक्य के कारण प्रेम के अतिशय उत्कर्ष को प्राप्त होने पर एकान्त में विश्वासयुक्त होकर भी स्वाभाविक लज्जा से निमीलित नेत्रों

वाली सीता के उदर में करस्पर्श की चातुरी से पहले मैंने ही दो सन्तानों वाली गर्भ ग्रन्थि को जान लिया, तत्पश्चात् कई दिनों बाद उन्होंने भी जान लिया था।

यहाँ व्रीडाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि जन्म से ही पवित्र सीता की पवित्रता के लिए अग्नि आदि पदार्थों की क्या आवश्यकता है ? तीर्थ, जल और अग्नि दूसरे पदार्थों से शुद्धिलाभ नहीं करते हैं।[158]

यहाँ धृति और मति भावों की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि हन्त, सम्प्रति जीवलोक उलट गया। आज राम के जीवन का प्रयोजन समाप्त हुआ। अब जगत् जीर्ण जंगल की तरह शून्य हो गया। संसार सार से रहित हो गया। शरीर काष्ठ की तरह हो गया। मैं शरणहीन हूँ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अथवा दुःख भोगने के लिए ही राम में चेतन्य आ गया है। मर्मस्थल में प्रहार करने वाले प्राणों ने हृदय में वज्र के कील के सदृश आचरण किया है।[154]

यहाँ दैन्य एवं निर्वेद भावों की व्यञ्जना हो रही है।

षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में विद्याधरी के कथनों[155] में त्रासभाव की व्यंजना हुई है।

लव कहते हैं कि हे आर्य ! वे राजा रामचन्द्र परशुराम जी का दमन करने वाले हैं तो इसमें वीरता की कौन बड़ी बात हुयी ? ब्राह्मणों का पराक्रम वचन में होता है जो भुजाओं का बल है वह तो क्षत्रियों का है। परशुराम शस्त्र ग्रहण करने वाले ब्राह्मण हैं तब उनके पराजित होने पर उन रामचन्द्र की क्या प्रशंसा ? रामचन्द्र के चरित्र एवं महिमा को भला कौन नहीं जानता ? वे वृद्ध रामचन्द्र आलोचनीय चरित्र वाले नहीं। सुन्द की स्त्री ताड़का को मारने में भी अप्रतिहत यश वाले वे लोक श्रेष्ठ ही हैं, खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे अथवा बालि के मारने में जो निपुणता की थी उसमें भी लोग जानकार हैं।[156]

यहाँ असूयाभाव की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है कि हन्त, छोड़ते हुए भी मुझको पंचवटी मानों प्रेम से बलात् खींच रही है। करुणा के साथ जिस पंचवटी में मैंने दयिता सीता के साथ अपने गृह के सदृश उन दिनों को व्यतीत किया निरन्तर जिस पंचवटी विषयक बड़ी-बड़ी कथाओं से ही अयोध्या में रहते थे। इस समय प्रियतमा सीता को नष्ट करने वाला अतएव अकेला पापी राम पंचवटी को कैसे देखे ? अथवा उसका अनादर करके कैसे चला जाय ?[157]

यहाँ विषादभाव की व्यञ्जना हो रही है।

(घ) महावीरचरित, मालतीमाधवएवम् उत्तररामचरित में रसाभास, भावाभास आदि के महत्त्वतूर्ण प्रयोग।

रसाभास

रसों का अनौचित्येन संयोजन रसाभास कहलाता है।[158] अनौचित्य के कुछ अंशों को प्रस्तुत करते हुए कविराज विश्वनाथ लिखते हैं–नायक के अतिरिक्त अन्य पुरुषों में नायिका का अनुराग होता है तो वह अनौचित्यपरक है। गुरुपत्नी आदि में अथवा अनेक पुरुषों में या दोनों में से किसी एक में ही किंवा प्रतिनायक में यदि किसी की रति वर्णित होती है तो वहाँ श्रृंगाररस में अनौचित्य के कारण श्रृंगाराभास अथवा रसाभास होता है। इसी प्रकार यदि गुरु आदि पर क्रोध होता है तो रौद्ररस में अनौचित्य होता है। नीच पुरुष में स्थित होने पर शान्त में, गुरु आदि आलम्बन हो तो हास्य में, ब्राह्मणवध आदि कुकर्मों में उत्साह होने पर अथवा नीच पात्रस्थ उत्साह होने पर वीररस में और उत्तम पात्रगत होने पर भयानकरस में अनौचित्य होता है।[159]

रावण सीता का ध्यान करके कहता है इस सीता के मुख के रहने पर चन्द्रमा व्यर्थ है। इसके चलापाङ्ग नेत्रों के रहते नीलकमल की क्या आवश्यकता ? इसके भौहों की तुलना में कामबाण का क्या स्थान है ? और इसके केशपाश के समक्ष मेघमाला निष्प्रयोजन है तथा इसकी देहयष्टि के समक्ष लक्ष्मी क्या जीज है ?[160]

यहाँ रावण आश्रय और सीता आलम्बन हैं। रावण के द्वारा सीता का चिन्तन, स्वरूप वर्णन अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार रावण के रतिभाव की व्यञ्जना हो रही है।

परन्तु सीता के प्रति रावण का रतिभाव एकाङ्गी है अतः रसाभास की सृष्टि कर रहा है।

जामदग्न्य का वसिष्ठ आदि गुरुजनों के प्रति क्रोध[161] रौद्र रस में अनौचित्य का द्योतक है अतः वहाँ रसाभास है।

मालतीमाधव प्रकरण में मालती के प्रति नन्दन के अनुराग की अभिव्यक्ति में रसाभास है। नन्दन मालती से प्रेम करता है। उसके साथ विवाह करने का प्रयत्न करता है और विवाह कर भी लेता है फिर भी उसका प्रेम असफल रहता है। उसके इस अनुराग की असफलता का कारण अनुभयनिष्ठ रति है। रति के उभयनिष्ठ न होने से यहाँ श्रृंगाररस की निष्पत्ति नहीं हो पाती है, अतः रसाभास है।

मालतीमाधव प्रकरण के नवम अङ्क में वर्णन आया है कि जिस चकोर पक्षी के आँखों की पुतलियाँ मदनमद से घूम रही हैं, वह अन्तःकरण में उत्पन्न हर्ष से प्रिया चकोरी का अभिसरण कर रहा है। काला मुख वाला वानर फल के पराग से प्रिया वानरी के कपोल को चर्चित कर रहा है।[162] यह दूसरा वानर ओष्ठों के लौहित्य से रञ्जित दन्तपंक्तियों से युक्त रोचनी वृक्ष के फलों के सदृश श्वेतरक्त कपोलप्रान्तों से सम्बद्ध एवं परिपक्व होने से रक्तवर्ण वाले और स्फुटित दाडिमफल के सदृश कान्ति वाले प्रिया वानरी के मुख को ऊँचा कर चूम रहा है।[163] यह जङ्गली हाथी दाँत के अग्रभाग से खुजलाने के कारण निमीलित नेत्रों वाली सहचरी (हथिनी) को खुजलाता हुआ आह्लाद करने वाली क्रम से सञ्चालित कर्णों की हवाओं से प्रिया को हवा करता हुआ अर्धभुक्त नवीन सल्लकी लताओं के पल्लवों से हथिनी की वृत्ति को करता हुआ परिचय की प्रौढ़ता का अभ्यास कर रहा है।[164]

यहाँ चकोर, वानर एवं गज आश्रय हैं और चकोरी, वानरी एवं करिणी आलम्बन हैं। चकोर के द्वारा अपनी प्रेयसियों का अभिसरण करना, चुम्बन करना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार यहाँ चकोर, वानर एवं गज की रति का वर्णन हुआ है परन्तु तिर्यगादि योनिगत रति के कारण श्रृंगाररसाभास की व्यञ्जना हो रही है।

राम करिशावक के विषय में बतलाते हुए वासन्ती से कहते हैं—सखि वासन्ति ! देखो, देखो, वत्स ने प्रिया को प्रसन्न रखने का चातुर्य भी सीख लिया है क्योंकि इसने सहज में ही उखाड़े गये मृणालकाण्डरूप ग्रासों के अन्त में खिले हुए कमलों से सुगन्धित अपने मुख के जाल को प्रिया करिणी के मुख में संक्रान्त किया। जल की बूँदें छोड़ने वाली सूँड़ से पर्याप्त सेचन भी कर दिया और पीछे से सीधे दण्ड वाले कमलपत्र छत्र को भी धूप हटाने के लिए धारण कर लिया है।[165]

यहाँ करिशावक आश्रय है और करिणी आलम्बन है। करिणी को कवल खिलाना, जल पिलाना, छाया करना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता आदि व्यभिचारिभाव हैं। इस प्रकार यहाँ करिशावक की रति का वर्णन हुआ है।

गजशावकगतरति तिर्यादियोनिगत रति होने के कारण यहाँ श्रृंगाररसाभास की स्थिति है।

भावाभास

जब भावों की अनौचित्येन अभिव्यक्ति होती है तो वहाँ भावाभास की स्थिति होती है। जैसे—यदि कोई वेश्या में लज्जाभाव का वर्णन करे तो वह

भावाभास का विषय होगा क्योंकि कुलाङ्गना में तो लज्जा का भाव होना औचित्यपूर्ण है परन्तु वेश्या में उसका वर्णन अनौचित्यपूर्ण ही होगा।

रावण मन्दोदरी से कह रहा है कि क्यों ? एक तो हमारे शत्रु, दूसरे उनका पक्ष फिर उसकी चढ़ाई, तुम यह सब कुछ नवीन ही सुना रही हो। जो मैं युद्ध के क्षेत्र में दो हाथों से मतवाले हाथियों को पकड़कर चार हाथों से वेगपूर्वक आने वाले दिक्पतियों को भी और वज्र आदि भयंकर अस्त्रों की चपेट से जिसके वक्षःस्थल का चमड़ा खुरच भर गया था, उसी के शत्रु हो रहे हैं, यह तो नई ही बात सुनने को मिल रही है।[166]

यहाँ रावण के इस कथन में अमर्ष, आवेग, मद आदि भावों की व्यञ्जना हो रही है परन्तु इनका वर्णन प्रतिनायक रावणगत होने के कारण ये भावाभास के कारण बन रहे हैं।

माधव कहता है कि मदजल के अभाव से उत्पन्न श्वेद से शब्दशून्य भ्रमरों की विशिष्ट आसक्ति से अप्रसन्न मुखवाला हाथी मेघों के गर्जन करने पर गर्जन के मध्यकाल में अतिगम्भीर उच्च गर्जन को नहीं बढ़ा रहा है और निकटस्थ सरोवर से लाये गये शैवलों को नहीं खा रहा है, इसलिए यह निश्चय ही प्राणतुल्य प्रियतमा के वियोग से पीड़ित होकर ग्लानियुक्त हो रहा है।[167]

यहाँ विषाद, ग्लानि, चिन्ता आदि भावों की व्यञ्जना हो रही है परन्तु इनका वर्णन तिर्यगादिगत होने के कारण ये भावाभास के कारण बन रहे हैं।

जब सीता राम के वक्षःस्थल पर ही सो जाती हैं तो राम उन्हें देखकर प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहते हैं—यह सीता घर में लक्ष्मी है, यह नेत्रों में अमृत-शलाका है, इसका यह स्पर्श शरीर में प्रचुर चन्दन का रस है और यह बाहु कण्ठ में शीतल और कोमल मुक्ताहार है। इसकी क्या वस्तु प्रियतर नहीं है परन्तु इसका वियोग तो अत्यन्त ही असह्य है।[168]

यहाँ हर्ष, औत्सुक्य, आवेग आदि भावों की व्यञ्जना हो रही है परन्तु सीता निद्रानिमग्न हैं अतः ये भाव केवल नायक रामगत हैं। इन भावों का वर्णन उभयगत न होने के कारण ये भावाभास का कारण बनर हे हैं।

भावोदय

जहाँ किसी सञ्चारी भाव की उदयावस्था ही चर्वणास्पद बन जाती है वहाँ भावोदय व्यंग्य होता है। भावोदय में भाव की उत्पत्तिमात्र का ही वर्णन होता है।

माल्यवान् कह रहा है कि हा वत्स ! खरदूषण आदि, मैं पापी तुम्हारे मरण की बात सोचा करता हूँ। हा वत्स विभीषण कार्यवश तुम्हें भी छोड़

देना पड़ रहा है। हा, मेरे स्नेही रावण, तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा संकट देख रहा हूँ। हा बेटी केकसि, तुम थोड़े ही दिनों में अपने तीन पुत्रों से हाथ धो बैठोगी।[169]

यहाँ विषादभावोदय व्यंग्य हो रहा है।

माधव मालती को लक्ष्य कर कहता है कि हे भयशीले! तुम्हारे कर-कमल के ग्रहण से धन्य जन्म वाला हो जाऊँ। ऐसे आग्रह से पीड़ित किया जाकर मैं नरमांस बेचने के लिए श्मशान में घूम रहा था इसी बीच तुम्हारे रोदन को सुनकर यहाँ आ गया हूँ।[170]

यहाँ त्रासभावोदय व्यंग्य हो रहा है।

लव आश्चर्य का अनुभव करते हुए कहते हैं कि इनको देखने पर न जाने क्यों वैर शान्त हो गया। अतिशय सुख से गाढ़ अनुराग फैल रहा है। वह दर्प कहाँ चला गया है और नम्रता मुझे झुका रही है। मैं सहसा ही पराधीन हो गया हूँ अथवा पवित्र स्थानों की तरह महापुरुषों का कोई बहुमूल्य उत्कर्ष होता है।[171]

यहाँ हर्ष भावोदय व्यंग्य हो रहा है।

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में राजा जनक के 'क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा'[172] इस कथन में क्रोध भावोदय व्यंग्य है।

भावशान्ति

जब कोई प्रक्रान्त व्यभिचारी रूप चित्तवृत्ति का प्रशम हो जाता है तो वहाँ भावशान्ति या भावप्रशम व्यंग्य होता है। पण्डितराज जगन्नाथ लिखते हैं कि उत्पत्ति कालावच्छिन्न का नाश सहृदय चमत्कारी होने से भावप्रशम होता है।[173]

भावशान्ति की सुन्दर व्यञ्जना महावीरचरित नाटक के शतानन्द, परशुराम संवाद में हुयी है। परशुराम के संरम्भ से उत्तेजित शतानन्द शापोदक लेकर कहते हैं कि सक्रोध और पराभिघात से शीघ्रता करने के लिए प्रेरित मैं शीघ्र ही इस आततायी को उत्पातक्षुभित वायु द्वारा सञ्चालित वज्राग्नि जैसे-भस्मसात् करता है उसी प्रकार भस्म कर देता हूँ।[174] इस प्रकार शतानन्द जैसे ही परशुराम को भस्मसात् करने के लिए समुद्यत होते हैं वैसे ही नेपथ्य से सुनाई देता है कि भगवन्! क्षमा कीजिए। घर पर आये हुये अपने दुर्धर्ष तेज को सँभालिए। महर्षि वसिष्ठ भी दशरथ के नेपथ्य कथन का समर्थन करते हैं। इस प्रकार शतानन्द शान्त होते हैं।

यहाँ शतानन्द के क्रोध भाव की शान्ति का वर्णन किया गया है।

मालतीमाधव प्रकरण में माधव मालती की विपत्ति से खिन्न होकर करुण विलाप करता है। उसका अधीर हृदय करुणा की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है उसी समय सहसा सौदामिनी मालती के जीवित होने की सूचना माधव को देती है है अतएव इस सुखद सूचना के द्वारा माधव के शोकभाव की शान्ति होती है। इस प्रकार उक्त स्थल में शोकभाव की शान्ति की व्यञ्जना हुयी है।

उत्तररामचरित नाटक के तृतीय अङ्क में पञ्चवटी के दर्शन से राम विदेहराजपुत्री सीता को सम्बोधित करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं परन्तु जब सीता उनका स्पर्श कर लेती हैं तो वे हर्ष का अनुभव करते हुए कहते हैं कि यह क्या है ? हृदय पर हरिचन्दन के पल्लवों का रसक्षरण हुआ है ? अथवा निचोड़े गये चन्द्रकिरण रूपी नवांकुरों से किया गया सिञ्चन है ? या सन्तप्त जीवन और मन को तृप्त करने वाला यह सञ्जीवन ओषधि का रस हृदय पर सींचा गया है।[175]

यहाँ मोह भाव की शान्ति की व्यञ्जना हुयी है।

चतुर्थ अङ्क में राजा जनक के "शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्डं हि मे। भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः।" इस कथन में क्रोध-भाव की शान्ति की व्यञ्जना हो रही है।[176]

भावसन्धि

जहाँ दो भावों की सन्धि चर्वणास्पद बनती है वहाँ भावसन्धि व्यंग्य होता है।

राम कहते हैं कि गर्वी तथा तपस्या और पराक्रम से युक्त परशुराम के आने से सत्संग का लोभ और वीररस का उन्माद एक ओर खींच रहे हैं और चन्दन सदृश शीतल तथा पुनः पुनः चैतन्य को लुप्त करने वाला यह सीता का आलिंगन दूसरी ओर रोक रहा है।[177]

यहाँ उत्साह और रति इन दो भावों की सन्धि व्यंग्य हो रही है।

इसी प्रकार महावीरचरित के पञ्चम अङ्क में राम की विरहावस्था के वर्णन में लक्ष्मण ने क्रोध और शोक का सम्मिश्रण किया है।[178]

मालतीमाधव प्रकरण के पञ्चम अंक में माधव मालती को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि मृत्यु के समय में आशंका छोड़कर किये गये प्रलाप के सुनने से निष्प्रतिबन्ध रूप से अपने प्रेम को प्रकाशित करने वाला यह तुम्हारा प्रणयी सामने ही है। हे सुन्दरि, कम्प का परित्याग करो। इस समय यहाँ यह पापी विपरीत परिणाम वाले पाप के भयंकर फल का अनुभव करेगा।[179]

यहाँ रति और उत्साह इन दो भावों की सन्धि व्यंग्य हो रही है।

इसी प्रकार माधव और अघोरघण्ट की सहोक्ति में जुगुप्सा और उत्साह का सम्मिश्रण अत्यन्त ही मनोरम है।[180]

जुगुप्सा और रति के मिश्रण का मनोरम स्थल इस प्रकार है–अन्यों से सौभाग्यसूचक हस्तसूत्रों की रचना करने वाली, मरी हुयी स्त्रियों के हस्त-रूप रक्तकमलों को स्पष्टरूप से कर्णभूषण के रूप मे धारण करने वाली रुधिर पङ्कों को केसर के समान सेवन करने वाली ये पिशाच ललनायें अतर्कित रूप से हृदय स्थित श्वेतकमल के सदृश मांसों की मालाओं को कण्ठ में धारण कर पति के साथ मिलकर प्रसन्न होती हुयी नरकपाल रूप पानपात्रों से मज्जा-स्वरूप मदिरा को पीती हैं।[181]

उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क में सीता की इस उक्ति 'किंवा मया प्रसूतया येन तादृशमपि मम पुत्रकयोः ... मुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बित-मार्यपुत्रेण[182] में पुत्रों के प्रति वात्सल्य और पति के प्रति प्रेम दो भावों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है अतएव यहाँ वात्सल्य स्नेह एवं रति इन दो भावों की सन्धि व्यंग्य हो रही है।

भावशबलता

जब अनेक भावों की स्थिति एक साथ होती है तो वहाँ भावशबलता व्यंग्य होती है।

महावीरचरित के पञ्चम अङ्क में राम का कथन है कि वज्रकील के सदृश यह घटना मेरे भीतर बैठी हुयी है। मन घोर अन्धकार में डूबा हुआ है और लज्जा से आच्छन्न हो रहा है। जटायु की पीड़ा मुझे कचोट रही है जिसकी अब कोई ओषधि ही नहीं है। बेचारी सीता के लिए करुणा मर्म-स्थलों का छेदन कर रही है।[183]

यहाँ लज्जा, शोक और करुणा सञ्चारी भावों के सम्मिश्रण से भाव-शबलता व्यंग्य हो रही है।

माधव अघोरघण्ट को सम्बोधित करता हुआ कहता है अरे–रे पापी! प्रणययुक्त सखीजनों के परिहास में राग से प्राप्त कोमल शिरीष पुष्पों के प्रहारों से जो मालती का शरीर म्लान हो जाता है वैसे शरीर में मारने के लिए शस्त्र गिराने वाले तुम्हारे शरीर पर आकस्मिक रूप में पतनशील यम-दण्ड के सदृश यह मेरा बाहु चले।[184]

यहाँ रति, शोक और उत्साह भावों के सम्मिश्रण से भावशबलता की स्थिति है।

उत्तररामचरित नाटक के तृतीय अङ्क में सीता की स्थिति पर प्रकाश डालती हुयी तमसा कहती है अयि वत्से ! तुम्हारा हृदय इस समय निराशा के कारण उदासीन की तरह, पति के परित्याग रूप अप्रिय आचरण से क्रोधयुक्त की तरह, बहुत काल तक रहने वाले इस वियोग में आकस्मिक सम्मेलन से निश्चल की तरह, प्रिय की सम्बोधन रूप सुजनता से प्रसन्न की तरह और प्रिय राम की शोकमयी अवस्थाओं से दृढ़ शोक से युक्त, अतः प्रेम से द्रवीभूत की तरह हो रहा है।[४०]

यहाँ विषाद, क्रोध, जडता, हर्ष और शोक भावों की एक साथ स्थिति होने से भावशबलता है।

सन्दर्भ

१. यदा कश्चिदुद्विक्तावस्थां प्रतिपन्नो व्यभिचारी चमत्कारातिशयप्रयोजको भवति तदा भावध्वनिः। लोचन पृ. १७६

२. काव्यप्रकाश में अभिनवगुप्त की रसमीमांसा में देखें।

३. काव्यप्रकाश ३।३५

४. काव्यानुशासन पृ. १२६

५. महावीरचरित १।१

६. महावीरचरित १।५

७. वही १।७

८. वही पृ. ९

९. वही पृ. १०

१०. वही १।११

११. वही १।१२

१२. वही १।१७–१८

१३. वही १।२५

१४. वही १।५१

१५. वही १।५७

१६. वही २।१८, १९

१७. वही २।२३

१८. वही २।२४

१९. वही २।२५

२०. वही २।२६

२१. वही २।३०

२२. वही २।३७

२३. वही २।३८

२४. वही २।३९

२५. वही २।४०

२६. वही २।४१

२७. वही ४।१३

२८. वही ४।२०

२९. वही ४।२७

३०. वही ४।२८

३१. वही ४।३०

३२. वही ४।३१

३३. वही ४।५१

३४. वही ४।२२

३५. वही ४।१२

३६. वही २।२०

३७. वही ६।१०

३८. वही ६।११

३९. वही पृ. ८१

४०. वही ३।८

४१. महावीरचरित ३।१६
४२. महावीरचरित ३।१७
४३. वही ३।२९
४४. वही १।३९
४५. वही २।१
४६. वही २।२
४७. वही २।६
४८. वही ७।३०
४९. वही ४।११
५०. वही ४।३७
५१. वही ४।३८
५२. वही ४।५२
५३. वही ४।५५
५४. वही ४।५६
५५. वही ५।५६
५६. वही ३।२४
५७. वही ५।५१
५८. वही ६।२५
५९. वही २।२१
६०. वही १।४०
६१. वही ४।२५
६२. वही ५।१४
६३. वही ६।१
६४. वही ६।८
६५. वही ६।१६
६६. वही ६।१७
६७. वही ६।१८
६८. वही ४।२१
६९. वही ४।१४
७०. वही ४।४८
७१. वही ४।५०
७२. मालतीमाधव १।१
७३. मालतीमाधव १।२
७४. वही १।३
७५. वही पृ. १०
७६. वही १।५
७७. वही १।७
७८. वही ५।२२–२३
७९. वही ९।४
८०. वही पृ. १९०
८१. वही पृ. १९३
८२. वही पृ. १९२
८३. वही ४।८
८४. वही १।३१
८५. वही १।३६
८६. वही १।१९
८७. वही २।१
८८. वही २।२
८९. वही २।३
९०. वही १।१८
९१. वही १।३२
९२. वही ९।२५
९३. वही ९।२६
९४. वही ९।२७
९५. वही ९।२९
९६. वही ९।३०
९७. वही ९।३२
९८. वही पृ. ४१६
९९. वही पृ. २८३
१००. वही पृ. ३२२
१०१. वही १।१६
१०२. वही ५।७
१०३. वही ५।८
१०४. वही ३।१६
१०५. वही ६।८
१०६. वही ७।४

१०७. मालतीमाधव १०।२०
१०८. मालतीमाधव ९।८
१०९. वही ९।९
११०. वही ५।३१
१११. वही ५।२९
११२. वही ५।३२
११३. वही ८।८
११४. वही ८।१२
११५. वही ८।१३
११६. वही १।२३
११७. वही ४।७
११८. वही ९।२२
११९. वही ३।१८
१२०. वही पृ. २७६
१२१. उत्तररामचरित १।१
१२२. उत्तररामचरित १।१०
१२३. वही १।१३
१२४. वही ४।४
१२५. वही ४।११
१२६. वही ३।३८
१२७. वही १।१८
१२८. वही १।२४
१२९. वही १।२५
१३०. वही १।२६
१३१. वही १।२७
१३२. वही ५।८
१३३. वही ६।३
१३४. वही पृ. ८४
१३५. वही १।४०
१३६. वही १।४०
१३७. वही ३।४१
१३८. वही ४।२६
१३९. वही ३।५
१४०. वही १।३४
१४१. वही १।३५
१४२. वही पृ. ६४
१४३. वही ४।२८
१४४. वही ६।१८
१४५. वही ५।१०
१४६. वही ५।१०
१४७. वही ६।२६–२७
१४८. वही ६।२६
१४९. वही पृ. १९८
१५०. वही पृ. १८७
१५१. वही ३।२८
१५२. वही ४।२८
१५३. वही १।१३
१५४. वही १।९७
१५५. वही पृ. ३००
१५६. वही ५।३२–३४
१५७. वही २।२८
१५८. साहित्यदर्पण ३।२६२
१५९. साहित्यदर्पण ३।२६३–२६५
१६०. महावीरचरित ६।९
१६१. महावीरचरित ३।३७
१६२. मालतीमाधव ९।३०
१६३. मालतीमाधव ९।३१
१६४. वही ९।३२
१६५. उत्तररामचरित ३।१६
१६६. महावीरचरित ६।११
१६७. मालतीमाधव ९।३३
१६८. उत्तररामचरित १।३८
१६९. महावीरचरित ४।१२
१७०. मालतीमाधव ५।२७
१७१. उत्तररामचरित ६।११
१७२. उत्तररामचरित ४।२४

१७३. रसगङ्गाधर पृ. १०२
१७४. महावीरचरित ३।३१
१७५. उत्तररामचरित ३।११
१७६. उत्तररामचरित ४।२४
१७७. महावीरचरित २।२२
१७८ महावीरचरित ५।२०
१७९. मालतीमाधव ५।२६
१८०. मालतीमाधव ५।३४
१८१. महावीरचरित ५।१८
१८२. उत्तररामचरित
१८३ महावीरचरित ५।२२
१८४. मालतीमाधव ५।३१
१८५. उत्तररामचरित ३।१३

चतुर्थ अध्याय

महाकवि भवभूति के नाटकों में अलंकारध्वनि

जहाँ अलंकारों की प्रधानतया स्थिति रहती है, वहाँ अलंकारध्वनिकाव्य रहता है। ध्वनिसम्प्रदाय के आचार्य समस्त अलंकार प्रपञ्च को काव्य के वाच्य-वाचकभाव पर ही आश्रित मानते हैं। इन आचार्यों के अनुसार अलंकारों की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती है, क्योंकि अलंकार तो उक्ति-वैचित्र्य के प्रकार हैं। अतएव उक्तिवैचित्र्य के आधार पर अनेक प्रकार के अलंकारों की संघटना की जा सकती है।

ध्वनिसम्प्रदाय काव्यसौन्दर्य की स्थिति व्यंग्यव्यञ्जकता में ही मानता है। अलंकार काव्य में चारुत्व के हेतु माने जाते हैं। इस प्रकार अलंकार भी परम्परया काव्य की श्रीवृद्धि करते हुए ध्वनिसौन्दर्य के ही प्रतिष्ठापक होते हैं। जिस प्रकार कटक-केयूरादि आभूषण मानव के अङ्गों को श्रीसम्पन्न करते हुए अङ्गी की शोभा को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार अलंकार काव्यांगों को श्रीसम्पन्न करते हुए अङ्गी रस के ही सौन्दर्यवर्धक होते हैं।

पुरातन आलंकारिकों ने तो अलंकारों को मात्र सौन्दर्य का हेतु बतलाया है, उनमें व्यंग्यरूप की निष्पत्ति नहीं की है। ध्वनिकार ने इस क्षेत्र में मौलिक उद्भावना प्रस्तुत कर एक नवीन दिशा दी है। कटककुण्डलस्थानीय जिन अलंकारों की वाच्यावस्था में शरीररूपताप्राप्ति भी निश्चित नहीं है, व्यंग्य-रूपता को प्राप्त होकर वे अलंकार भी (केवल सामान्य शरीर को ही नहीं प्रत्युत) परम चारुत्व को प्राप्त हो जाते हैं।[1] तात्पर्य यह है कि काव्य में वाच्य-वाचक को अलंकृत करने के कारण जिन उपमादि अलंकारों की मात्र अलंकारकता (रोचकता) सिद्ध होती है, वे ही अलंकारध्वनि की श्रेणी में आ जाने से व्यंग्यत्वेन अलंकार न होकर अलंकार्य बन जाते हैं। हाँ, अलंकार्य होते हुए भी ब्राह्मणश्रमणन्यायेन उन्हें अलंकार संज्ञा से ही अभिहित किया जाता है।

यह अलंकारध्वनिवर्ग संलक्ष्यक्रमध्वनि के अन्तर्गत आता है। इसमें

वाच्य एवं व्यंग्य का क्रम लक्षित होता रहता है। संलक्ष्यक्रमध्वनि को आचार्य आनन्दवर्धन ने दो भागों में विभक्त किया है– (क) शब्दशक्तिमूलक और (ख) अर्थशक्तिमूलक।

(क) **शब्दशक्तिमूलक**–इसमें व्यञ्जक शब्द पद तथा वाक्य के भेद से दो रूपों में व्यञ्जक होता है। इन व्यञ्जक शब्दों से जो अर्थ प्रतीयमान अर्थ के रूप में प्रकट होता है, वह केवल अलंकार रूप होता है। इस प्रकार इस ध्वनि के दो भेद होते हैं–

(१) पदप्रकाश्यालंकारव्यंग्य और

(२) वाक्यप्रकाश्यालंकारव्यंग्य।

(ख) **अर्थशक्तिमूलक**–इसमें व्यञ्जक अर्थ वस्तु तथा अलंकार के भेद से दो रूपों में व्यञ्जक होता है। अतः इसके दो भेद हो जाते हैं–(१) वस्तुध्वनि और (२) अलंकारध्वनि।

(१) **वस्तुध्वनि**–इसके भी दो भेद हैं– (क) प्रौढोक्तिमात्रसिद्ध और (ख) स्वतःसम्भवी।[2] इन स्थलों में भी जहाँ एक ही अर्थ अधिक सक्रिय रहता है, वहाँ ध्वनि को पदप्रकाश्य तथा जहाँ एक से अधिक अर्थ सक्रिय रहता है, वहाँ ध्वनि को वाक्यप्रकाश्य माना जाता है। इस प्रकर उक्त वस्तुध्वनि के दो भेद और हो जाने से इसके चार भेद हो जाते हैं–

(अ) पदप्रकाश्यप्रौढोक्तिमात्रसिद्धार्थवस्तुध्वनि

(आ) वाक्यप्रकाश्य ,, ,,

(इ) पदप्रकाश्यस्वतःसम्भव्यर्थवस्तुध्वनि और

(ई) वाक्यप्रकाश्य ,, ,,

अलंकारध्वनि–इस ध्वनि में अलंकार तथा वस्तु ये दो ही व्यञ्जक होते हैं। अतः अलंकारध्वनि के केवल दो भेद हैं–

(च) अलंकारप्रकाश्यालंकारध्वनि तथा

(छ) वस्तुप्रकाश्यालंकारध्वनि।

(क) महावीरचरित में अलंकारध्वनि

नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार कह रहा है–जिस कवि के महर्षियों में अङ्गिरा के सदृश परमहंसों में प्रधान यथार्थनामा ज्ञाननिधि गुरु थे।[3]

यहाँ उपमा के द्वारा व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है। उपमा अलंकार के द्वारा उपमेय ज्ञाननिधि के उत्कर्ष का कथन हो रहा है।

राजा कुशध्वज का कथन है कि ये विश्वामित्र चतुर्थ, अग्नि पञ्चमवेद अथवा जङ्गमतीर्थ या मूर्ति को धारण करके सञ्चरण करने वाले धर्म हैं।[4]

यहाँ रूपक अलंकार के द्वारा उत्प्रेक्षा की व्यञ्जना हो रही है। रूपक वाच्य है, जिससे व्यक्त हो रहा है कि विश्वामित्र मानो पञ्चमवेद या जङ्गम-तीर्थ या मूर्तिसञ्चर धर्म हों।

महाराज दशरथ जामदग्न्य से कह रहे हैं—स्वभाव से पवित्र आपके लिए दूसरे पवित्र पदार्थों की क्या आवश्यकता है? तीर्थजल और अग्नि दूसरे पदार्थों से पवित्रता नहीं प्राप्त करते।[5]

यहाँ वाच्य दृष्टांत अलंकार के द्वारा उदात्त की व्यञ्जना हो रही है।

परन्तु अनुष्ठान की नित्यता स्वातन्त्र्य का हरण कर लेती है। आहिताग्नियों के लिए गृहस्थ होना अनेक विघ्नों से परिपूर्ण हुआ करता है।[6]

यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार के द्वारा अप्रस्तुतप्रशंसा की व्यञ्जना हो रही है। जिससे यह ध्वनित होता है कि आहिताग्नि होने के कारण ही विश्वामित्र राम को छोड़कर प्रस्थान करते हैं।

जनक राम और लक्ष्मण को लक्ष्य कर कहते हैं—पुत्रों को राजलक्ष्मी सौंपकर इक्ष्वाकुवंश के वृद्ध राजाओं ने जिस वनवास के व्रत को धारण किया था, तुम लोगों को वह वनवासव्रत बाल्यावस्था में ही धारण करना पड़ा।[7]

यहाँ व्यतिरेक अलंकार के द्वारा उपमा अलंकार की व्यञ्जना हो रही है। जनक के कथन का तात्पर्य है कि राम लक्ष्मण, तुम दोनों वृद्ध इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओं के सदृश हो क्योंकि तुमने आरण्यकव्रत को स्वीकार कर लिया है।

लक्ष्मण राम को लक्ष्य कर कह रहे हैं—वक्र भृकुटियों से आन्तरिक धैर्य से दबाये गये कोप की व्यञ्जना हो रही है, जो कोप अतिप्रचण्ड है। इस प्रकार सम्प्रति आर्य की स्थिति ऊपर धूम से आवृत भीतर उदर में बडवानल को दबाये हुये समुद्र के समान हो रही है या विद्युत् से व्यञ्जित वज्र से युक्त मेघ के सदृश हो रही है।[8]

यहाँ उपमा अलंकार के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है। यह राम की उदात्तता ही है कि उन्होंने असह्य एवं प्रगाढ़ कोप को अपने में छिपा रक्खा है।

राम लक्ष्मण से कह रहे हैं कि वत्स ! राम के कार्य लोकोत्तर हैं ? जिन सूर्यवंशीय राजाओं ने समस्त संसार पर शासन किया तथा अभय स्थापित किया, उनको मैंने तिरस्कार का पात्र बनाया। जो जटायु प्रलय में स्थिर रहा, उसे मौत के घाट उतरवाया। वन में आकर पत्नी का अपहरण कर-वाया। इस प्रकार जो औरों ने नहीं किया था, वह मैंने कर दिया।[9]

यहाँ राम के इस कथन से यह ध्वनित हो रहा है कि जो अन्य लोग

नहीं कर सके वह मानों मैंने कर दिया। इस प्रकार यहां उत्प्रेक्षा की व्यंजना हो रही है।

श्रमणा लक्ष्मण से कह रही है कि यह पर्वत नहीं है यह तो वीर वाली के यशरूप में स्थित दुन्दुभि नामक दैत्य महिष की अस्थियों का समूह है।[10]

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

श्रमणा राम से कह रही है—हे देव! देखिये, यहाँ पर मद वाले पक्षियों से आश्रित वेतस वृक्षों से गिरे हुए पुष्पों से सुगन्धित शीतल और निर्मल सलिल से युक्त तथा फल समूह के पकने से श्यामले जामुन वृक्षों के कुञ्जों में गिरने से शब्दायमान अनेक प्रवाहों से युक्त नदियाँ वह रही हैं।[11]

यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा उल्लास अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

वाली कहते हैं—मैं ब्रह्माण्डस्वरूप इस झाड़ी को उलट-पुलट सकता हूँ जिससे लोकालोक पर्वतरूप आलवाल स्खलित हो जायेगा। सप्तम समुद्र का पानी गिरने लगेगा। पर्वस्थानीय त्रिभुवन ढीले पड़ जायेंगे। पातालरूप जड़ उखड़ जायेगी। सूर्यचन्द्र रूप पुष्पगुच्छ बिखर जायेगे और तारामण्डल-रूप पुष्प गिरने लगेंगे। परन्तु इस रामवधरूप कार्य में मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।[12]

यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा उदात्त की व्यञ्जना हो रही है। अतिशयोक्ति अलंकार वीरपुरुषोचित वाली के औदात्य को प्रकाशित कर रहा है।

क्रुद्ध वाली का वर्णन करते हुए लक्ष्मण कहते हैं—मेघ के गर्जन की तरह शब्द हो रहा है जो बहुत गम्भीर है। गुञ्जाफलसदृश रक्त और विकृत उसके मुख में दिङ्मण्डल प्रविष्ट सा हो रहा है। वेग से उठी हुयी पूँछ को देखने से विद्युत् का भ्रम हो जाता है। वह पूँछ पताका सी दिखाई दे रही है। वह आकाश को व्याप्त कर कँपा सा रहा है।[13]

यहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान् अलंकारों से अतिशयोक्ति अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

रावण कह रहा है—जो मैं युद्ध के क्षेत्र में दो हाथों से मतवाले हाथियों के दाँतों को पकड़कर चार हाथों से वेगपूर्वक आने वाले दिक्पतियों को भी रोक सका था और वज्र आदि भयंकर अस्त्रों के प्रहार से जिसके वक्ष:स्थल का चमड़ा खुरच भर गया था उसी के शत्रु हो रहे हैं? यह तो नई ही बात सुनने को मिल रही है।[14]

यहाँ अतिशयोक्ति के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

राम महर्षि अगस्त्य के प्रभाव का वर्णन कर रहे हैं–जिनके किये गये व्यापारों से यह समुद्र मरुस्थल के रूप में परिणत हो गया, जिनके द्वारा विन्ध्य का उन्नतिगर्व खर्व किया गया, जिनके जठरानल में वातापि का शरीर लीन हो गया, महात्मा अगस्त्य किन वचनों से वर्णित किये जा सकेंगे ?[15]

यहाँ अतिशयोक्ति के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना ही रही है।

(ख) मालतीमाधव में अलंकारध्वनि

माधव मालती को लक्ष्य कर कह रहा है कि वह कुमारी सौन्दर्याकर की अधिदेवता अथवा सौन्दर्य के श्रेष्ठ अंशों के समुदाय का भवनरूप है। हे मित्र ! निश्चय ही चन्द्रकला, मृणाल और चन्द्रिका आदि उसके कारण हैं और कामदेव उसके रचयिता हैं।[16]

यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा उत्प्रेक्षा की व्यञ्जना हो रही है। तात्पर्य यह है कि मानों कामदेव ने मालती की चन्द्रकला, मृणाल और चन्द्रिका आदि के द्वारा निर्मित किया हो।

पुनः पुनः ग्रीवा को परिवर्तित कर जाती हुई और परिवर्तित वृन्त वाले कमल के सदृश सुन्दर मुख को धारण करने वाली निबिड नेत्रलोमों से युक्त सुन्दरी मालती ने अमृत और विष से लिप्त कटाक्ष मेरे हृदय में मानो दृढ़ता के साथ प्रवेशित कर दिया हो।[17]

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा अतिशयोक्ति की व्यञ्जना हो रही है।

समुत्पन्न अश्रु प्रवाह नेत्रों को पुनः पुनः आवृत कर देता है। प्रिया की चिन्ता से कार्य में असामर्थ्य को प्राप्त करने वाला शरीर स्तब्ध हो जाता है। यह हाथ चित्र लिखने की क्रियाओं में तत्क्षण पसीना आ जाने से और अनवरत काँपने से चञ्चल अँगुलियों से युक्त हो जाता है, मैं क्या करूँ ?[18]

यहाँ समुच्चय अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

मकरन्द अपने मन में ही कहता है–प्रतिबन्धरहित विकार के परिणाम से भयंकर यह काम सुकुमार शरीर वाले माधव को प्रतिबन्धरहित सान्निपातिक परिणाम से भयंकर कठोर कूटपाकल नामक रोग जिस प्रकार सुकुमार शरीर वाले गजशावक को अभ्याहत करता है, उसी प्रकार अभ्याहत कर रहा है।[19]

यहाँ उपमालंकार के द्वारा यह उत्प्रेक्षा हो रही है कि मानो यह काम सुकुमार शरीर वाले माधव को अभ्याहत कर रहा है।

अतिशय श्वेत और रूक्ष कपोलों से युक्त मुख को धारण करती हुयी यह मालती अतिशय सौन्दर्य को प्राप्त हो गयी है क्योंकि सौन्दर्यशाली जन में

परिभ्रमण करता हुआ सुन्दर कामदेव का व्यापार अतिशय उत्पर्ष के साथ रहता है।[20]

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार के द्वारा उदात्त की व्यञ्जना हो रही है।

कामन्दकी मालती को लक्ष्य कर कहती है–नीवीग्रन्थि की शिथिलता, ओष्ठकम्पन, बाहुलताओं का शैथिल्य, स्वेद, कोमल कुड्मल सदृश कुछ आकुञ्चित स्निग्ध और सुन्दर नेत्र शरीर की निश्चेष्टता, मुकुल के सदृश स्तनों के स्थैर्य को लंघन करने वाला कम्प, परिपूर्ण कपोलों में रोमाञ्च समूह, मूर्च्छा और चैतन्य प्रियसमागम के अनुभव के ज्ञापक हैं।[21]

यहाँ अनुमान अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

कामन्दकी माधव को लक्ष्य कर कहती है–शरद्ऋतु के पूर्ण चन्द्रतुल्य मुख वाले बाल्यावस्था में भी विद्याशाली ये माधव भवन से निकलकर इस समय यहाँ आये हुए हैं जिनके दर्शन योग्य स्थान में नगर उन्माद से चञ्चल सुन्दरियों के कटाक्षों से नीलकमलों से युक्त वातायनों से सम्पन्न के सदृश हो रहा है।[22]

यहाँ उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

माधव का कथन है–इन्होंने जैसे मुझको श्वेतकमलों की माला से बाँध लिया है, अतिशय दुग्ध प्रवाह से स्नान कराया है, मानो विस्तारित लोचनों से सम्पूर्ण मुझको ग्रास कर लिया और गाढ़ अमृतवर्षी मेघ से मानो हठात् सेचन कर दिया है।[23]

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा उपमा अलंकार की व्यञ्जना हो रही है। तात्पर्य यह है कि श्वेतकमलसदृश दृष्टि के द्वारा बाँध लिया है, दुग्ध के समान शुभ्र दृष्टि से स्नान कराया है, कमलसदृश नेत्रों के द्वारा ग्रास कर लिया है और दृष्टि से अमृतसदृश मधुर रस की वृष्टि की है।

माधव का कथन है–वह प्रिया मालती हमारे चित्त में लीन की तरह, प्रतिबिम्बित की तरह, लिखी गयी की तरह, शिला आदि में उत्कीर्ण रूप वाले की तरह, वियोग से द्रवीभूत मेरे मन में कामदेव रूपी सुवर्णकार द्वारा घटित की तरह, वज्रलेप से सम्पादित की तरह, अन्तःकरण में खोदी हुई की तरह, कामदेव के पाँच बाणों से विद्ध की तरह और ध्यान परम्परारूप सूत्र समूह से निबिडतापूर्वक सी गयी की तरह सम्बद्ध है।[24]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा अतिशयोक्ति एवं परिकर अलंकारों की व्यञ्जना हो रही है।

माधव अघोरघण्ट को लक्ष्य कर कह रहा है–तुम संसार को सार से रहित

करने को प्रवृत्त हो रहे हो, त्रिभुवन के रत्न को छीनने के लिए समुद्यत हो रहे हो, लोक को आलोक (प्रकाश) से शून्य कर रहे हो, इस मालती के बान्धव जन को मरण का आश्रय करा रहे हो और कन्दर्प को दर्पहीन, मनुष्यों की नेत्र सृष्टि को निष्फल और जगत् को जीर्ण वन बनाने के लिए किस प्रकार से उद्योग कर रहे हो ?[25]

यहाँ पर्यायोक्ति अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

जिस माधव का तुममें और जिस माधव में तुम्हारी पहले नयनप्रीति उसके पश्चात् मन की अनन्यपरता और तत्पश्चात् शरीर की ग्लानि हुयी थी, वह यह प्रियतम युवक यहाँ विद्यमान है। हे सुन्दरि ! जड़ता को छोड़ो। ब्रह्मा जी का नैपुण्य प्रकाशित हो और कामदेव सफल अभिलाष वाला हो।[26]

यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार के द्वारा उल्लास अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

मकरन्द माधव को लक्ष्य कर कह रहा है—हा वयस्य माधव ! जो तुम मेरे शरीर के अवयवों में चन्दनरस, नेत्रों में शरत्काल के चन्द्र और हृदय में आनन्दरूप थे। मेरे जीवन के सदृश अतिशयोक्ति सुन्दर वैसे तुमको अनवसर में ही उन्मूलित करने वाले काल से मैं हतप्राय हो गया हूँ।[27]

यहाँ विषादन अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

माधव गज को लक्ष्य कर कह रहा है कि तुमने अनायास उखाड़े गये कमलदण्डरूप ग्रासों के अन्त में खिले हुए कमलों से सुगन्धित अपने मुख के जल को प्रियतमा के मुख में संक्रान्त किया। जल की बूँदे छोड़ने वाली सूँड़ से अत्यन्त सेचन कर दिया, पुनः सेचन की समाप्ति में स्नेह से सीधे दण्ड वाले कमल पत्ररूप छत्र को धूप हटाने के लिए धारण नहीं किया।[28]

यहाँ प्रहर्षण अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

(ग) उत्तररामचरित में अलंकारध्वनि

सूत्रधार का कथन है—ये देवी सरस्वती जिन ब्राह्मण भवभूति का वशवर्तिनी की तरह अनुसरण करती हैं, उन महाकवि भवभूति के द्वारा रचित उत्तररामचरित का अभिनय किया जायेगा।[29]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा व्यतिरेक अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

राम सीता को लक्ष्य कर रहे हैं—विवाह के समय से लेकर बाल्यावस्था में घर में, तत्पश्चात् पुनः युवावस्था में वन में शयन का कारण तथा किसी दूसरी स्त्री से अनाश्रित यह राम का बाहु तुम्हारा उपधान है।[30]

प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

तापसी वनदेवता से कहती है कि व्यवहार अत्यन्त प्रीतिकारक, वाणी में नम्रता से मधुर संयम, बुद्धि स्वभाव से मङ्गलरूपा तथा परिचय अनिन्दित होता है। वह यह पहले अथवा पीछे प्रेम का उल्लंघन न करने वाला निश्छल, पवित्र सज्जनों का आचार रहस्य विजयी होता है (सर्वोत्कृष्ट होता है)।

यहाँ अत्युक्ति अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

क्रौञ्चयुगल में से एक को व्याध के द्वारा मारे जाते हुए देखकर महर्षि वाल्मीकि ने सहसा आविर्भूत अनुष्टुप् छन्द में परिणत वाग्देवी का उच्चारण किया—हे व्याध ! तू कई वर्षों तक जीवित मत रह क्योंकि तूने क्रौञ्च के जोड़े में से कामासक्त एक का वध कर दिया है।[31]

यहाँ उपमा ध्वनि है।

सीता के करकुशेंशय को लक्ष्य कर राम कहते हैं--मैंने पहले विवाह की विधि में कंगनधारी जिस पाणि को पकड़ कर और चन्द्रमा के अमृत तुल्य शीतल किरणों से जो परिचित था (सीता--आर्यपुत्र ! अब भी आप वही हैं ?) सुन्दर लवली के अंकुर के सदृश उनके द्वितीय पाणि की उपमा से सुन्दर वही यह सीता का कोमल कर पा लिया।[32]

यहाँ अनन्वय तथा उपमेयोपमा अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

सुमन्त्र अपने मन में विचार कर रहे हैं—अहो कष्टमयी दशा को प्राप्त हो गया हूँ। क्योंकि मुझ जैसा व्यक्ति इस अनुष्ठान (संग्राम) का निवारण कैसे करे ? और एकमात्र साहस में अनुराग करने वाले ऐसे कार्य की भी अनुमति कैसे दे ?[33]

यहाँ विषम तथा व्याघात अलंकारों की व्यञ्जना हो रही हैं।

सुमन्त्र चन्द्रकेतु को लक्ष्य कर कह रहे हैं—हे वत्स ! इन्द्रजित् को मारने वाले वात्सल्यभाजन तुम्हारे पिता लक्ष्मण को भी उत्पन्न हुए अभी कितने दिन हुए हैं ? उनका पुत्र भी वीरोचित धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। सौभाग्य से दशरथ का वंश प्रतिष्ठा को प्राप्त हो गया है।[34]

यहाँ उल्लास अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

चन्द्रकेतु कहते हैं--सम्प्रति यह कोई नवीन पुरुषावतार हो गया है जिसके लिए भगवान् परशुराम भी वीर नहीं हैं। जो सातों भुवनों को पूर्ण अभयदान करने वाले पिता रामचन्द्र के पवित्र चरित्रों को भी नहीं जानता है।[35]

यहाँ अर्थापत्ति के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

लव रामचन्द्र के विषय में कहता है--हाँ, हैं, वे वृद्ध रामचन्द्र आलोचनीय चरित्र वाले नहीं हैं। सुन्द की स्त्री ताड़का का वध करने पर भी अकुण्ठित

यश वाले वे लोक में श्रेष्ठ ही हैं। खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे अथवा वाली के वध में जो नैपुण्य दिखलाया था, उसमें भी लोग जानकार हैं।[36]

यहाँ आक्षेप तथा पर्यायोक्ति अलंकारों की व्यञ्जना हो रही है।

क्रुद्ध लव और चन्द्रकेतु को देखकर सुमन्त्र कहते हैं—क्रोध से केशसमूह को अत्यधिक कम्पित कर देने वाला समस्त शरीर में उत्पन्न कम्प प्रकट हो रहा है। स्वभाव से ही लालकमल के पत्ते के कुछ सादृश्य वाले दोनों नेत्र लाल हो रहे हैं। भ्रूभंग से भयंकर इन दोनों के मुख भी कलंकयुक्त चन्द्रमा के ऊपर भ्रमण करने वाले भ्रमरों से युक्त कमल की कान्ति को धारण कर रहे हैं।[37]

यहाँ निदर्शना तथा अनुमान अलंकारों की व्यञ्जना हो रही है।

विद्याधर का कथन है—शान्तियुक्त महापुरुष राम के वाक्यों को सुनकर उनके प्रति आदरभाव के कारण युद्ध को छोड़कर लव शान्त हो गये हैं और चन्द्रकेतु भी राम के प्रति नतमस्तक हो गये हैं। दोनों पुत्रों के समागम से महाराज राम का कल्याण हो।[38]

यहाँ लव और चन्द्रकेतु का कोपभावशमन रामविषयक रति का अङ्ग बन गया है, अतः समाहित अलंकार है।

राम चन्द्रकेतु को लक्ष्य कर कह रहे हैं—दिनकर कुलचन्द्र चन्द्रकेतो ! शीघ्र आओ और मेरा दृढ़ आलिङ्गन करो। बर्फ के टुकड़े के सदृश शीतल तुम्हारे अङ्गों से मेरे चित्त का ताप भी शान्ति को प्राप्त करे।[39]

यहाँ उपमा अलंकार के द्वारा व्यतिरेक अलंकार की व्यञ्जना हो रही है क्योंकि उपमानभूत बर्फ के टुकड़ों से चन्द्रकेतु में अङ्ग रामचन्द्र के लिए अधिक शीतल हैं।

लव को देखकर राम कहते हैं—लोकों की रक्षा करने के लिए शरीरधारी के रूप में परिणत धनुर्वेद के समान, वेदरूपी कोश की रक्षा करने के लिए देहधारी क्षत्रिय धर्म के समान, पराक्रम के समुदाय के सदृश गुणों के सञ्चय के समान अथवा संसार के पुण्यों के फलों का समूह मानो शरीर को धारण कर प्रकट होकर स्थित है।[40]

यहाँ उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

लव अपने मन में कहता है—अरे, ये महानुभाव पवित्र सामर्थ्य एवं दर्शन से युक्त हैं। (इन्हें देखकर) विरोध शान्त हो गया है। आनन्द के द्वारा गाढ़ अनुराग फैल रहा है। वह दर्प कहीं चला गया है। नम्रता मुझे झुका रही है। इनको देखने पर न जाने क्यों सहसा पराधीन हो गया हूँ अथवा तीर्थ-स्थानों की तरह महापुरुषों का कोई बहुमूल्य उत्कर्ष होता है।[41]

यहाँ प्रहर्षण अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

राम चन्द्रकेतु से कहते हैं–तेजस्वी पुरुष फैले हुए दूसरों के प्रताप को नहीं सहन करता है। उसका वह स्वभाव से प्राप्त होने से अकृत्रिम अपना धर्म है। यदि प्रकाशशील सूर्य किरणों से लगातार नहीं तपते हैं तो सूर्यकान्तमणि तिरस्कृत की तरह अग्नि को क्यों उगलता है ?[42]

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार के द्वारा समासोक्ति की व्यञ्जना हो रही है। जिसका तात्पर्य यह है कि तेजस्वी लव ने यदि चन्द्रकेतु के प्रताप को नहीं सहन किया तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

राम का कथन है–ब्रह्मा आदि प्राचीन गुरुजनों ने वेद अथवा ब्राह्मणों के हित के लिए हजार वर्षों से भी अधिक तपस्या करके अपने ही तपोमय तेजः-स्वरूप इन अस्त्रों का साक्षात्कार किया था।[43]

यहाँ उदात्त तथा भाविक अलंकारों की व्यञ्जना हो रही है।

राम कुश को लक्ष्य कर कहते हैं–इस बालक की दृष्टि तीनों लोकों के बल के उत्कर्ष को तिनके के समान तुच्छ कर रही है। धीर और उद्धत गति पृथ्वी को झुका सी रही है। बाल्यावस्था में भी पर्वत की तरह गौरव को धारण करता हुआ यह क्या वीररस है ? अथवा साक्षात् अभिमान ही आ रहा है।[44]

यहाँ उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति और सन्देह अलंकारों के द्वारा उदात्त अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

राम अपने मन में कहते हैं–आश्चर्य है कि विनम्रता का सम्बन्ध होने पर भी कुश और लव का चलना, उठना और बैठना आदि क्रियायें साम्राज्य की सूचना करने वाली हैं।[45]

यहाँ अनुमान अलंकार की व्यञ्जना हो रही है।

राम का कथन है–इन दोनों बालकों में निपुणता से अनुमान करने योग्य सीता की वे वे समानतायें स्पष्ट हैं। निश्चय ही नवीन कमल के समान शोभायुक्त वह प्रियतमा सीता का मुख पुनः मेरे नेत्रों के समक्ष प्रकट सा हो गया है। श्वेत और स्वच्छ दाँतों की कान्ति से सुन्दर यह ओष्ठमुद्रा सीता की ही है, कर्णपाश भी वही है। यद्यपि नेत्र लाल और नीले हैं, तथापि सौन्दर्यगुण वही है।[46]

यहाँ स्मरण और उदात्त अलंकारों की व्यञ्जना हो रही है।

सन्दर्भ

१. ध्वन्यालोक २।२८
२. ध्वन्यालोक २।२४–२५
३. महावीरचरित १।५
४. महावीरचरित १।१०
५. वही ४।२७
६. वही ४।३३
७. वही ४।५१
८. वही ५।२१
९. वही ५।२३
१०. वही ५।३८
११. वही ५।४०
१२. वही ५।४५
१३. वही ५।५३
१४. वही ६।११
१५. वही ७।१४
१६. मालतीमाधव १।२२
१७. मालतीमाधव १।३०
१८. वही १।३६
१९. वही १।४०
२०. वही २।४
२१. वही २।५
२२. वही २।११
२३. वही ३।१६
२४. वही ५।१०
२५. वही ५।३०
२६. वही ६।१५
२७. वही ९।२२
२८. वही ९।३४
२९. उत्तररामचरित १।२
३०. उत्तररामचरित १।३७
३१. वही २।५
३२. वही ३।४०
३३. वही ५।२१
३४. वही ५।४०
३५. वही ५।३३
३६. वही ५।२४
३७. वही ५।३५
३८. वही ६।७
३९. वही ६।८
४०. वही ६।९
४१. वही ६।११
४२. वही ६।१४
४३. वही ६।१५
४४. वही ६।१९
४५. वही ६।२३
४६. वही ६।२६, २७

पञ्चम अध्याय

महाकवि भवभूति के नाटकों में वस्तुध्वनि

(क) महावीरचरित में वस्तुध्वनि

यह बालक पीठ पर दोनों ओर चोटी को छूने वाले कङ्कपत्र युक्त दो तरकशों को, थोड़ी सी भस्म से पवित्र चिह्न वाले वक्षःस्थल को और रुरु नामक मृग के चर्म को भी धारण कर रहा है। इसके अधोभाग में मौर्वी मेखला से नियन्त्रित (मजबूती से बाँधी गयी) मजीठ की रङ्ग वाली धोती, हाथ में धनुष, रुद्राक्षमाला तथा पिप्पल का दण्ड है।[1]

यहाँ तरकश, रुरु-मृगचर्म, मौर्वी, मेखला, धनुष, पिप्पलदण्ड आदि लक्षणों से यह ध्वनित हो रहा है कि यह वीर क्षत्रिय राजकुमार है।

सुप्रसन्न और उज्ज्वल मूर्ति, ब्रह्मज्ञानी राजा जनक पिता, यज्ञभूमि से उत्पत्ति, यह सब मुझ इस पर स्नेह करने को प्रेरित कर रहा है।[2]

यहाँ सीता की उत्पत्ति यज्ञभूमि से हुई है, ब्रह्मतत्त्ववेत्ता राजा जनक उनके पिता हैं, अतएव सीता परमपवित्रा सदाचारी शुद्धस्वरूपा हैं—इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

रावण का कथन है कि जहाँ कहीं भी रत्न हो वह इन्द्र को भी छोड़कर मुझे मिलता है।[3]

यहाँ रत्न मुझ रावण को ही मिलता है इन्द्र को नहीं मिलता है, अतः मैं शौर्य ऐश्वर्यादि विषयों में इन्द्र से भी बढ़कर हूँ और इस प्रकार सीता को प्राप्त करने का अधिकारी हूँ—इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

पर्वतसदृश मारीच को जिसने दूरातिदूर तृण के सदृश फेंक दिया, ताटका और सुबाहु का भी संहार किया, वह राजकुमार मेरे हृदय में चुभ रहा है।[4] यहाँ जिस राम ने मारीच को तृणवत् बहुत दूर फेंक दिया, ताटका और सुबाहु का वध कर दिया, वह निश्चय ही रावणादि राक्षसों का विनाश कर देगा, अतएव चिन्त्य है--इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

क्षत्रिय राम का अमोघ अस्त्र ब्राह्मणों का आशीर्वाद है क्षत्रतेज के साथ जब ब्रह्मतेज मिल जाता है तब अत्यन्त ही दुर्धर्ष हो जाता है।[5]

यहाँ ब्रह्मतेज क्षात्रतेज से मिल गया है—इस कथन से राम के लोकातिशायी शौर्य, प्रताप एवम् उत्कर्ष की व्यञ्जना हो रही है। राम का क्षात्रतेज ही पर्याप्त है, उस पर उन्हें ब्राह्मणों का भी आशीर्वाद मिल रहा है। अतएव राम के सामर्थ्य का कहना ही क्या ?

यदि वे ही पञ्चतत्त्व और वे ही शक्तियाँ रहीं तो मैं परशुराम के पराभाव का विश्वास नहीं करता।[6]

यहाँ वे ही पञ्चभूत हैं और वे ही शक्तियाँ हैं। अतः राम से परशुराम का पराभाव किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है--इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

भय, श्रम और लज्जा के संयोग से समुत्पन्न इस कम्प को सुन्दर मधूक पुष्पसदृश और लावण्यमय ये तुम्हारे अङ्ग किस प्रकार सह सकेंगे और इन कसे हुए स्तनद्वय पर पड़ने वाले श्वास से झुका हुआ त्रिवलीयुक्त तुम्हारा यह मध्य भाग कहीं टूट न जाय।[7]

यहाँ सीता का काँप उठना, उनके अङ्गों का मधूक पुष्पसदृश होना, मध्य भाग टूटने की सम्भावना आदि से उनकी अतिशय शारीरिक सुन्दरता, कोमलता तथा सुकुमारता व्यंग्य हो रही है।

परशुराम का कथन है कि मैंने शान्ति का अवलम्बन किया उसी का यह भयंकर परिणाम है कि क्षत्रियों को पुनः आधिपत्य मिला, वे पुनः धनुष पकड़ने लगे और भुजमद से उन्मत्त उन क्षत्रियों का उच्छृंखल चरित मुझे पुनः सुनना पड़ रहा है।[8]

यहाँ परशुराम के कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि यदि मैं अपने उसी उग्र रूप में रहता तो क्षत्रिल बालक राम के द्वारा धनुष नहीं तोड़ा जाता।

राम परशुराम से कहते हैं कि महर्षि जमदग्नि आपके जन्मदाता हैं, देवाधिदेव महादेव गुरु हैं, आपका शौर्य वचनों से नहीं कहा जा सकता, वह तो कर्मों से ही व्यक्त है, सप्तसमुद्रवेष्टित इस वसुन्धरा का निर्व्याज दान आपका त्याग है, क्षात्र और ब्रह्मतेज के निधानभूत आपका सब कुछ लोकोत्तर ही है।[9]

यहाँ राम के उपर्युक्त कथन से भगवान् जामदग्न्य का अलौकिक अनुभाव अभिव्यञ्जित हो रहा है। अमृतपूर्ण मेघ के सदृश अंगों वाले तुम्हारे कम्बुतुल्य कण्ठ में यह कुठार लगाना होगा।[10]

परशुराम के इस कथन से यह अभिव्यञ्जित हो रहा है कि बालक राम अत्यन्त ही सुन्दर एवं मृदु है, अतः वध करने योग्य नहीं है, तथापि कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए इसका वध करना ही होगा, अतः चित्त खिन्न हो रहा है।

परशुराम का कथन है कि यशोराशि के निरवकाश रूप में चारो ओर चमकते रहने पर स्वल्प भी कलङ्क प्राप्त कर साधारण जन द्वारा फैलायी गयी उत्तम पुरुष की निन्दा पुनः किसी प्रकार नहीं मिटती।[11]

यहाँ परशुराम के इस कथन से यह वस्तु व्यञ्जित हो रही है कि मेरा निर्मल यश सर्वत्र चमक रहा है। ऐसी स्थिति में यदि मैं राम को क्षमा कर देता तो लोग समझेंगे कि परशुराम राम के दिव्य प्रभाव से अभिभूत हो गये। इस प्रकार मेरे निर्मल यश में कलङ्क लग जायेगा जो पुनः किसी प्रकार नहीं मिट सकता।[1]

दशरथ परशुराम को लक्ष्य कर कहते हैं—अज्ञ, विपरीतग्राही अथवा सन्देह रखने वाला व्यक्ति यदि विरुद्ध आचरण करता है तो उसकी रक्षा का भार गुरु को होता है परन्तु जिसका ज्ञान असन्दिग्ध और अविपरीत है वैसा व्यक्ति यदि विरुद्ध आचरण करता है और उसे राजा शासित नहीं करता तो प्रजा में विप्लव उपस्थित हो जाता है।[12]

यहाँ दशरथ के कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि परशुराम ज्ञानी एवं सत्यविषयग्राही हैं यदि वे विरुद्ध आचरण करते हैं तो उन पर शासन किया जाना चाहिए।

परशुराम विश्वामित्र से कहते हैं कि धर्म, अध्यात्म और धनुर्वेद की शिक्षा हमने भगवान् शिव से प्राप्त की है, जब हमने सभी क्षत्रियों का नाश ही कर दिया है तो क्षत्रिय हमारा क्या शासन करेंगे ? सम्बन्ध और वार्धक्य के कारण वसिष्ठ हमारे आराध्य हैं परन्तु प्रतिस्पर्धा में हमारी समानता या तुलना वे नहीं कर सकते। तपस्या और ज्ञान में हमारे सदृश है ही कौन ?[13]

यहाँ परशुराम के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि तपस्या और ज्ञान में मेरे सदृश अन्य कोई नहीं है। जब प्रतिस्पर्धा में महर्षि वसिष्ठ भी नहीं ठहरते तो विश्वामित्र सदृश ऋषि का कहना ही क्या ?

महर्षि वसिष्ठ का कथन है कि यद्यपि यह परशुराम हमारा स्वजन अवश्य है परन्तु दर्प के कारण कठोर कार्य कर रहा है, अतएव निग्रह के योग्य है। यदि मैं क्रुद्ध दृष्टि से इसकी ओर एक बार देख भी लूँ तो भार्गव शिशु के लिए वह हानिकारक होगा।[14]

यहाँ वसिष्ठ के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि यदि

मैं क्रुद्ध दृष्टि से परशुराम की ओर देखभर लूँ तो मेरे तेज के प्रभाव से इसका बहुत बड़ा अनिष्ट हो जायेगा।

विश्वामित्र राम को लक्ष्य कर कह रहे हैं–ये राम वीरलक्ष्मी और नम्रता से सुशोभित मान्य मुनि के प्रति आदर से अवनत और गुणों से उन्नत हैं, अपने द्वारा पराजित परशुराम के प्रति इनके हृदय में वैसा ही संकोच है जैसे शिष्य को गुरु के साथ अभद्रता करने पर शिष्य के हृदय में होता है।[15]

यहाँ उपमा अलंकार के द्वारा राम के सुशील हृदय के संकोच की व्यञ्जना हो रही है।

परशुराम का कथन है कि शरीरियों में जब दोष का शमन किसी अन्य प्रकार से होता नहीं दिखाई पड़ता तब राजा को वैद्य की तरह अस्त्र प्रयोग करना ही होता है।[16]

यहाँ उपमालंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि दोष-शमन के लिए राजा को अस्त्रप्रयोग करना आवश्यक है। अतः राम के द्वारा आयुधपरिग्रह अनुचित नहीं है।

रावण कहता है कि मेरे लिए विधाता ही क्या चीज है? ब्रह्माण्ड को पीसकर मैं नवीन ब्रह्माण्ड बना दूँ जिसकी तुलना न हो। हमारी कीर्ति और प्रताप उसमें चन्द्र और सूर्य का काम करें तब हमें आनन्द हो, मैं ऐसा कर देता, परन्तु आलस्य ही मुझमें बड़ा दोष है। तो फिर दयापात्र ब्रह्मा आदि को क्यों दोष दिया जाय?[17]

यहाँ रावण के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि विधाता मेरे लिए कुछ भी नहीं है, वह तो मेरी दया का पात्र है।

(ख) मालतीमाधव में वस्तुध्वनि

कामन्दकी का कथन है कि अभिप्राय जानने वाले के सदृश, कल्याण की सूचना करने वाले वामनेत्र से भी दक्षिणता का अवलम्बन किया जाता है।[18]

यहाँ "वामाक्षि के स्पन्दन से भविष्य में कार्य की सिद्धि सुनिश्चित है" इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

माधव को देखकर मकरन्द कहता हैं कि इनका तो गमन आलस्ययुक्त, दृष्टि शून्य, शरीर प्रसाधन के सौन्दर्य से रहित और श्वास अधिक रूप से चल रहा है। यह क्या है? अथवा इससे भिन्न क्या होगा? लोक में कामदेव की आज्ञा विचरण कर रही है और यौवन विकारपूर्ण है। सुन्दर और प्रिय वे–वे चन्द्र आदि प्रसिद्ध पदार्थ धैर्य को हटा रहे हैं।[19]

यहाँ "माधव किसी सुन्दरी रमणी में आसक्त हो गया है"–इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

माधव मालती के विषय में कहता है–उसका हस्तपादादि अवयव परि-मर्दित छोटी कमल की डण्डी के सदृश म्लान है। भोजन आदि क्रियाओं में परिजनों की प्रार्थनाओं से बड़ी कठिनाई से उसकी प्रवृत्ति होती है और तत्क्षण काटे गये हस्तिदन्त खण्ड के सदृश उसका सुन्दर कपोल कलङ्क से रहित चन्द्रमा की शोभा को धारण करता है।[20]

यहाँ माधव के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि मालती के ये चिह्न उसकी कामवेदना को प्रकट कर रहे हैं।

मकरन्द माधव से कहता है–कोई आन्तरिक कारण पदार्थों को परस्पर मिला देता है। प्रेम बाहर के कारणों का आश्रय नहीं करता। सूर्य के उदय होने पर श्वेत कमल खिल जाता है और चन्द्रमा के उदित होने पर चन्द्र-कान्तमणि पिघल जाता है।[21]

मकरन्द के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि माधव का मालती के प्रति नैसर्गिक स्नेह है।

पुनः पुनः ग्रीवा को परिवर्तित कर जाती हुयी और परिवर्तित वृन्त वाले कमल के सदृश सुन्दर मुख को धारण करने वाली निबिड नेत्र लोमों से युक्त सुन्दरी ने अमृत और विष से लिप्त कटाक्ष मेरे हृदय में मानो दृढ़ता से प्रवेशित कर दिया है।[22]

यहाँ माधव के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि सुन्दरी मालती के द्वारा मेरे हृदय में अनुद्धरणीय और दुस्सह कटाक्षरूपी शल्य प्रवेशित कर दिया है।

संसार में अतिशय प्रसिद्ध नवीन चन्द्रकला आदि पदार्थ जयशील हैं। स्वभाव से सुन्दर और भी पदार्थ हैं जो कि मन को प्रसन्न करते हैं परन्तु जो यह नेत्रचन्द्रिका मालती लोक में मेरे नेत्रविषय को प्राप्त हो गयी है, सांसारिक पदार्थों में एक वही सौख्य का कारण है।[23]

यहाँ माधव के इस कथन से यह वस्तु व्यञ्जित हो रही है कि भले ही लोगों को रुचि के भेद से नूतन चन्द्रकला आदि अथवा कमल आदि पदार्थ सौख्याधायक हों परन्तु मेरे लिए तो मालती ही अनिर्वचनीय सौख्य का हेतु है।

माधव पवन को लक्ष्य कर कहता है कि विकासोन्मुख मुकुलों से दन्तुर कुन्दपुष्पों के गुच्छ से क्षरित होने वाले घनपुष्परसों के सौरभ के सहचर हे वायो ! कुछ चञ्चल नेत्रों से युक्त अवनत अङ्ग वाली उस सुन्दरी का आलिंगन करते हुए मेरे प्रत्येक अङ्ग का स्पर्श करो।[24]

यहाँ माधव के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि हे

वायो ! उस सुन्दरी मालती के सम्पर्क के समय ही मेरे प्रत्येक अङ्ग का स्पर्श करो जिससे कि मेरा वियोग ताप दूर हो सके। यहाँ विषम कुन्द कोश के सञ्चार से गति प्रतिबन्ध होने से वायु की मन्दता, मकरन्द सम्पर्क से शीतलता और गन्धबन्धुता से सौरभ्य द्योतित हो रहा है।

मालती कहती है–प्रत्येक रात्रि को आकाश में सम्पूर्ण कलाओं से युक्त चन्द्रमा प्रज्ज्वलित हो और कामदेव दाह करें। ये लोग मृत्यु से अधिक क्या करेंगे ? मेरे तो पिता प्रिय और प्रशंसनीय हैं। माता निर्मल वंश में उत्पन्न और प्रिय हैं। इसी प्रकार वंश भी निष्कलङ्क और प्रिय है, परन्तु यह जन (माधव) और अपना जीवन प्रिय नहीं है।[25]

यहाँ मालती के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि मैं अपने माता और पिता के प्रति समर्पित हूँ, मुझे अपने वंश की कीर्ति प्रिय है। उस अनुपात में माधव और अपना जीवन भी प्रिय नहीं है। अतः मैं माधव से प्रेम करके कुलकन्या के प्रतिकूल साहस नहीं करूँगी।

कामन्दकी मालती को लक्ष्य कर कहती है कि अतिशय श्वेत और रूक्ष कपोलों से युक्त मुख को धारण करती हुई यह मालती अतिशय सौन्दर्य को प्राप्त हो रही है क्योंकि सौन्दर्यशाली जन में परिभ्रमण करता हुआ ललित कामदेव का व्यापार अतिशय उत्कर्ष के साथ रहता है।[26]

यहाँ कामन्दकी के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि यद्यपि मालती कामवेदना से कृश हो गयी है तथापि अतिशय सौन्दर्य से युक्त है, क्योंकि स्वभाव से सुन्दर लोगों में कामविकार भी अतिशय शोभा को बढ़ाता है।

कामन्दकी मालती को लक्ष्य कर कहती है–हे सुन्दरि ! फूल तोड़ने से उत्पन्न परिश्रम तुम्हारे वचन को स्खलित करता है, प्रत्येक शरीरावयव का अवलम्ब करता है, मुखचन्द्र को उद्भासित करने वाले स्वेद बिन्दुओं को उत्पन्न करता है और नेत्रों को भी मुकुलित कर देता है, अतएव वह प्रियदर्शन के तुल्य तुम्हारे प्रति व्यवहार करता है।[27]

यहाँ कामन्दकी के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि प्रियतम को देखते हुए जो अनुभाव होते हैं, परिश्रम के कारण वे तुम्हारे में दिखाई पड़ रहे हैं क्योंकि प्रियतमावलोकन भी रमणी के वचन को गद्गद कर देता है, प्रत्येक शरीरावयव का अवलम्ब करता है, सात्त्विक भावोदय के द्वारा मुखचन्द्र में स्वेदबिन्दुओं को उत्पन्न करता है और हर्ष के आधिक्य से नेत्रों को भी मुकुलित कर देता है। यतोहि प्रियतम तुम्हें देख रहा है इस लिए पुष्पावचय के कार्य को छोड़ दो।

माधव कामन्दकी को लक्ष्य कर कहता है–शास्त्र में प्रतिष्ठा, स्वाभाविक ज्ञान, प्रगल्भता, गुणों के अभ्यास से सम्पन्न वाणी, कार्य के उचित समय का अनुसरण और प्रतिभा की नवीनता ये गुण कार्यों में मनोरथ को पूर्ण करने वाले हैं ।[28]

माधव के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि देवी कामन्दकी सद्‌गुणों की निधान हैं, अतः वे मेरे प्रिय कार्य को सम्पन्न कराने में अवश्य ही सफल होंगी ।

माधव कहता है कि इन्होंने मुझको जैसे श्वेतकमलों की माला से बाँध लिया है, अतिशय दुग्धप्रवाह से जैसे स्नान कराया है, विस्तारित लोचनों से जैसे समूचे मुझको ग्रास कर लिया है और गाढ़ अमृतवर्षी मेघ से जैसे हठात् सेचन कर दिया है ।[29]

यहाँ माधव के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि मालती मुझसे अत्यधिक अनुराग करती है जो कि अतर्कित रूप से मुझे देख कर अतिशय हर्ष को प्राप्त हो गयी है, अतएव मैं धन्य हूँ ।

मकरन्द माधव को लक्ष्य कर कहता है कि मनुष्यलोक से तुम्हारा प्रस्थान होने पर शरीर भारप्राय जीवन वज्रमय कील के सदृश, दिशायें शून्य, इन्द्रिय निष्फल, समय दुःखद और मनुष्यलोक सर्वत्र प्रकाशरहित दिखाई पड़ रहा है ।[30]

यहाँ मकरन्द के इस कथन से यह वस्तु व्यञ्जित हो रही है कि सच्चे सुहृद् के परलोक प्रयाण कर जाने पर जीवन एवं जगत् साररहित हो जाता है ।

(ग) उत्तररामचरित में वस्तुध्वनि

सूत्रधार कहता है–ये देवी सरस्वती जिन ब्राह्मण भवभूति का वशवर्तिनी की तरह अनुसरण करती हैं उनके द्वारा रचित उत्तररामचरित का अभिनय किया जायेगा ।[31]

यहाँ उपमालङ्कार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि महाकवि भवभूति को देवी सरस्वती इष्ट हैं अतएव वे उनकी कृपा के द्वारा सुन्दर से सुन्दर रचना करने में सक्षम हैं । इसके अतिरिक्त यहाँ इस वस्तु की भी व्यञ्जना हो रही है कि इस नाटक में देवी सीता वाणी मात्र से ही वशवर्तिनी की तरह होकर राम का अनुसरण करती हैं अर्थात् नाटक की समाप्ति पर राम को प्राप्त कर लेती हैं ।

राम का कथन है–लौकिक सत्पुरुषों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है

परन्तु आद्य ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ स्वयं चलता है।[32]

यहाँ लौकिक सज्जनों की अपेक्षा आद्य ऋषियों की वाणी की अधिकता बतलाने से व्यतिरेक अलंकार है। जिससे इस वस्तु की व्यञ्जना होती है कि आद्य ऋषियों के मुख से जो कुछ निकल जाता है। तपस्या की सिद्धि के बल से वही होता है। उनका कथन कभी भी निष्फल नहीं होता।

राम का कथन है–दुःखी व्यक्ति का लोगों के द्वारा मनोविनोद किया जाना चाहिये, इसलिए तुम्हारे विषय में जो हम लोगों ने अमंगल वाक्य कहा है वह उचित नहीं है। सुगन्धित पुष्प की मस्तक पर स्थिति स्वभाव-सिद्ध है। चरणों के द्वारा ताडन करना उचित नहीं है।[33]

यहाँ दृष्टांत अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि देवी सीता ने अनेक प्रकार से क्लेश पाये हैं, अतः उनका समाराधन किया जाना चाहिए।

राम कहते हैं–हे भगवति ! भगीरथ ने शरीर के कष्ट की चिन्ता न करते हुए तपस्या करके सगर के यज्ञ में अश्व के अन्वेषण में संलग्न पृथ्वी को खोदने वाले क्रोध से कपिल मुनि के तेज से जले हुए पिता (दिलीप) के पितामहों (सगरपुत्रों) को तुम्हारे जल के स्पर्श से बहुत दिनों के पश्चात् उद्धार किया था।[34]

यहाँ उदात्त अलंकार के द्वारा भागीरथी की अलौकिक पवित्रता ध्वनित हो रही है।

राम का कथन है–पर्वत की नदियों के तटों पर वानप्रस्थों से आश्रित वृक्षों वाले ये वे तपोवन हैं जिनमें अतिथिसत्कार में लगे हुए मुट्ठी भर नीवार धान्य को पकाने वाले संयमी गृहस्थ घरों में निवास कर रहे हैं।[35]

यहाँ उल्लास अलंकार के द्वारा संयमी गृहस्थों की सदाशयता एवं संतुष्टि अभिव्यञ्जित हो रही है।

राम सीता को लक्ष्य कर कहते हैं–हे कमललोचने सीते ! तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाये हुये जीवन कुसुम को विकसित कर देने वाले, पूर्ण रूप से तृप्त कर देने वाले, सभी इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले, कानों के लिए अमृतस्वरूप तथा हृदय के लिए पौष्टिक रसायन के समान हैं।[36]

यहाँ राम के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि सीता के मधुर वचन उनके लिए अत्यन्त ही तृप्तिकारक हैं।

राम सीता को लक्ष्य कर कहते हैं–यह सीता घर में लक्ष्मी है, यह नेत्रों में अमृतशलाका है, इसका यह स्पर्श शरीर के ऊपर गाढ़ा चन्दन का रस है, इसका यह बाहु गले पर शीतल और कोमल मुक्ताहार है। इसकी क्या वस्तु

प्रियतर नहीं है, परन्तु इसका वियोग तो परम असह्य है।[37]

यहाँ एक सीता का अनेक प्रकार से उल्लेख होने के कारण उल्लेख अलंकार है। उल्लेख अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है– "राम की सीता के प्रति प्रबल आकांक्षा है और उनका वियोग राम के लिए अत्यन्त असह्य है।"

राम अपने हस्त को लक्ष्य कर कह रहे हैं–हे दक्षिणहस्त ! ब्राह्मण के मृत बालक को जीवित करने के लिए शूद्र तपस्वी पर तलवार छोड़ा। परिपूर्ण गर्भ के भार से आलस्ययुक्त सीता के निर्वासन में समर्थ राम का बाहु है, तुम्हें दया कहाँ से होगी ?[38]

यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि राम का वह बाहु जिसने परिपूर्ण गर्भ वाली सती सीता तक का निर्वासन कर दिया, वह अत्यधिक निष्करुण है उसमें करुणा का प्रश्न ही नहीं उठता, अतः शूद्र तपस्वी पर प्रहार करें।

मुरला सीता को लक्ष्य कर कह रही है–हृदयरूपी कमल को सुखाने वाला कठोर बहुत बड़ा शोक इस सीता के डण्ठल से टूटे हुए कोमल किसलय के समान दुर्बल और पीले शरीर को उसी प्रकार सुखा रहा है जिस प्रकार शरदृतु की कड़ी धूप केतकी के फूल के भीतरी पत्ते को सुखा देती है।[39]

यहाँ उपमा तथा रूपक अलंकारों के द्वारा सीता के क्षीण एवं परिपाण्डु शरीर की व्यञ्जना की गई है।

तमसा सीता से कहती है कि तुम्हारा हृदय इस समय निराशा के कारण उदासीन की तरह, पति के परित्यागरूप अप्रिय आचरण से कलुषित की तरह, इस बहुत समय तक रहने वाले वियोग में आकस्मिक सम्मेलन से निश्चल की तरह, प्रिय की सम्बोधनरूप सुजनता से प्रसन्न की तरह और प्रिय राम की शोकमयी अवस्थाओं से शोकाकुलित तथा प्रेम के कारण द्रवीभूत की तरह हो रहा है।[40]

यहाँ तमसा के इस कथन से देवी सीता के मार्मिक भावों से पूर्ण हृदय की अभिव्यक्ति हो रही है।

तमसा सीता से कहती है–अधिक प्रवाहों से फैले हुए तथा आनन्द और शोक से उत्पन्न आँसुओं को बहाती हुयी सुन्दर नेत्रलोमों से युक्त विस्फारित दीर्घ तथा श्वेत, प्रिय तथा सुन्दर दुग्ध की नहर की तरह तुम्हारी दृष्टि प्रेम की वृष्टि करती हुई हृदयेश्वर राम को स्नान करा रही है।[41]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा सीता की प्रेमपूर्ण दृष्टि राम को अत्यधिक अनुराग के साथ देख रही है–इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।

सीता को लक्ष्य कर अरुन्धती कहती हैं—तुम मेरी पुत्री हो अथवा शिष्या हो अथवा जो भी सम्बन्ध है, वह वैसा ही रहे, परन्तु तुममें पवित्रता का उत्कर्ष तो मेरी भक्ति को दृढ़ कर रहा है। चाहे तुममें बालभाव हो अथवा स्त्री भाव, तुम संसार की वन्दनीया हो। गुणियों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, स्त्रीत्व, पुरुषत्व अथवा जटा, कषायवस्त्रादि चिह्न तथा अवस्था पूजा के स्थान नहीं होते।[42]

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि अयि वत्से सीते! तुममें पवित्रता का आधिक्य है, अतः तुम वन्दनीय तथा अभिनन्दनीय हो।

सुमन्त्र का कथन है कि जो अकारण पक्षपात होता है उसका प्रतिकार नहीं हैं क्योंकि वह प्रेममय सूत्र प्राणियों के हृदय में (भीतर ही भीतर) सी देता है।[43]

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि प्रेम कारण की अपेक्षा नहीं रखता। वह तो बिना किसी विशेष हेतु के ही दो प्राणियों को मिला देता है।

लव को देखकर सुमन्त्र कहते हैं—मनोरथ का जो कारण था उसको भाग्य ने पहले ही छीन लिया। पहले से ही कटी हुयी लता में फूल की उत्पत्ति कैसे हो सकती है?[44]

यहाँ दृष्टान्त अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि मनोरथ रामभद्र के पुत्ररत्न का बीज सीता दैव के द्वारा पहले ही नष्ट कर दिया गया है। अतः जब सीतारूपी बीज नष्ट हो चुका है तो पुत्ररूपी अंकुर की सम्भावना करना ही व्यर्थ है।

लव को देखकर राम कहते हैं—लोकों की रक्षा करने के लिए शरीरधारी के रूप में परिणत धनुर्वेद के समान, वेदरूपी कोश की रक्षा करने के लिए देहधारी क्षत्रिय धर्म के समान, पराक्रम के समुदाय के सदृश गुणों के संचय के समान अथवा संसार के पुण्यों के फलों का समूह मानो शरीर को धारण कर प्रकट होकर स्थित है।[45]

यहाँ राम के इस कथन से लव के अनुपमेय गुणों की व्यंजना हो रही है।

राम का कथन है कि तेजस्वी पुरुष फैले हुए दूसरों के प्रताप को नहीं सहन करता उसका वह स्वभाव से प्राप्त होने के कारण स्वाभाविक धर्म है। यदि प्रकाशशील सूर्य किरणों से लगातार नहीं तपते हैं तो सूर्यकान्तमणि तिरस्कृत की तरह अग्नि को क्यों उगलता है?[46]

यहाँ राम के इस कथन से इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि तेजस्वी

बालक लव का वीर पुरुष के सदृश आचरण सर्वथा उचित है, क्योंकि तेजस्वी पुरुष दूसरों के उत्कर्ष को सहन नहीं कर सकता।

राम का कथन है—सभी अंगों से निकला हुआ प्रेम से उत्पन्न अपने शरीर के उत्तम अंश के समान एक चैतन्यतत्त्व बाह्यदेश में प्रकट होकर विद्यमान के सदृश प्रगाढ़ आनन्द से क्षुभित हृदय के द्रव से खींचा गया यह बालक दृढ़ आलिङ्गन करने पर मानो मुझे बर्फ से सींच रहा हो।[47]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि यह बालक आलिङ्गन किये जाने पर अत्यधिक आनन्द की अनुभूति करा रहा है।

कुश कहता है कि महारानी सीता के बिना रामचन्द्र को कौन-सी वस्तु दुःखदायी नहीं है अर्थात् प्रत्येक वस्तु दुःखदायी है क्योंकि प्रियतमा के मर जाने पर सम्पूर्ण संसार जीर्ण जंगल के समान हो जाता है। कहाँ वह उतना अधिक स्नेह और कहाँ यह अवधिशून्य वियोग? तुम रामायण नहीं पढ़े हुए की तरह ऐसा क्यों पूछ रहे हो?[48]

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार के द्वारा इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है कि महारानी सीता के बिना रामचन्द्र के लिए संसार की प्रत्येक वस्तु दुःखदायी है।

सन्दर्भ

१. महावीरचरित १।१८
२. वही १।२१
३. वही १।३०
४. वही २।१
५. वही २।५
६. वही २।१४
७. वही २।२१
८. वही २।२९
९. वही २।३६
१०. वही २।४६
११. वही ३।४
१२. वही ३।३५
१३. वही ३।३७
१४. वही ३।४२
१५. वही ४।२०
१६. वही ४।२३
१७. वही ६।१०
१८. मालतीमाधव १।९
१९. मालतीमाधव १।१८
२०. वही १।२३
२१. वही १।२५
२२. वही १।३०
२३. वही १।३७
२४. वही १।३९
२५. वही २।२
२६. वही २।४

२७. मालतीमाधव ३।८
२८. मालतीमाधव ३।११
२९. वही ३।१६
३०. वही ६।३७
३१. उत्तररामचरित १।२
३२. उत्तररामचरित १।१०
३३. वही १।१४
३४. वही १।२३
३५. वही १।२५
३६. वही १।३६
३७. वही १।३८
३८. वही २।१०
३९. वही ३।५
४०. वही ३।१३
४१. वही ३।२३
४२. वही ४।११
४३. वही ५।१७
४४. वही ५।२०
४५. वही ६।६
४६. वही ६।१४
४७. वही ६।२२
४८. वही ६।३०

षष्ठ अध्याय

महाकवि भवभूति के नाटकों में गुणीभूतव्यंग्य

काव्य में कभी-कभी व्यंग्यार्थ का अधिक चमत्कार नहीं रहता है। जहाँ व्यंग्यार्थ की स्थिति इस प्रकार की रहती है, वहाँ व्यंग्य के आधार काव्य को किस संज्ञा से अभिहित किया जाय ? आचार्य आनन्दवर्धन इसका समाधान करते हुए इस प्रकार के काव्य को 'गुणीभूतव्यंग्य' संज्ञा से अभिहित करते हैं। जहाँ व्यंग्य के सम्बन्ध के कारण वाच्य में चारुता अधिक रहती है, वहाँ 'गुणीभूतव्यंग्य' की स्थिति रहती है।[1]

गुणीभूत शब्द का अर्थ 'अप्रधानीभूत' है। 'गुणीभूतव्य ्ग्य' पद में बहुव्रीहि समास है, अतः इसका अर्थ होगा अप्रधानीभूत है व्यङ्ग्यार्थ जिसमें ऐसा काव्य। 'गुणीभूत' शब्द में 'च्वि' (ई) प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। च्वि प्रत्यय का प्रयोग अभूततद्भाव (जो जैसा नहीं होता उसे वैसा बतलाने) के लिए करते हैं। आचार्य आनन्दवर्धन काव्य की आत्मा प्रतीयमान अर्थ को बतलाते हैं। वे अर्थ के वाच्य और प्रतीयमान दो रूप प्रस्तुत करते हैं। इनमें प्रतीयमान को काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठापि करते हैं। इस प्रकार प्रतीयमान अर्थ वाच्य अर्थ की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण एवं बड़ा रहता है। परन्तु गुणीभूतव्यङ्ग्य रूप काव्य भेद के द्वारा वे अपने उपर्युक्त सिद्धान्त का अपवाद प्रस्तुत करते हैं कि कभी-कभी प्रतीयमान अर्थ वाच्य अर्थ की अपेक्षा प्रधान नहीं भी रहता। तात्पर्य यह है कि जो प्रतीयमान अर्थ सदैव प्रधान रहता है वह कभी-कभी अप्रधान भी बन जाता है। इसी भाव को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने 'च्वि' प्रत्यय से युक्त 'गुणीभूत' शब्द का प्रयोग किया है, 'गुणभूत' शब्द का नहीं।

इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' काव्य की कल्पना के द्वारा काव्य के प्राणतत्त्व के रूप में स्थापित अपने व्यङ्ग्यार्थ में अप्रधानता को भी प्रस्तुत करते हैं। परन्तु वे ऐसी स्थिति में भी अपने मूलसिद्धान्त (व्यङ्ग्यप्राधान्य) से दूर हटते नहीं दिखायी पड़ते। वे आगे चलकर 'गुणी-

भूतव्यङ्ग्य' को 'ध्वनिनिष्यन्द'[2] कहते हैं। इस 'ध्वनिनिष्यन्द' का अर्थ है 'ध्वनिसंज्ञक महाकुण्ड से विनिर्गत निर्झर से निर्मित एक अवान्तर व्यङ्ग्य-कुण्ड।' आशय यह है कि अप्रधान गुणीभूतव्यङ्ग्य भी मूलतः प्रधान ध्वनि-क्षेत्र से ही निकला हुआ क्षेत्र है, इसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इस प्रकार ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य के मध्य केवल चमत्कारपरिमाण का ही अन्तर है, कोई स्वरूपगत मौलिक भेद नहीं है। अतएव दोनों के भेदों में प्रायः एकता रहेगी, प्राधान्य पर निर्भर कुछ भेद छूट जायेंगे।[3] आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनिभित्ति पर ही गुणीभूतव्यङ्ग्य के भेद प्रस्तुत करते हैं। जैसे–

१–तिरस्कृतवाच्य

लावण्यसिन्धुरपरैव हि केयमत्र यत्रोत्पलानि शशिना सह सम्प्लवन्ते।
उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र यत्रापरे कदलिकाण्डमृणालदण्डाः॥

नदी तट पर आयी हुयी किसी सुन्दरी रमणी को देखकर कोई रसिक कह रहा है–ओह ! यहाँ यह कौन सी एक विचित्र लावण्यसिन्धु है जिसमें कमल चन्द्रमा के साथ तैर रहे हैं, जहाँ गज की गण्डस्थली उतरती दिखलाई दे रही है और जहाँ कुछ और ही प्रकार के कदलीस्तम्भ तथा मृणालदण्ड दिखाई दे रहे हैं।[4]

यहाँ लावण्यसिन्धु किसी परमसुन्दरी रमणी को कहा गया है। उत्पल उसके नयनों को, चन्द्रमा उसके रुचिर आनन को, करिकुम्भ उसके सुडौल पीनस्तनों को, कदलीस्तम्भ उसके मांसल ऊरुओं को और मृणालदण्ड कोमल भुजाओं को कहा जा रहा है। इस श्लोक में विशेषता यह है कि कवि ने यहाँ सुन्दरी या उसके अंगों के वाचक एक भी शब्द का प्रयोग नहीं किया है। सुन्दरी एवं उसके अंगों की प्रतीति श्लोक में प्रयुक्त लावण्यसिन्धु आदि पदों से ही करनी पड़ रही है। अतएव इनके प्रथम अर्थ बदलकर प्रकरण द्वारा सुन्दरी आदि दूसरे अर्थों को प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रकार यहाँ वाच्यार्थ का तिरस्कार हो जाता है। प्रतीयमान अर्थ के द्वारा 'लावण्यसिन्धु (आकाशगंगा) रूपी सिन्धु की अपेक्षा नायिकारूपी सिन्धु की उत्कृष्टता' प्रकट हो रही है, क्योंकि आकाशगंगा में जब चन्द्रमा रहता है तब प्रफुल्ल कमल नहीं और जब कमल प्रफुल्लित होते हैं तो दिन में या तो चन्द्रमा रहता ही नहीं या फिर विवर्ण रूप में। परन्तु इस सुन्दरीरूपी सिन्धु में तो दोनों साथ-साथ प्रफुल्लित और प्रोद्भासित दिखलाई दे रहे हैं। इस प्रकार आकाश-गंगा और नायिकारूपी सिन्धु में जो व्यतिरेक है उसकी प्रतीति अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा प्रतीयमान अर्थ (व्यङ्ग्य) के रूप में हो रही है। अब

यहाँ यह देखना है कि यह व्यतिरेकरूपी प्रतीयमान अर्थ वाच्य अर्थ के चमत्कार से अधिक है या समान या न्यून। इस श्लोक में प्रयुक्त 'अपरैव' पद वैचित्र्य का जनक है। इससे मन में यह कुतूहल उत्पन्न होता है कि 'लावण्यसिन्धु' की क्या विचित्रता या विशेषता है ? इसका समाधान उपर्युक्त व्यतिरेक के द्वारा होता है। जो विशेषता या विचित्रता सामान्यतया आकाशगंगा में नहीं रहती वह सुन्दरीरूपी सिन्धु में है। इसीलिए वह 'अपरा' है। इस प्रकार यहाँ व्यतिरेक वैचित्र्य का साधक है। प्रकृत सन्दर्भ में व्यतिरेक का चमत्कार उतना प्रवृद्ध नहीं है जितना कि स्वतन्त्रतया प्रतीयमान व्यतिरेक का हो सकता है। प्रस्तुत प्रतीयमान अर्थ के बोध से जो चमत्कार हो रहा है, वह वाच्य अतिशयोक्ति के चमत्कार से अधिक नहीं है। यहाँ वाच्य और व्यङ्ग्य दोनों अर्थों का चमत्कार समान है। अतः यहाँ गुणीभूतव्यङ्ग्य' है। इसमें वाच्य अर्थ तिरस्कृत हो गया है, अतः यह 'तिरस्कृतवाच्यगुणीभूत-व्यङ्ग्य' कहलायेगा। इस प्रकार के प्रतीयमान को वाच्यसिद्धि का अङ्ग कहा जाता है।

इस श्लोक के अनुशीलन से यह तथ्य उपस्थित होता है कि यहाँ प्रस्तुत होने वाली नायिका सर्वप्रथम विस्मय और तदनन्तर अभिलाषरूप विप्रलम्भ का आलम्बन बन रही है। अतः रस की स्थिति होने पर यह श्लोक ध्वनि-काव्य के अन्तर्गत आ जायेगा। ऐसी स्थिति में यहाँ गुणीभूतव्यङ्ग्य क्यों मान लिया गया ? इसका समाधान यह है कि रसप्रसंग में विभावादि वाच्यार्थ-स्थानीय होते हैं, अतः विस्मय से अभिलाषपर्यन्त वाच्य की ही स्थिति रहेगी और तत्पश्चात् प्रतीत होने वाला विप्रलम्भ श्रृंगाररस व्यङ्ग्य स्थानीय होकर ध्वनिरूपता को प्राप्त कर लेगा।[5] इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए ध्वनिकार लिखते हैं–"रसभावादि रूप तात्पर्य की पर्यालोचना करने पर तो यह गुणीभूतव्यङ्ग्य भी ध्वनिरूप ही हो जाता है।[6]

२. अतिरस्कृतवाच्य

यहाँ वाच्य की स्थिति यथावत् रहती है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। ध्वनि के सदृश ही यह गुणीभूतव्यङ्ग्य का भेद भी दो प्रकार का हो जाता है–

१. अलक्ष्यक्रम और

२. अनुरणनोपम।

१. **अलक्ष्यक्रम**–इस भेद का प्रमुख घटक रसवद् अलंकार है। प्राचीन आचार्य रसवत् का अर्थ रसयुक्त करते हैं।[7] परन्तु आनन्दवर्धन तुल्यार्थक वति प्रत्यय से 'रसवत्' शब्द की निष्पत्ति कर नवीन स्थापना प्रस्तुत करते हैं–

'यद्यपि रस सदैव प्रधान रहता है, परन्तु जब कभी वह अप्रधान हो जाता है तब रस न कहलाकर रसवत् कहलाता हैं क्योंकि उस समय वह किसी दूसरे की शोभा बढ़ाता हुआ दिखलाई देता है। वहाँ वह रस के रूप में न रहकर स्थायी भाव या सञ्चारीभाव ही रहता है। अन्य सामान्य भावों से उत्कृष्ट होने के कारण इसे रसवत् कहा जाता है। जैसे–

"किं हास्येन न मे प्रयास्यसि पुनः प्राप्तश्चिराद् दर्शनं
केयं निष्करुण प्रवासरुचिता, केनासि दूरीकृतः।
स्वप्नान्तेष्विति ते वदन् प्रियतमव्यासक्तकण्ठग्रहो
बुद्ध्वा रोदिति रिक्तबाहुवलयस्तारं रिपुस्त्रीजनः॥

यहाँ किसी राजा की स्तुति की गयी है–अबहँसी से क्या लाभ ? बहुत दिनों बाद दर्शन हुए हैं, अब मैं जाने नहीं दूँगी। हे निष्ठुर ! बताओ, तुम्हारी प्रवास में रुचि क्यों हो गयी ? तुमको किसने मुझसे अलग कर दिया है ? स्वप्न में, पति के कण्ठ का आलिंगन कर इस प्रकार कहने वाली तुम्हारी शत्रुस्त्रियाँ उठकर (प्रियतम के कण्ठग्रहण के लिए) अपने फैलाये बाहुवलय को देखकर तारस्वर से रोती हैं।

यहाँ शुद्ध करुणरस राजविषयक प्रीति का अंग होने से रसवद् अलंकार है।

(२) **अनुरणनोपम**–अनुरणनोपमव्यङ्ग्य दो रूपों-वस्तु तथा अलंकार रूपों में गुणीभूत होता है, अतः इसके दो भेद होते हैं–

१. वस्तुरूप अनुरणनोपमगुणीभूतव्यङ्ग्य और

२. अलंकाररूप अनुरणनोपम गुणीभूतव्यङ्ग्य।

अलंकाररूपगुणीभूतव्यङ्ग्य को आचार्य आनन्दवर्धन ने तीन भागों में विभक्त किया है–

(अ) अलंकारसामान्य की व्यङ्ग्यता,

(आ) अलकारविशेष की व्यङ्ग्यता और

(इ) अलंकारों की परस्परगर्भता।

आचार्य आनन्दवर्धन सभी अलंकारों को गुणीभूतव्यङ्ग्य का स्थल बतलाते हैं।[8] जो व्यङ्ग्य काकु से आक्षिप्त होता है, वह भी गुणीभूत है।[9] आनन्दवर्धन का अभिमत है कि काव्य में गुणीभूतव्यङ्ग्य के अनेक स्थल मिलते हैं। अतः उन्हें सावधानी से समझते रहना चाहिए।[10]

वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट गुणीभूतव्यङ्ग्य के आठ भेद प्रस्तुत करते हैं–

१. अगूढ, २. अपरस्यांग, ३. वाच्यसिद्ध्यङ्ग, ४. अस्फुट, ५. सन्दिग्ध-प्राधान्य, ६. तुल्यप्राधान्य, ७. काक्वाक्षिप्त और ८. असुन्दर।[11]

(क) महावीरचरित में गुणीभूतव्यङ्ग्य

हा वत्साः खरदूषणत्रिशिरसो वध्याःस्थ पापस्य मे
हा हा वत्सविभीषण त्वमपि मे कार्येण हेयः स्थितः ।
हा मद्वत्सल वत्स रावण महत्पश्यामि ते संकटं
वत्से केकसि हा हतासि नचिरात्त्रीन्पुत्रकान् द्रक्ष्यसि ।।[12]

हा वत्स खर, दूषण और त्रिशिरा मैं पापी तुम्हारे मरण की ही बात सोचा करता हूँ, हा वत्स विभीषण कार्यवश तुम्हें भी छोड़ देना पड़ रहा है, हा मेरे वत्सल वत्स रावण तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा संकट देख रहा हूँ; हा बेटी केकसि तुम थोड़े ही दिनों में अपने तीन पुत्रों से हाथ धो बैठोगी ।

यहाँ शुद्ध करुणरस वत्सल रावणविषयक प्रीति का अङ्ग होने से रसवद् अलंकार है। यह अतिरस्कृतवाच्य अलक्ष्यक्रम गुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण है ।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै ।
सामर्थ्यानामिव समुदयः सञ्चयो वा गुणाना–
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ।।[13]

लोकों की रक्षा करने के लिए शरीरधारी के रूप में परिणत धनुर्वेद के समान, वेदरूपी कोश की रक्षा करने के लिए देहधारी क्षत्रिय धर्म के समान, पराक्रम के समुदाय के सदृश गुणों के सञ्चय के समान अथवा संसार के पुण्यों के फलों का समूह मानों शरीर को धारण कर प्रकट होकर स्थित है ।

यहाँ जगत्पुण्यनिर्माणराशि अद्भुत पराक्रमी राम को कहा जा रहा है । विशेषता यह है कि इस स्थल में प्रत्येक वाक्य राम को अभिव्यञ्जित तो कर रहा है परन्तु उनका वाचक एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। यहाँ प्रकरण के द्वारा बुद्धि में स्थित राम को इन शब्दों के द्वारा प्रतीत किया जा रहा है । इस प्रकार शब्दों के वाच्यार्थ का तिरस्कार होकर राम रूप प्रतीयमान अर्थ प्रस्तुत हो रहा है ।

योऽसौ वरद्वयन्यासस्तं माता मेऽद्य मध्यमा ।
यथेष्टं नाथते तात तत्प्रसादार्थिनो वयम् ।।[14]

राम कहते हैं कि हमारी मध्यमा माता ने जो दो वरदान न्यासरूप में आपके पास रक्खे थे, उसे वह अपनी इच्छानुसार माँग रही हैं, उनकी इच्छा पूरी की जाय, यही हमारी याचना है ।

यहाँ राम का त्याग अभिव्यञ्जित हो रहा है। पर यहाँ व्यङ्ग्यार्थ

वाच्यार्थ की अपेक्षा कोई विलक्षणता नहीं रख रहा है क्योंकि जो अर्थ व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत हो रहा है, वह तो वाच्य रूप में पहले से ही विदित रहता है। अतः व्यङ्ग्यार्थ चमत्कार की दृष्टि से वाच्यार्थ की अपेक्षा न्यून रहता है। अतः व्यङ्ग्य गुणीभूत हो जाता है। वस्तुरूप में होने से इसे वस्तुरूप अनुरणनोपमगुणीभूतव्यङ्ग्य कहा जायेगा।

मुखं यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने
किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरङ्गभङ्गी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसंयताः कुन्तलाः
किमम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरियं किं श्रिया ॥[15]

सीता को देखकर रावण कहता है—इनके मुख के रहने पर चन्द्रमा व्यर्थ है, इनके चञ्चलापाङ्ग नयनों के रहते नीलकमल की क्या आवश्यकता, इनकी भौहों की तुलना में कामबाण क्या चीज है, इनके केशपाश के समक्ष मेघमाला निष्प्रयोजन और इनकी देह के समक्ष लक्ष्मी क्या चीज है ?

यहाँ उपमानों की निष्फलता के कथन से प्रतीप अलंकार है। मुखादि अङ्गों में सौन्दर्यादि का अतिशय प्रकट हो रहा है, जिसका किसी भी वाक्य में प्रयोग नहीं हुआ है। अतः वह निश्चय ही प्रतीयमान है, व्यङ्ग्य है। परन्तु उसका चमत्कार खीर में इलायची के सदृश स्वादवर्धक है, स्वयं प्रधान नहीं है। इसलिए वह गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

स्त्रीरत्नं च जगत्पतिर्दशमुखो दृप्तः कथं मृष्यते ।[16]

दृप्त जगत्पति दशकण्ठ स्त्रीरूपी रत्न (सीता) की उपेक्षा किस प्रकार कर सकता है।

यहाँ 'स्त्री रत्न है' यह रूपकालंकार का स्थल है इसमें शब्दतः मुख के साथ अभेद बतलाया जा रहा है, परन्तु केवल अभेद प्रतीत नहीं हो रहा है, अपितु उसके साथ सादृश्य भी प्रतीत हो रहा है। यहाँ अभेदरूपक है और सादृश्य उपमा है। रूपक शब्दतः कथित है और उपमा व्यङ्ग्य है। परन्तु व्यङ्ग्य होकर भी उपमा जितना चमत्कार प्रस्तुत कर रहा है वह रूपक के चमत्कार से अधिक नहीं है, कम ही है। अतः यहाँ उपमालंकार गुणीभूत है। इस प्रकार यह उपमा की गुणीभूत व्यङ्ग्यता का स्थल है।

राजा दशरथ परशुराम से कहते हैं—कि निसर्गतः पवित्र आपके लिए अन्य शुद्धियों की क्या आवश्यकता ? तीर्थजल तथा अग्नि की शुद्धि किसी दूसरी वस्तु से नहीं होती ।[17]

यहाँ प्रतिवस्तूपमा के द्वारा परशुराम की पवित्रता प्रतिपादित की गई

है। परन्तु अप्रस्तुत तीर्थोदक एवं वह्नि प्रस्तुत परशुराम के ही उत्कर्ष को कह रहे हैं, अतः गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

कैलासोद्धारसारत्रिभुवनविजयौर्जित्यनिष्णातदोषः
पौलस्त्यस्यापि हेलोपहृतरणमदो दुर्दमः कार्तवीर्यः।
यस्य क्रोधात्कुठारप्रविघटितमहास्कन्धबन्धस्थवीयो–
दोः शाखादण्डषण्डस्तरुरिव विहितः कुल्यकन्दः पुराभूत्॥[18]

नेपथ्य से परशुराम कहते हैं–अरे विदेहनगरी के राजकुलचारियों! कन्यान्तःपुर में स्थित राम से कह दो--कैलासपर्वत को उठाने में समर्थ और त्रिलोक-विजय के अभ्युदय में निष्णात बाहुधारी रावण के भी रणमद को अत्यन्त सरलता के साथ दूर कर देने वाला दुर्धर्ष कार्तवीर्य जिसके क्रोध करने पर कुठार प्रहार से विशाल स्कन्ध, गल, बाहुदण्ड आदि के कट जाने पर कटे-छटे वृक्ष के सदृश कर दिया गया।

यहाँ उपमा एवम् उदात्त अलंकारों का संकर होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

राम दयिता सीता से कहते हैं कि हे प्रिये! भय, श्रम तथा लज्जा के संयोग से इस कम्प को मनोहर मधूक पुष्पतुल्य और लावण्ययुक्त ये तुम्हारे अङ्ग किस प्रकार सह सकेंगे?[19]

तात्पयं यह है कि सीता के कोमल अङ्ग उस उत्कम्प को किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सकते। अतएव यहाँ काक्वाक्षिप्त गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

इसी प्रकार विश्वामित्र के इस कथन में काक्वाक्षिप्त गुणीभूतव्यङ्ग्य है, जिसमें वे दशरथ से कहते हैं कि देवाधीश इन्द्र को परास्त करने वाले रावण को कार्तवीर्यार्जुन ने जीत लिया और उसका भी वध करने वाले महावीर परशुराम को जीतकर तुम्हारे पुत्र ने किसे नहीं जीत लिया?[20] तात्पर्य यह है कि तुम्हारे पुत्र ने सभी को जीत लिया।

रावण के लिए माल्यवन्त मन्त्री को परशुराम द्वारा भेजे गये पत्र में कहा गया है--हे राक्षसराज, ब्राह्मणों के अतिक्रम का त्याग आपके राक्षसों के ही कल्याण के लिए है, नहीं तो आपका ऐसा (जन्म से समस्त रहस्यों को जानने वाला) मित्र परशुराम क्षुब्ध हो जायेगा।[21]

यहाँ 'परशुराम समस्त क्षत्रियों के समान राक्षसों का भी क्षण भर में नाश कर देगा' इस व्यङ्ग्यार्थ तथा वाच्यार्थ की समानरूप से प्रधानता होने के कारण तुल्यप्राधान्य गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

राम कहते हैं कि गर्वी तपस्या और पराक्रम से युक्त परशुराम के आने से सत्संग का लोभ और वीररस का उन्माद एक ओर खींच रहे हैं और चन्दन सदृश शीतल तथा पुनः पुनः चैतन्य को लुप्त करने वाला यह सीता

का आलिंगन दूसरी ओर रोक रहा है।[22]

यहाँ एक ओर तो राम परशुराम से मिलने के लिए लालायित हैं और दूसरी ओर सीता का स्नेह उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। अतः संदिग्धप्राधान्य गुणीभूतव्यङ्ग्य की स्थिति है।

(ख) मालतीमाधव में गुणीभूतव्यङ्ग्य

माधव कहता है--निश्चयात्मक ज्ञान का अतिक्रमण करने वाला, समस्त वाक्यों का अगोचर, पुनर्जन्म में और इस जन्म में भी जो अनुभव मार्ग में नहीं प्राप्त हुआ है, विवेक के विनाश से बढ़े हुए महामोह से विषम कोई अनिर्वचनीय विकार अन्तःकरण को जड बना रहा है और ताप को भी उत्पन्न कर रहा है।[23]

यहाँ दो क्रियाओं का विकाररूप एक कर्तृकारक के होने से दीपक अलंकार है। यहाँ माधव की मालती के प्रति अत्यधिक अनुरक्ति की व्यञ्जना होती है, परन्तु इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने से गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

सम्मुखस्थित विषय में भी निश्चय की अभिव्यक्ति नहीं होती है। पुनः पुनः अनुभूत पदार्थ में भी अतथाभाव से विपर्यस्त स्मरण होता है। हिमवापी में अथवा चन्द्रमा में भी सन्ताप का नाश नहीं होता है। मन स्थितिशून्य होता हुआ भ्रमण करता है और किसी अनिर्वाच्य पदार्थ का आश्रय ले रहा है।[24]

यहाँ भी दीपक की स्थिति है। माधव के अतिशय अनुराग की व्यञ्जना हो रही है, परन्तु वाच्य की चारुता अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है।

माधव का कथन है-विकसित और सुन्दर सुवर्णकमल के सदृश आसक्ति से तिरछी चलने वाली दृष्टि से युक्त मुख को धारण करती हुई उस मालती को दक्षिण और वाम पार्श्व में आगे और पीछे भीतर और बाहर इस प्रकार सब ओर ही स्फुरित होता देख रहा हूँ।[25]

यहाँ उन्माद अवस्था की व्यञ्जना हो रही है परन्तु उस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक है।

परिमथन करने वाला अनिर्वाच्य यह शरीरदाह व्याप्त हो रहा है। चित्त की मूढ़ता इन्द्रियों की तत्तद्विषयग्राहक शक्ति को आच्छादित कर रही है। मदनाग्नि से क्वाथ किया गया हृदय उत्कण्ठा की अधिकता अथवा कामसमृद्धि को धारण करता हुआ भीतर जल रहा है और मालती तादात्म्य को भी धारण कर रहा हूँ।[26]

यहाँ ज्वलन और धारण रूप दो क्रियाओं के हृदयरूपी एक कर्तृकारक होने के कारण दीपक अलङ्कार है । माधव का हृदय अधिक उत्कण्ठित हो रहा है, इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने से गुणीभूतव्यंग्य की स्थिति है ।

कामन्दकी मालती को देखकर कहती है--आर्द्र कदली के भीतरी भाग की तरह मनोहर कृश अङ्ग वाली कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमूर्ति के सदृश नेत्रों को उत्सव करने वाली कल्याणी यह मालती हम लोगों के चित्त को आह्लादित करती है और कामाग्नि के उत्कट दाह से विह्वल अवस्था को प्राप्त होती हुयी मन को कम्पित भी करती है ।[27]

यहाँ मालती के प्रति कामन्दकी के अनन्य अनुराग की व्यञ्जना हो रही है, परन्तु इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है ।

कामन्दकी का कथन है--रूप और वय आदि वरगुणों की अपेक्षा न रखने वाला यह कर्म मन्त्री ने कैसे प्रारम्भ किया अथवा कुटिल नीति में कुशल चित्त वालों को सन्तानस्नेह कैसे होगा ?[28]

यहाँ कुटिल नीति में कुशल चित्त वालों को सन्तान स्नेह नहीं हो सकता, यह अर्थ काकु के द्वारा आक्षिप्त होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है ।

कामन्दकी का कथन है--मालती हमारे विरह में चित्तविकलता को प्राप्त हो रही है । सामीप्य में प्रसन्न होती है, एकान्त में क्रीडा करती है, प्रीति से बोलती है, अनुसरण करती है और गमन के समय गले लगकर मुझे पुनः पुनः रोककर प्रणाम करके भी शपथों के द्वारा शीघ्र लौटने की प्रार्थना भी करती है ।[29]

यहाँ दीपक अलङ्कार है । जिससे यह ध्वनित होता है कि मालती कामन्दकी से अत्यधिक स्नेह कर रही है । परन्तु इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है ।

माधव का कथन है--इस समय अतिशय सुन्दरी मालती म्लान चाम्पेय पुष्पमाला के विलास के सदृश आन्दोलित और आलस्यपूर्ण अङ्गों से कामाग्नि को दीप्त, चित्त को मत्त और नेत्रों को कृतार्थ कर रही है ।[30]

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य में चारुता के आधिक्य के कारण गुणीभूतव्यंग्य है ।

कामन्दकी मालती से कहती है--वह माधव चन्द्र में अथवा प्रीतिपात्र जन में आनन्दित नहीं होता है । इस कारण से अत्यन्त धैर्ययुक्त होकर भी वह दुःसह मनोवेदना को प्रकाशित करता है । फलिनीलता के सदृश देह-

कान्ति से युक्त होकर भी कुछ पीले और श्वेत सुन्दर अतिशय कृश शरीर को धारण करता है, तथापि रमणीय है।[31]

यहाँ विशेषोक्ति अलंकार के द्वारा यह ध्वनित हो रहा है कि माधव मालती के वियोग से अत्यधिक खिन्न है परन्तु इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

माधव मालती को लक्ष्य कर कह रहा है--हे सुन्दरि ! यह कबरी स्थित जलबिन्दु जब तक गिरते हैं, जब तक स्तनकुड्मलों का मध्यभाग आर्द्रभाव का परित्याग नहीं करता है, जब तक तुम्हारी शरीरयष्टि गाढ़ और सूक्ष्म रोमाञ्चों से युक्त है तब तक गाढ़ आलिङ्गन को एक बार भी दे दो, प्रसन्न हो जाओ।[32]

यहाँ मन्मथताप की शान्ति के लिए अपने शीतल अंगों से आलिङ्गन कीजिये, इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता का आधिक्य होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

माधव का कथन है--मृगलोचना मालती का निर्मल कपोल आँसू के जल से तत्क्षण प्रक्षालित हो रहा है। जिस कपोल में गण्डूष द्वारा कान्तिरूप अमृत को पान करने की इच्छा से जैसे चन्द्रमा अपने किरणरूप मृणालदण्ड को स्थापित कर सुशोभित हो रहा है।[33]

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

कपालकुण्डला मालती को लक्ष्य कर कह रही है--तपस्वी अघोरघण्ट का हत्यारा तुम्हारा प्रिय माधव कहाँ है ? कुमारीदूषक वह पति आकर तेरी रक्षा करे। हे मालति ! बाज के आक्रमण से भीतमुख वाली मादा बटेर की तरह तुझे मैंने ग्रसित कर लिया है। तू क्या नहीं देख रही है ?[34]

यहाँ कपालकुण्डला के कथन का तात्पर्य है कि तेरा प्रिय माधव अब तेरी रक्षा नहीं कर सकता है। तू देख ही रही है कि मैंने तुझे ग्रसित कर लिया है। यह अर्थ काकु के द्वारा प्रकाशित होने के कारण यहाँ गुणीभूतव्यंग्य है।

माधव का कथन है--नवीन लोध्रपुष्पों में मालती की कान्ति मृगों में निरीक्षण, हाथियों में गति और लताओं में नम्रता, इस प्रकार वन में मर्दन कर मेरी प्रियतमा मालती को स्पष्टरूप से विभक्त कर डाला है।[35]

यहाँ मालती अतिशय सौन्दर्यसम्पन्न अंगना है, इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का सौन्दर्य अधिक उत्कृष्ट होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

माधव कहता है--यहाँ रहने वाले आप लोगों ने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों में स्वभाव से सुन्दरी कुलवधू मालती को देखा है क्या ? अथवा उसका क्या

हुआ, यह जाना है ? हे मित्रों ! आप लोग उसकी वय की अवस्था सुनें।

जिस वय में कामदेव हृदय में प्रौढ़ क्रिया वाले होकर शरीर में अप्रौढ़ होकर विचरण करते हैं।[36]

यहाँ मालती की अवस्था कैशोर और यौवन के मध्य की है, इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुतत्व अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है।

(ग) उत्तररामचरित में गुणीभूतव्यंग्य

राम का कथन है–प्रजा के अनुरञ्जन के लिए स्नेह, दया और सुख अथवा सीता को छोड़ते हुए भी मुझे दुःख नहीं है।[37]

यहाँ राम की प्रजानुरञ्जकता ध्वनित हो रही है परन्तु व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है।

राम सीता को लक्ष्य कर कहते हैं--सूक्ष्म और विरल कपोलप्रान्तों तक फैले हुए सुन्दर केशों से और पुष्पसदृश दाँतों से सुन्दर दर्शन वाले मुख को धारण करती हुयी अल्पवय वाली अत्यन्त सुन्दर चन्द्रिका के सदृश और स्वाभाविक विलासों से युक्त यह सीता मधुर अङ्गों के द्वारा मुझे तथा माताओं को कौतूहल में डाल देती थी।[38]

यहाँ उपमा, अतिशयोक्ति और समुच्चय अलंकारों के द्वारा सीता के लावण्य की व्यञ्जना हुयी है परन्तु व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

राम सीता से कहते हैं--अयि ! वह कैसे भुलाया जा सकता है ? जहाँ तुम मार्ग में चलने के परिश्रम से आलस्ययुक्त कोमल और सुन्दर दृढ आलिंगनों से दाबे गये मर्दित कमलनाल के सदृश दुर्बल अङ्गों को मेरे वक्षःस्थल पर रखकर सो गयी थी।[39]

यहाँ शृंगाररस को स्मृतिभावध्वनि के प्रति गुणीभूत करके प्रस्तुत किया गया है।

राम सीता से कहते हैं–हे सुन्दरि सीते ! उस पर्वत पर लक्ष्मण के द्वारा की गयी सेवा से प्रसन्न हम दोनों के उन दिनों का स्मरण करती हो ? अथवा वहाँ सुस्वादु जल वाली गोदावरी का स्मरण कर रही हो ? और गौदावरी के तटों पर हम दोनों के रहने का स्मरण कर रही हो ? और भी अनुराग के सम्बन्ध से कपोलों को मिलाकर कुछ-कुछ धीरे-धीरे बिना क्रम के बातचीत करते हुए और एक-एक बाहु को गाढ़ आलिङ्गन में लगाते हुए हम दोनों की बिना जाने ही व्यतीत हुए प्रहरों वाली रात्रि ही बीत जाया करती थी।[40]

यहाँ सम्भोग शृंगार स्मृतिभावध्वनि के प्रति गौण होकर गुणीभूतव्यंग्य को प्रस्तुत कर रहा है।

राम सीता से कहते हैं--हे कमललोचने सीते ! तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाये हुए जीवनकुसुम को विकसित कर देने वाले, पूर्णरूप से तृप्त कर देने वाले, समस्त इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले, कानों के लिए अमृत-स्वरूप तथा हृदय के लिए पौष्टिक रसायन के समान हैं।[41]

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने के कारण गुणीभूत-व्यंग्य है।

वनदेवता वासन्ती आत्रेयी से कहती है--यह वन आपकी इच्छा के अनुसार उपभोग के योग्य है। यह मेरा शुभ दिवस है क्योंकि सज्जनों का सज्जनों के साथ सम्पर्क अत्यन्त कठिनाई और पुण्य से होता है। वृक्षों की छाया और जल जो कुछ भी तपस्या के योग्य भक्ष्य पदार्थ फल अथवा मूल हैं वे भी यहाँ आपके लिए पराधीन नहीं हैं।[42]

यहाँ वनदेवता का यह कथन यह ध्वनित कर रहा है कि यह वन आपके स्वागत के लिए समुद्यत है परन्तु इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य में चारुता अधिक है, अतः गुणीभूतव्यंग्य है।

कष्ट का अनुभव करते हुए राम कहते हैं--हृदय शोक के उद्वेग से विदीर्ण हो रहा है परन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता। शोक से अभिभूत शरीर मोह धारण कर रहा है परन्तु चैतन्य को नहीं छोड़ता। अन्तःकरण का सन्ताप शरीर को जला रहा है परन्तु भस्मसात् नहीं करता। मर्मच्छेदन करने वाला विधाता प्रहार तो कर रहा है परन्तु जीवन को नष्ट नहीं कर देता।[43]

यहाँ विशेषोक्ति अलंकार के द्वारा राम की शोकमयी अवस्था की व्यंजना हो रही है परन्तु व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य के चारुत्व के अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है।

तमसा सीता से कहती है--ये वचन अत्यन्त ही प्रिय, स्नेह से शीतल और शोक से कठोर नहीं हैं। ये वे विषयुक्त मधु की धारायें तुम्हारे ऊपर बह रही हैं।[44]

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक होने के कारण गुणीभूत-व्यंग्य है।

वासन्ती राम से कहती हैं–इसी लताकुञ्ज में आप सीता के मार्ग पर दृष्टि लगाये हुए थे। सीता हंसों से कौतुक कर गोदावरी के तट पर बहुत समय तक रुकी रही। आती हुयी सीता ने आपको खिन्न हृदय सा देखकर

कातरता से कमल के मुकुल की तरह सुन्दर प्रणामाञ्जलि को बाँध लिया।[45]

यहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार की दृष्टि से गुणीभूतव्यंग्य की स्थिति है।

वटु लव से कह रहे हैं–(वह अश्व) पीछे लम्बी पूँछ धारण करता है और उसे बराबर हिलाता रहता है। वह लम्बी गर्दन वाला है। उसके चार ही खुर हैं। नरम-नरम घास चरता है। आम के फलों के बराबर लीद के टुकड़ों को छोड़ता है। अधिक कहने से क्या ? वह फिर दूर जा रहा है। आओ, आओ, हम लोग जा रहे हैं।[46]

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

लव चन्द्रकेतु से कहते हैं–यद्यपि दैत्यों के शत्रु रामचन्द्र में हम लोग भी प्रीति करने वाले हैं। भला कौन पुरुष गुणों के कारण उन राजा को अधिक आदर नहीं करता ?[47]

यहाँ काकु के द्वारा यह अर्थ आक्षिप्त होता है कि अन्य लोगों के समान हम लोगों को राजा राम के प्रति असीम श्रद्धा है। इस प्रकार यहाँ गुणीभूत-व्यंग्य है।

लव कहता है--सत्य और प्रिय वाणी अभिलाष को पूर्ण करती है, दरिद्रता को दूर करती है, कीर्ति को उत्पन्न करती है, शत्रुओं को नष्ट करती है इसलिए विद्वान् लोग सत्य और प्रिय वाणी को शुद्ध, शान्त और कल्याणों की उत्पत्ति करने वाली कामधेनु कहते हैं।[48]

यहाँ सूनृत वाणी की प्रशस्ति अभिव्यञ्जित हो रही है परन्तु व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है।

लव का कथन है--ब्राह्मणों की वाणी में पराक्रम रहता है। भुजाओं का बल तो क्षत्रियों का है। परशुराम शस्त्रग्रहण करने वाले ब्राह्मण हैं तो उनके पराजित होने पर उन राजा रामचन्द्र की क्या बड़ाई ?[49]

यहाँ काकु के द्वारा यह ध्वनित होता है कि यदि शस्त्रग्राही ब्राह्मण परशुराम पर राम ने विजय प्राप्त कर ली तो यह कोई बडाई की बात नहीं है। यहाँ गुणीभूतव्यंग्य की स्थिति है।

हाँ, हैं, वे वृद्ध रामचन्द्र आलोचनीय चरित्र वाले नहीं हैं। सुन्द की स्त्री ताड़का का वध करने पर भी अकुण्ठित यश वाले वे लोक में श्रेष्ठ ही हैं। खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे अथवा वाली के वध में जो नैपुण्य दिखलाया था उसमें भी लोग जानकार हैं।[50]

यहाँ परिकर एवं पर्यायोक्ति अलङ्कारों की स्थिति है। व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य है।

नेपथ्य में कुश कह रहा है--मित्र ! चिरंजीव लव का क्या राजा की

सेना के साथ युद्ध हो रहा है ? क्या कह रहे हो ? हो रहा है आज लोकों में राजा शब्द विनाश को प्राप्त हो और आज क्षत्रिय की शस्त्ररूपी अग्नि शान्त हो ।[51]

यहाँ कुश का क्रोध अभिव्यञ्जित हो रहा है परन्तु व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य अधिक होने से गुणीभूतव्यंग्य है ।

राम का कथन है--सम्बन्ध की स्पृहणीयता से अत्यन्त प्रसन्न ज्येष्ठ वसिष्ठ आदि ऋषियों से अनुष्ठित सन्तानों के विवाहों की मङ्गलविधि में उनके पिता (जनक और दशरथ) के मिलन को देखकर और इस समय महाहिंसा के होने पर इस प्रकार के पिता के मित्र राजा जनक को देखकर इस प्रकार का (हत्यारा) मैं हजारों टुकड़ों में क्यों नहीं विदीर्ण हो रहा हूँ ? अथवा राम से क्या दुष्कर है ।[52]

यहाँ काकु के द्वारा यह ध्वनित हो रहा है कि राम के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है । इस प्रकार गुणीभूतव्यंग्य की स्थिति है ।

सन्दर्भ

१. प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यंग्यः काव्यस्य दृश्यते ।
यत्र व्यंग्यान्वये वाच्यचारुत्वं स्यात् प्रकर्षवत् ।। ध्वन्यालोक ३।३४

२. अयं ध्वनिनिष्यन्दरूपो महाकविविषयोऽतिरमणीयो लक्षणीयः सहृदयैः ।
ध्वन्यालोक पृ. ४७४

३. व्यज्यन्ते वस्तुमात्रेण यदालङ्कृतयस्तदा ।
ध्रुवं ध्वन्यङ्गता तासां काव्यवृत्तेस्तदाश्रयात् ।। ध्वन्यालोक २।२९

४. ध्वन्यालोक--ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी संस्करण १९६२ पृ. २८७

५. ध्वन्यालोक--लोचन पृ. ४६१

६. प्रकारोऽयं गुणीभूतव्यंग्योऽपि ध्वनिरूपताम् ।
धत्ते रसादितात्पर्यपर्यालोचनया पुनः ।। ध्वन्यालोक ३।४१

७. दण्डी--काव्यादर्श, भामह--काव्यालङ्कार ।

८. (क) गुणीभूतव्यंग्यत्वं च सर्वेषामेवालङ्काराणां सामान्यम् ।
ध्वन्यालोक पृ. ४७२

(ख) मुख्या महाकविगिरामलङ्कृतिभृतामपि ।
प्रतीयमानच्छायैषा भूषा लज्जेव योषिताम् ।।
ध्वन्यालोक ३।३७

९. अर्थान्तरगतिः काक्वा या चैषा परिदृश्यते ।
सा व्यंग्यस्य गुणीभावे प्रकारमिममाश्रिता ।। ध्वन्यालोक ३।३८

१०. प्रसन्नगम्भीरपदाः काव्यबन्धाः सुखावहाः ।
ये च तेषु प्रकारोऽयमेव योज्यः सुमेधसा ॥ ध्वन्यालोक ३।३५

११. काव्यप्रकाश ५।४५--४६

१२. महावीरचरित ४।११

१३. महावीरचरित

१४. वही ४।४७

१५. वही ६।८

१६. वही २।६

१७. वही ४।२७

१८. वही २।१६

१९. वही २।२१

२०. वही ४।१९

२१. वही २।१०

२२. वही २।२२

२३. मालतीमाधव १।३१

२४. मालतीमाधव १।३२

२५. वही १।४१

२६. वही १।४२

२७. वही २।३

२८. वही २।७

२९. वही ३।२

३०. वही ३।६

३१. वही ३।९

३२. वही ८।२

३३. वही ८।५

३४. वही ८।८

३५. वही ९।२७

३६. वही ९।२९

३७. उत्तररामचरित १।१२

३८. उत्तररामचरित १।२०

३९. वही १।२४

४०. वही १।२६--२७

४१. वही १।३६

४२. वही २।१

४३. वही ३।३१

४४. वही ३।३४

४५. वही ३।३७

४६. वही ४।२६

४७. वही ५।२८

४८. वही ५।३०

४९. वही ५।३२

५०. वही ५।३४

५१. वही ६।१६

५२. वही ६।४०

सप्तम अध्याय

महाकवि भवभूति के नाटकों में अन्य व्यञ्जक वैशिष्ट्य

(क) नाट्यतत्त्व की व्यञ्जकता

महाकवि भवभूति ने अपने रूपकों में रससिद्धि के लिए यथावसर नाट्यतत्त्वों का विन्यास किया है। कवि की नाट्यतत्त्व व्यञ्जना सर्वथा श्लाघ्य है। यहाँ संक्षेप में तीनों ही नाट्यकृतियों के नाट्यतत्त्वों की व्यञ्जकता प्रस्तुत की जा रही है।

महावीरचरित

आधिकारिक एवं प्रासंगिक इतिवृत्त

महावीरचरित नाटक का कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया गया है। इसके नायक रामचन्द्र हैं, अतः उनसे सम्बन्धित इतिवृत्त आधिकारिक है। इस आधिकारिक इतिवृत्त में राम से सम्बन्धित प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं–महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में राम लक्ष्मण का आगमन, सीतासंदर्शन, ताटकावध, जृम्भकास्त्र की प्राप्ति, शिवधनुर्भङ्ग, सुबाहु और मारीच नामक राक्षसों के वध के लिए प्रस्थान, राम परशुराम संवाद, परशुराम द्वारा राम को धनुर्दान, राम, सीता और लक्ष्मण का वनगमन, खरदूषणादि राक्षसों का वध, सीताहरण, सीतावियोग में रामविलाप, वालीवध, रामरावणयुद्ध, रामविजय, अयोध्याप्रत्यावर्तन और राम का राज्याभिषेक। इन घटनाओं के द्वारा कवि ने राम के लोकोत्तर चरित्र की व्यञ्जना की है।

आधिकारिक कथावस्तु के अतिरिक्त कवि ने प्रासंगिक कथावस्तु का भी विधिवत् संयोजन किया है। प्रासंगिक कथावस्तु आधिकारिक कथावस्तु की उपकारक है। महावीरचरित में आधिकारिक कथावस्तु की उपकारक ये प्रासंगिक कथावस्तु हैं–राक्षसदूत का विश्वामित्र के आश्रम में आगमन, माल्यवान् और शूर्पणखा के द्वारा राम के पराभव की योजना का प्रस्तुतीकरण, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द, जनक और दशरथ के द्वारा परशुराम को

शान्त करने का प्रयास, युधाजित् तथा भरत का आगमन, मन्थरावेश में शूर्पणखा का मिथिलाप्रवेश, सुग्रीव, हनूमान् आदि के साथ विभीषण की मित्रता, हनूमान् के द्वारा लङ्कादहन, विभीषण का लङ्काधिपत्य आदि।

नान्दी

महावीरचरित में कवि ने अष्टपदा नान्दी का प्रयोग किया है। कवि ने छोटे से अनुष्टुप् छन्द के द्वारा चैतन्यज्योतिःस्वरूप परमात्मा के प्रति भक्ति-भाव प्रकट किया है। कवि ने जहाँ इस नान्दी श्लोक के द्वारा भक्तिभाव की व्यञ्जना की है वहीं इस नान्दी के द्वारा नाटकीय कथावस्तु की ओर भी संकेत कर दिया है। श्लोक में प्रयुक्त 'देवाय' पद से यह ध्वनित होता है कि इसमें रामदेव का चरित्र उपनिबद्ध किया जायेगा। 'हतपाप्मने' के द्वारा यह ध्वनित होता है कि इस नाटक में वाली एवं रावणादि राक्षसों का वध होगा। 'चैतन्यज्योतिषे' से नायक का प्रख्यातत्व तथा तेजोमयस्वरूप प्रकाशित होता है। 'त्यक्तक्रमविभागाय' के द्वारा जामदग्न्य आदि की अनुवर्तनीयता ध्वनित होती है। नाटक के आदि में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग आदिकाव्य रामायण के प्रति कवि की सहज श्रद्धा को अभिव्यक्त कर रहा है।

प्ररोचना

कवि ने सामाजिकों को नाटक की ओर आकृष्ट करने के लिए मनोरम प्ररोचना की व्यञ्जना की है। 'कालप्रियनाथस्य' के द्वारा देश और 'यात्रा-याम्' के द्वारा समय का निर्देश किया गया है और 'कालप्रियनाथस्य यात्रा-याम्' के द्वारा कवि की भगवान् शिव के प्रति भक्तिभावना सूचित हो रही है। 'महापुरुषसंरम्भः' आदि कथन के द्वारा प्रयोज्य इतिवृत्त सूचित कर दिया गया है। कवि नाटक रामकथा आदि की प्रशंसा के द्वारा सहृदय प्रेक्षकों को आकृष्ट कर रहा है। नाटक की यह प्ररोचना सामाजिकों की प्रवृत्ति को उन्मुख करने ने लिए पूर्णतया सक्षम है।

प्रस्तावना

महावीरचरित नाटक में नट के द्वारा प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। नट और सूत्रधार का वार्तालाप होता है। सूत्रधार पूर्वकथा की ओर संकेत करता है। अपने कथन के अन्त में वह सीता और उर्मिला के साथ राजा कुशध्वज के आगमन की भी सूचना दे देता है। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार यहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना की व्यञ्जना हो रही।

अर्थोपक्षेपक

प्रथम अङ्क में नेपथ्य से महर्षि गौतम की पत्नी रामचन्द्र की जय बोलती

है। अहल्या रामचन्द्र के प्रताप से शापमुक्त हुई है, अतः कवि ने यहाँ चूलिका का प्रयोग किया है। यह चूलिका भी राम के दिव्य अनुभाव को अभिव्यञ्जित कर रही है। यज्ञ में उपनिमन्त्रित ऋषिगणों के सपरिवार आगमन से होने वाले कलकल को भी चूलिका के द्वारा सूचित किया गया है। इसी प्रकार जृम्भकास्त्रों की प्राप्ति की सूचना भी नेपथ्य के द्वारा दी जाती है। सुन्दोप-सुन्द के पुत्र सुबाहु और मारीच के कलकल को भी नेपथ्य से ही सूचित किया गया है। अंक के अन्त में राक्षसदूत का यह कथन "अब मैं इस समाचार को माल्यवान् से निवेदन करूँ" अंकास्य के द्वारा द्वितीय अंक में प्रवेश करने वाले माल्यवान् की सूचना दे रहा है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में कवि विष्कम्भक की योजना करता है। इस विष्कम्भक के द्वारा प्रथम अंक में हुई घटनाओं ताटका, सुबाहु आदि का वध, जृम्भकास्त्र की प्राप्ति और सीताविवाह आदि की सूचना देता है और भविष्य में होने वाले राम-परशुराम विवाद को भी इङ्गित कर देता है। इस विष्कम्भक में माल्यवान् शूर्पणखा से परशुराम को राम के विरुद्ध उद्युक्त करने की योजना बनाता है। मध्यम और अधम श्रेणी के पात्रों के प्रयोग से यहाँ मिश्र विष्कम्भक की योजना हुई है। इस विष्कम्भक के पश्चात् ही कवि चूलिका के द्वारा परशुराम के रौद्र रूप को प्रस्तुत करता है। यहाँ कवि चूलिका के द्वारा परशुराम के रंगमंच पर आने के पूर्व ही उनके उग्र स्वभाव और शौर्य का संकेत कर देता है जिससे कि भविष्य में होने वाली घटना का संकेत मिलने लगता है। क्रुद्ध परशुराम के कन्यान्तःपुर में प्रविष्ट होने की सूचना भी चूलिका के द्वारा दी गई है। कवि जनक और शतानन्द के आगमन की सूचना नेपथ्य के द्वारा देता है। तृतीय अंक में कवि ने अंकावतार का प्रयोग किया है। इसमें पूर्व अंक के ही परशुराम, वसिष्ठ, विश्वामित्र और शतानन्द प्रवेश करते हैं। क्रुद्ध शतानन्द को शान्त करने के लिए नेपथ्य से ही प्रयास किया गया है। नेपथ्य से ही भार्गव, भार्गव तुम अब अधिक बढ़े जा रहे हो, इस प्रकार राजा जनक जामदग्न्य से कह रहे हैं। क्रुद्ध होकर राजा जनक जिस समय धनुष चढ़ाते हैं उस समय उन्हें ऐसा न करने के लिए नेपथ्य से ही रोका जाता है। आगे चलकर नाटक के नायक राम चूलिका के द्वारा ही सभी को प्रणाम करते हैं। इससे यह ध्वनित होता है कि राम परशुराम से भयभीत न होकर उनके समक्ष आ रहे हैं। चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में ही कवि चूलिका के द्वारा सूचित करता है कि मंगलकार्य प्रारम्भ किये जायें। इस चूलिका के द्वारा यह ध्वनित होता है कि राम ने परशुराम पर विजय प्राप्त कर ली है। इसके पश्चात् विष्कम्भक की योजना हुई है जिसमें माल्यवान् शूर्पणखा को यह परामर्श देता है कि वह मन्थरा के

शरीर में प्रविष्ट होकर कैकेयी के दो वरों को माँगे—जिनमें एक के द्वारा भरत का राज्याभिषेक और दूसरे के द्वारा राम का चौदहवर्षपर्यन्त वनवास। इसी विष्कम्भक में वह यह योजना भी बनाता है कि यदि इसमें उसे सफलता न मिली तो वह वाली के द्वारा राम का वध करवायेगा। इस प्रकार इस विष्कम्भक के द्वारा कवि अनेक महत्त्वपूर्ण भावी घटनाओं का संकेत करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भविष्य में राम का वनवास होगा, विभीषण और सुग्रीव की मित्रता तथा राम और वाली का युद्ध। इस विष्कम्भक में कवि ने माल्यवान् की कूटनीति को विधिवत् प्रस्तुत किया है। यहाँ भी मध्यम और अधम पात्रों के प्रयोग के कारण मिश्र विष्कम्भक है। राम की पत्नी सीता नेपथ्य से गुरुजनों को प्रणाम करती है। नेपथ्य के द्वारा ही मिथिला में मन्थरा के आगमन की सूचना दी गई है। इस प्रकार कवि ने तीन स्थानों पर चूलिका का प्रयोग किया है। पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है। इसमें सम्पाति और जटायु दोनों ही मध्यम श्रेणी के पात्र हैं जो कि संस्कृतभाषा में वार्तालाप करते हैं। अतः यह शुद्ध-विष्कम्भक है। सम्पाति और जटायु के वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि राम ने विराध का वध कर दिया है और वे चित्रकूट से शरभङ्ग के आश्रम में जाकर, वहाँ से भी आगे चलकर सुतीक्ष्ण आदि ऋषियों से भेंटकर इस समय अगस्त्य के कहने से पंचवटी में निवास कर रहे हैं। इन दोनों के संवाद से यह भी ज्ञात होता है कि लक्ष्मण ने दुष्ट प्रकृति वाली शूर्पणखा के नाक-कान और ओष्ठ काट लिए हैं जिससे क्रुद्ध होकर उसने खरदूषण और त्रिशरा के साथ चौदह हजार चौदह राक्षसों के द्वारा राम पर आक्रमण करवा दिया है और राम ने उन सबका वध भी कर दिया है। अतः क्रुद्ध होकर दैत्यराज रावण ने विचित्र हरिण के द्वारा राम लक्ष्मण को दूर पहुँचाकर सीता का अपहरण कर लिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस विष्कम्भक में कवि ने सर्वाधिक घटनाओं की सूचना दी है, अतः यह विष्कम्भक विशेष महत्त्व रखता हैं। कवि नेपथ्य के द्वारा शबर तपस्वी के आगमन और कबन्ध नामक राक्षस के द्वारा उस पर किये गये अत्याचार की सूचना देता है। माल्यवान् को लौटाने और राम के वध की प्रतिज्ञा वाली चूलिका के द्वारा करता है। नेपथ्य में वाली के भयंकर गर्जन की सूचना दी जाती है। राम के द्वारा वाली का वध कर दिये जाने पर वह चूलिका के द्वारा कहता है कि तुम सबको मेरी शपथ है। विभीषण और सुग्रीव शान्त हो जायें, वानरों! यदि तुम मुझे अपना स्वामी मानते हो तो धैर्य रक्खो, मैंने राम के हाथ से बहुमूल्य मृत्यु पायी है। अब मेरी आप लोगों से यही आशा है कि आप लोग हमारे

स्थान पर सुग्रीव को और सुग्रीव के स्थान पर अंगद को प्रतिष्ठित करें। नेपथ्य में कहा गया यह वाली वचन अनेक विषयों को सूचित कर रहा है। षष्ठ अंक के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना हुयी है। माल्यवान् और त्रिजटा के वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि वानरराज सुग्रीव ने सीता अन्वेषण के लिए अनेक वानरों को चारो ओर भेज दिया है। महावीर हनूमान् ने लङ्का में प्रवेश कर सुवर्णनिर्मित लङ्का को भस्मसात् कर दिया और सीता से भेंट की और सीता से केशाभरण को अभिज्ञान के रूप में प्राप्त कर लिया। त्रिजटा और माल्यवान् को अनिष्ट होने की आशंका है। इस आशंका के समय ही माल्यान् का बाँयां नेत्र फड़कता है। यहीं त्रिजटा माल्यवान् को यह बतलाती है कि इस भयदायक समय में भी रावण सर्वतो-भद्र नामक प्रासाद पर चढ़कर देवी सीता के द्वारा अलंकृत अशोकवाटिका की ओर ही देख रहा है और मन्दोदरी उसको समझाने के लिए वहीं गई हुई है। माल्यवान् मन्दोदरी की प्रशंसा करता है। इस विष्कम्भक के द्वारा अतीत की घटनाओं के साथ ही साथ भावी इतिवृत्त की भी सूचना मिलती है जिसमें मन्दोदरी रावण को समझाने के लिए पहुँचती है। यहाँ मध्यम और अधम श्रेणी के पात्रों का प्रयोग होने से मिश्र विष्कम्भक है। कवि ने लङ्का-दहन की सूचना चूलिका के द्वारा दी है। वानर सेना के द्वारा लङ्का पर आक्रमण किये जाने पर लङ्का के द्वाररक्षक राक्षसों को चूलिका के द्वारा सावधान किया गया है। वानरसेना के द्वारा राक्षसों के मारे जाने की सूचना भी चूलिका के द्वारा दी गई है। इस अंक में राम रावण एवं उनकी सेनाओं के युद्ध को कवि ने वासव और चित्ररथ के वार्तालाप के द्वारा सूचित किया है। यद्यपि वासव और चित्ररथ रंगमंच पर आते हैं परन्तु कवि उनके द्वारा युद्ध का वर्णन ही करवाता है। राम रावण के सम्पूर्ण संग्राम को इनके वार्तालाप के द्वारा ही दिखलाया गया है यतोहि रंगमंच पर युद्ध आदि को दिखलाया नहीं जा सकता, अतः कवि वासव और चित्ररथ के वार्तालाप के माध्यम से ही उसे प्रस्तुत करता है। कवि का यह युद्धप्रसंग भी एक प्रकार से विष्कम्भक जैसा ही है। अंक के अन्त में दिव्यर्षिगण चूलिका के द्वारा राम से रावण के वध के लिए अनुरोध करते हैं। सप्तम अंक के प्रारम्भ में कवि विष्कम्भक का प्रयोग करता है। इस विष्कम्भक में लङ्का और अलका का वार्तालाप हुआ है। प्रारम्भ में लङ्का के विलाप से यह ज्ञात हो जाता है कि रावणादि राक्षसों का वध किया जा चुका है। अलका लङ्का को आश्वस्त करती है। सीता अपनी पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए अग्नि में प्रवेश करती हैं। सभी देवता उनका अभिनन्दन करते हैं। राम के आदेशानुसार

विभीषण का राज्याभिषेक होता है। सीता के अग्नि प्रवेश की सूचना कवि चूलिका के द्वारा देता है। जिस समय राम पुष्पकविमान के द्वारा यात्रा प्रारम्भ करते हैं उस समय किन्नरयुगल के द्वारा उनकी स्तुति चूलिका के द्वारा ही की गई है। महर्षि विश्वामित्र का आदेश चूलिका द्वारा सुनाया गया है और विश्वामित्र के आगमन से पूर्व भी चूलिका का प्रयोग किया गया है। चूलिका के द्वारा यह सूचना दी जाती है कि घर-घर में सभी लोग उत्सव मनावें। अधिकारी लोग अपने कार्यों में सावधान रहें और ब्राह्मण लोग राम के राज्याभिषेक की तैयारी करें। रामचन्द्र के अभिषेक के समय मुनिजन यथोचित कार्य करते हैं। उस समय चूलिका के द्वारा ही दुन्दुभि-ध्वनि सुनाई जाती है।

पञ्चसन्धियाँ

१. मुखसन्धि

महावीरचरित नाटक के प्रथम अंक में मुखसन्धि का प्रयोग हुआ है। इस मुखसन्धि की प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं—विश्वामित्र के आश्रम में राम लक्ष्मण का आगमन, सीता और उर्मिला के साथ कुशध्वज का आगमन, रावणदूत सर्वमाय का आना, राम के द्वारा अहल्या का उद्धार, ताटकावध, जृम्भकास्त्रप्राप्ति, राम के द्वारा शिवधनुर्भङ्ग, सुबाहु और मारीच के वध के लिए राम और लक्ष्मण का प्रस्थान। नाटक की प्रस्तावना के अन्त में सूत्रधार नाटक के बीज को उपन्यस्त कर देता है। सूत्रधार यह स्पष्ट कर देता है कि महर्षि विश्वामित्र का राम लक्ष्मण को आश्रम में लाने का क्या उद्देश्य था ?[1] राम स्वभावतः विजयी हैं, कवि के इस कथन से उनका अपराजेय व्यक्तित्व ध्वनित होता है। अस्त्रों की प्राप्ति से उनका पराक्रम और बढ़ेगा, इस कथन के द्वारा भविष्य में उन्हें दिव्य जृम्भकास्त्र एवं परशुराम के धनुष की प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है। विश्व की उप-कारिणी सीता की प्राप्ति होगी, इस कथन से यह ध्वनित होता है कि लोकोपकार के लिए राम पापी राक्षसों का वध करेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने बीज में ही नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु की ओर संकेत कर दिया है। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में अनिन्द्य सुन्दरी जनकसुता सीता को देखकर राम का उनके प्रति औत्सुक्य ही आरम्भ नामक कार्यावस्था है। इस प्रकार बीज और आरम्भ के योग से मुखसन्धि की निर्मिति होती है। मुखसन्धि के निर्वाह के लिए कवि उसके अंगों की योजना इस प्रकार कर रहा है—सूत्रधार के इस कथन में कि स्वभावतः विजयी राम के पराक्रम को

अस्त्रों के द्वारा बढ़ाने और संसार के कल्याण के लिए रावणवंश विनाश के लिए उपयुक्त पात्र राम को धनुष और लक्ष्मण के सहित महर्षि विश्वामित्र अपने आश्रम में ले आये हैं ।[2] यहाँ सूत्रधार के द्वारा बीजविन्यास के कारण उपक्षेप है । आगे जहाँ सूत्रधार के कथन में बीजविन्यास की बहुलता पाई जाती है वहाँ परिकर की व्यञ्जना हो रही है । राजा कुशध्वज के 'प्रकृष्ट-कल्याणोदर्क[3] ······' इत्यादि कथन के द्वारा परिकर की निष्पत्ति की संभावना होने से परिन्यास है । सूत के द्वारा महर्षि विश्वामित्र[4] और राजा कुशध्वज के द्वारा राम लक्ष्मण का[5] गुण कथन किये जाने से विलोभन की व्यंजना हो रही है । विश्वामित्र के स्वगत[6] कथन से युक्ति की अभिव्यक्ति हो रही है । सीता तथा उर्मिला के प्रति राम और लक्ष्मण और राम तथा लक्ष्मण के प्रति सीता और उर्मिला के स्वगत कथनों में प्राप्ति की व्यञ्जना है । राक्षसी ताटका के आगमन से लेकर उसके वध तक लोगों के द्वारा सुख और दु:ख का अनुभव होने से विधान की अभिव्यक्ति हुई है । ताटकावध के पश्चात् 'एष तावद् ओंकार[7] ······' विश्वामित्र के इस कथन से समाधान की व्यंजना हो रही है । विश्वामित्र के 'अस्यायमवसरो[8] ······' इत्यादि कथन से प्रकृत का आरम्भ होने से यहाँ करण नामक सन्ध्यङ्ग की व्यञ्जना हो रही है । जृम्भकास्त्र दान के समय अद्भुत आवेश की स्थिति होने से परिभावना की व्यञ्जना हो रही है । जिस स्थल पर राजा कुशध्वज राम को जमाता बनाने की इच्छा प्रकट कर गूढ़ भेद का प्रकाशन कर देते हैं वहाँ उद्भेद की स्थिति है । सुबाहु तथा मारीच के वध के लिए राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र और राजा कुशध्वज के द्वारा प्रोत्साहित करने में भेद नामक सन्ध्यङ्ग की व्यञ्जना हो रही है ।

प्रतिमुखसन्धि

नाटक के द्वितीय अंक से लेकर तृतीय अंकपर्यन्त प्रतिमुख सन्धि की स्थिति है । प्रतिमुखसन्धि के अन्तर्गत आने वाली प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं—माल्यवान् के द्वारा परशुराम को धनुर्भङ्ग की सूचना देकर राम के विरुद्ध उकसाना, क्रुद्ध परशुराम का मिथिला में आना और राम के साथ क्रोधयुक्त वार्तालाप, जनक शतानन्द आदि के द्वारा क्रुद्ध परशुराम को शान्त करने का प्रयास, राम का कंकणमोचन के लिए अन्तःपुर में आह्वान और वसिष्ठ विश्वामित्र आदि के द्वारा परशुराम को शान्त करने का प्रयत्न ।

नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में जहाँ माल्यवान् और शूर्पणखा मन्त्रणा करते हैं वहाँ मूलकथा में विच्छेद हो जाता है परन्तु नेपथ्य के द्वारा कही गई यह उक्ति 'राम का अन्वेषण करते हुए परशुराम कन्यान्तःपुर में ही प्रवेश

कर रहे हैं' प्रमुख इतिवृत्त को पुनः प्रस्तुत कर देती है, अतः यहाँ बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति रहती है।

द्वितीय एवं तृतीय अंकों में राम के विवाह के मध्य में ही जामदग्न्यरूप विघ्न उपस्थित हो जाता है। राम, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द, जनक और दशरथ क्रुद्ध जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार यहाँ यत्न नामक कार्यावस्था है। बिन्दु और यत्न के योग से प्रतिमुखसन्धि सिद्ध होती है। इस सन्धि में कवि इन अंगों का प्रयोग कर रहा है–'वैदेही परिरम्भ एष च[9] ···' राम के इस कथन से उनकी रति के प्रति ईहा प्रकट होने से यहाँ विलास की व्यञ्जना हो रही है। 'भोः भोः परिस्कन्दाः क्व रामो दाशरथिः[10] परशुराम के इस कथन से परिसर्प की व्यञ्जना हो रही है। जिस समय सीता राम को रोकने का प्रयत्न करती हैं परन्तु राम परशुराम से मिलने के लिए बढ़ते ही चले जाते हैं उस समय विधूत की स्थिति रहती है। राम के इस कथन में 'अयि प्रिये मुनिरयमथवीरस्तादृशस्तत्प्रियम्'[11] शम की व्यञ्जना हो रही है। सखियों के इस कथन में 'भर्तृदारके प्रेक्षस्व[12]' नर्म की व्यञ्जना हो रही है। 'अयं स किल ··· परशुः'[13] राम के इस कथन में नर्मद्युति की व्यञ्जना हुई है। परशुराम की गर्वोक्तियों का राम के द्वारा समुचित उत्तर दिया जाता है अतः यह स्थल प्रगमन की व्यञ्जना कर रहा है। सीता के द्वारा धनुष पकड़ कर राम को रोकना और कंकणमोचन के लिए अन्तःपुर में राम को बुलाया जाना निरोध के उदाहरण हैं। क्रुद्ध जनक को दशरथ के द्वारा अनुनय-विनय करते हुए उन्हें शान्त करने का प्रयास पर्युपासन का स्थल है। क्रुद्ध परशुराम का महर्षि वसिष्ठ के प्रति अपमानजनक बोलना वज्र का उदाहरण है। 'अयं विनेता दृप्तानाम्'[14] जनक के इस कथन में पुष्प की व्यञ्जना हो रही है। 'पौलस्त्य-विजयोद्दामकार्त-वीर्यार्जुनद्विषम्'[15] राम के इस कथन में उपन्यास की स्थिति है। 'परिषदियमृषीणामत्र वीरो युधाजित्'[16] इस पद्य में वर्णसंहार की व्यञ्जना हो रही है।

गर्भसन्धि

चतुर्थ और पञ्चम अंकों में गर्भसन्धि की स्थिति है। इस सन्धि की प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं–परशुराम पर राम की विजय परशुराम द्वारा राम को धनुर्दान और स्वयं वन की ओर प्रस्थान, युधाजित् तथा भरत के द्वारा राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव, कैकेयी के सन्देश के अनुसार सीता और लक्ष्मण के सहित राम का वनगमन, सीता के वियोग में राम का विलाप,

शबरी के द्वारा विभीषण सुग्रीवादि की मित्रता की सूचना, वाली का आगमन, राम वाली युद्ध और वाली का वध।

चतुर्थ और पंचम अंकों में प्रमुख रूप से राम का श्रेय परशुराम पर विजय के कारण तो दृष्ट रहता है परन्तु वनगमन के कारण अदृष्ट हो जाता है। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के द्वारा जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयत्न उपाय है और अपाय के सम्मिश्रण से यहाँ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था रहती है। नायक राम की फलप्राप्ति में सहायक सुग्रीव और विभीषण की कथा पताका है और प्राप्त्याशा तथा पताका के योग से गर्भसन्धि की सिद्धि होती है। महाकवि भवभूति ने गर्भसन्धि के निम्नलिखित अंगों का प्रयोग किया है–

मन्थरा का वेश धारण कर शूर्पणखा के मिथिला में पहुँचने और कैकेयी के सन्देश का दशरथ तक पहुँचने में अभूताहरण की व्यञ्जना हो रही है। 'कृशाश्वान्तेवासी'[17] इत्यादि नेपथ्य के द्वारा वैमानिकों को सम्बोधित कर कहे गये इस श्लोक में मार्ग की स्थिति है। 'किमन्यथा करिष्यत्येवं रामः'[18] शूर्पणखा के इस कथन में रूप की स्थिति है। 'दृष्टस्त्वया दिवौकसामेकायनीभावः'[19] इत्यादि माल्यवान् के उत्कर्ष युक्त इन वाक्यों में उदाहृत की व्यञ्जना हो रही है। 'पुण्यानामृषयः ' से लेकर 'गृहीतेयमाज्ञा'[20] में क्रम की व्यञ्जना होती है। पञ्चम अंक के विष्कम्भक में जटायु के सामयुक्त वचन में[21] संग्रह की व्यञ्जना हुयी है और यहीं जटायु के क्रोधयुक्त वचनों[22] में तोटक की व्यञ्जना हो रही है। चतुर्थ अंक में राम के वे कथन प्रार्थना के उदाहरण है जिनमें वे अपनी माता कैकेयी की इच्छा को पूरा करने के लिए पूज्य पिता दशरथ से निवेदन कर रहे हैं।[23] पञ्चम अंक के विष्कम्भक में सम्पाति के कथन में अनुमान की व्यञ्जना हो रही है। इसी प्रकार इसी विष्कम्भक में अधिबल का भी प्रयोग हुआ है।[24] 'न्यक्कारो हृदि'[25] इत्यादि राम के कथन में उद्वेग की व्यञ्जना हो रही है। 'क्षितेरानन्तर्य[26]...' इत्यादि माल्यवान् के शंका और त्रास की स्थिति में सम्भ्रम की व्यञ्जना हो रही है। नाटक के षष्ठ अंक के विष्कम्भक में 'बीजं यस्य विदेहराज'[27] इत्यादि श्लोक में आक्षेप की व्यञ्जना हुई है। यहाँ आक्षेप की स्थिति होने के कारण गर्भसन्धि की स्थिति षष्ठ अंक के प्रथम पद्य तक रहती है।

विमर्श सन्धि

इस सन्धि के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख घटनायें हैं–समुद्र पर सेतुबन्धन, लंका पर आक्रमण, अंगद का दौत्य, राम रावण युद्ध और राक्षसकुल समेत रावण वध। यहाँ अंगद का वृत्तान्त प्रकरी है। राक्षस कुल समेत

रावण के वध से फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है, अतः नियताप्ति है। प्रकरी और नियताप्ति के योग से विमर्श सन्धि की निष्पत्ति होती है। इस सन्धि का प्रयोग षष्ठ अंक में हुआ है। इस अंक में विमर्श सन्धि के निम्नलिखित अंग प्रयुक्त हुए हैं—माल्यवान् के 'साचिव्यं नाम महते रान्तापाय'[28] इस कथन में अपवाद की व्यंजना हो रही है। रावण के कोपपूर्ण भाषण में सम्फेट की व्यंजना हो रही है। राक्षसों के वध-बन्धनादि में विद्रव की व्यंजना हुई है। वासव की उक्ति में जहाँ विरोध का शमन हो गया है वहाँ शक्ति की व्यंजना हो रही है। अंगद की तर्जन और उद्वेजन से युक्त उक्ति में द्युति की व्यंजना हो रही है।[29] वासव-चित्ररथ संवाद में प्रसंग की स्थिति है।[30] रावण के द्वारा अपनी शक्ति के वर्णन में व्यवसाय की व्यंजना हो रही है।[31] रावणमन्दोदरी संवाद में विचलन ध्वनित हो रहा है।[32] अंगद और रावण के वार्तालाप में विरोधन की स्थिति है।[33] विकम्भक के माल्यवान् के कथनों में प्ररोचना की स्थिति है। नेपथ्य में 'भो भो रामभद्र किमद्याप्युपेक्षसे दुर्वृत्तमेनम्'[34] इत्यादि दिव्यर्षिगण की उक्ति में आदान की व्यंजना हो रही है।

निर्वहणसन्धि

नाटक के सप्तम अंक में निर्वहण सन्धि का प्रयोग हुआ है। इस सन्धि की प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं—सीता राम का पुर्नमिलन, राम लक्ष्मणादि का अयोध्या पहुँचना, वसिष्ठ भरतादि से भेंट, विश्वामित्र का अयोध्या आगमन और राम का राज्याभिषेक। वसिष्ठ आदि गुरुजनों के द्वारा राम के राज्याभिषेक के लिए की गई तैयारी कार्य है। सीता राम का पुर्नमिलन और राज्याभिषेक फलागम है। यहाँ कार्य और फलागम के योग से निर्वहण सन्धि की निष्पत्ति हुई है। कविवर भवभूति ने निम्नलिखित अंगों का प्रयोग किया है—'रघुकुलतिलके'[35] इत्यादि अलका के इस कथन में सन्धि की व्यंजना हो रही है। 'वस्वर्करुद्रसहितः स्वयमेव साक्षाद्'[36] नेपथ्य के इस कथन में पूर्वभाव की अभिव्यक्ति हुयी है। 'सम्प्रति तु द्रोणाद्रि प्रत्याहर्तो हनूमतः'[37] इत्यादि सुग्रीव के कथन में विबोध की स्थिति है। सुग्रीव के उक्त कथन के उत्तर में राम का 'यदभिरुचितं प्रियवयस्याय'[38] इस कथन के साथ विमान पर आरोहण ग्रथन का उदाहरण है। 'उत्खातस्त्रिभुवन'[39] इत्यादि सुग्रीव के कथन में समय नामक सन्ध्यंग ध्वनित हो रहा है। जिस समय राम महर्षि कौशिक के आश्रम को देखकर अपने पूर्व अनुभव का कथन करते हैं वहाँ निर्णय की स्थिति है।[40] पुष्पक विमान से यात्रा करते हुए राम-सीता-लक्ष्मणादि के वार्तालाप में परिभाषण की व्यंजना हो रही है। किन्नरमिथुन

के सहसा आगमन में उपगूहन की स्थिति है। किन्नर युगल के द्वारा की गई राम की स्तुति[41] में प्रसाद की व्यंजना हो रही है। अयोध्या में राम आदि का भरतादि से मिलन और महर्षि वसिष्ठ का दर्शन आनन्द की अभिव्यक्ति कर रहा है।[42] महर्षि विश्वामित्र के प्रथम कथन में कृति की स्थिति है।[43] राम के राज्याभिषेक में भाषण की व्यंजना हो रही है। 'किं करणीयमेतदधिकम्।[44] विश्वामित्र के इस कथन में काव्यसंहार की स्थिति है। 'क्षमापालाः क्षीणतन्द्राः' इत्यादि भरतवाक्य में शुभशंसन की व्यंजना हुई है।

सन्ध्यन्तर

महावीरचरित नामक नाटक में स्थान-स्थान पर सन्ध्यन्तरों की व्यंजना हुई है। क्रुद्ध परशुराम को शान्त करने के लिये महर्षि वसिष्ठ के द्वारा कहे गये शान्त वचनों से[45] साम की व्यंजना हो रही है। रामचन्द्र के द्वारा परशुराम का दमन दण्ड का उदाहरण है। माल्यवान् की योजनाओं में प्रत्युत्पन्नमति अभिव्यंजित हो रही है। वाली एवं राक्षसों के वध में वध की स्थिति है। परशुराम और रावण की दर्पपूर्ण उक्तियों में ओज की व्यंजना हुई है। माल्यवान् के बुद्धिपूर्ण कार्यों में धी की स्थिति है। जामदग्न्य तथा रावण की अनेक उक्तियों में क्रोध की स्थिति है। राम का परशुराम, वाली और रावण के समक्ष निर्भीक भाव से उपस्थित होना साहस का उदाहरण है। क्रुद्ध परशुराम के समक्ष राम को जाता हुआ देखकर सीता के मन में भय उत्पन्न होता है। मन्थरा के वेश में शूर्पणखा का व्यवहार और संन्यासी के वेश में रावण के द्वारा सीता का अपहरण माया के उदाहरण हैं। परशुराम और रावण को अपने शौर्य के मूल्यांकन में भ्रान्ति रहती है। राम के दूत के रूप में अंगद का रावण के यहाँ पहुँचना दौत्य का सूचक है। अपनी योजनाओं को निश्चित करते समय रावण के शूर्पणखा के साथ वार्तालाप में हेत्ववधारण की व्यंजना हुई है। परशुराम के द्वारा माल्यवान् को प्रेषित पत्र लेख का उदाहरण है। आचार्य शिंगभूपाल द्वारा किये गये लक्षण के अनुसार नाटक के षष्ठ अंक में राक्षसराज रावण के द्वारा की गई सीता के रुचिर रूप की कल्पना चित्र नामक सन्ध्यन्तर का उदाहरण है।

नाट्यलक्षण

महावीरचरित में नाट्यलक्षणों का समुचित और यथास्थान प्रयोग हुआ है। द्वितीय अंक में राम और परशुराम के वार्तालाप में भूषण नामक नाट्यलक्षण की व्यंजना हो रही है।[46] चतुर्थ अंक में दशरथ परशुराम की

निसर्ग पवित्रता के सन्दर्भ में तीर्थोदक और वह्नि को प्रस्तुत करते हैं अतएव वहाँ उदाहरण नाट्यलक्षण की व्यंजना हो रही है।[47] पंचम अंक के प्रारम्भ में जहाँ सम्पाति जटायु के आगमन का अनुमान करते हैं वहाँ प्राप्ति नामक नाट्यलक्षण की स्थिति है।[48] तृतीय अंक में जामदग्न्य की गर्वोक्ति में अतिशय नामक नाट्यलक्षण की व्यंजना हो रही है।[49] चतुर्थ अंक में जहाँ राम अपनी माता कैकेयी की इच्छा पूर्ण करने के लिए पिता दशरथ से याचना करते हैं और इस बहाने से स्वयं दण्डकारण्य को प्रस्थान करने की अपनी इच्छा को पूर्ण करना चाहते हैं, वहाँ मनोरथ नामक नाट्यलक्षण की अभिव्यक्ति हुयी है।[50] सागरनन्दी की परिभाषा के अनुसार सप्तम अंक के विष्कम्भक में लंका और अलका के वार्तालाप में लेश नामक नाट्य लक्षण की व्यंजना हो रही है।[51] इसी प्रकार अन्य नाट्यलक्षण भी देखे जा सकते हैं।

नाट्यालंकार

नाट्यशास्त्रियों ने नाट्यालंकार की संख्या ३३ मानी है। महावीरचरित में प्रायः सभी नाट्यालंकारों का प्रयोग हुआ है। यहाँ कतिपय महत्त्वपूर्ण नाट्यालंकारों का प्रयोग प्रस्तुत कर रहे हैं। महावीरचरित के चतुर्थ अंक में ऋषियों के द्वारा सीता को दिया गया आशीर्वाद आशीः नामक नाट्यालंकार की व्यंजना कर रहा है। चतुर्थ अंक में जहाँ शूर्पणखा मन्थरा का वेश धारण करती है वहाँ कपट नामक नाट्यालंकार की व्यंजना हो रही है। चतुर्थ अंक में जामदग्न्य के कथन में पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति हो रही है। द्वितीय और तृतीय अंकों में परशुराम, पंचम अंक में वाली और षष्ठ अंक में रावण की उक्तियों में अभिमान नामक नाट्यालंकार अभिव्यंजित हो रहा है। तृतीय अंक में जनक, दशरथ और विश्वामित्र की सहोक्ति में अक्षमा की व्यंजना हो रही है। प्रथम अंक में राजा कुशध्वज के 'एह्येहि वत्स रघुनन्दन' इत्यादि कथन में प्रहर्ष नामक नाट्यालंकर ध्वनित हो रहा है।

शिल्पकाङ्ग

महाकवि भवभूति ने महावीरचरित में शिल्पकांगों का भी समुचित प्रयोग किया है। यहाँ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा को आशंसा शिल्पकांग कहते हैं। षष्ठ अंक में दुष्प्राप्य सीता के लिये रावण के द्वारा कहे गये वचनों में आशंसा नामक शिल्पकांग अभिव्यंजित हो रहा है।[52] पंचम अंक में राम और लक्ष्मण के वार्तालाप में उद्वेग और ताप की व्यंजना हो रही है।[53] पंचम अंक में विलाप नामक शिल्पकांग दो बार प्रयुक्त हुआ है।[54] प्रथम अंक में राम के

द्वारा धनुष तोड़ने पर राजा कुशध्वज के कथन में प्रहर्ष की अभिव्यञ्जना हो रही है।[55] द्वितीय, तृतीय अङ्कों में जामदग्न्य, शतानन्द, जनक, दशरथ, विश्वामित्र की और षष्ठ अङ्क में रावण की उन उक्तियों में सम्फेट की व्यञ्जना हो रही है जिनमें उनका क्रोध अभिव्यक्त हुआ है। प्रथम अङ्क में राम के द्वारा धनुर्भङ्ग के समय पर, षष्ठ अङ्क में राम-रावण-युद्ध प्रसंग में और सप्तम अङ्क में राम की लङ्का से अयोध्या की यात्रा में चमत्कार नामक शिल्पकाङ्ग का अभिव्यञ्जन हुआ है।

मालतीमाधव

आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक इतिवृत्त

मालतीमाधव प्रकरण की आधिकारिक कथावस्तु इस प्रकार है—मालती मार्ग से निकलते हुए माधव को अनेक बार देखती है और उस पर अनुरक्त हो जाती है। मालती माधव का चित्र निर्मित करती है। मदनोद्यान में दोनों का मिलन होता हैं। माधव उसे बकुलमाला भेंट करता है और अपने चित्र के समीप मालती का चित्र बना देता है। मन्दारिका उस चित्रफलक को मालती के पास ले जाती है। कामन्दकी मालती को गान्धर्वविवाह के लिये प्रोत्साहित करती है। कुसुमाकरोद्यान में मालती और माधव का मिलन होता है। इस घटना के पश्चात् नन्दन के साथ मालती के विवाह का उपक्रम होता है। खिन्न माधव श्मशान में नरमांस विक्रय के लिये प्रस्थान करता है। वहाँ वह देवी चामुण्डा को मालती की बलि देने के लिये समुद्यत अघोर-घण्ट का वध कर देता है। इस प्रकार मालती की प्राण रक्षा करता है। नगरदेवता के मन्दिर में मालती और माधव मिलते हैं और कामन्दकी की आज्ञानुसार दोनों वहाँ से भाग निकलते हैं। उद्यान में मालती को छोड़कर माधव नगर रक्षकों से युद्ध करते हुए मकरन्द की सहायतार्थ प्रस्थान करते हैं। कपालकुण्डला मालती का अपहरण कर लेती है। मालती के वियोग से व्यथित माधव अनेक प्रकार से विलाप करता है। सौदामिनी के साथ माधव श्रीपर्वत पर पहुँचता है। मालती के साथ माधव परावर्तित होता है और दोनों के विवाह की राजा के द्वारा स्वीकृति दे दी जाती है। इस इतिवृत्त के द्वारा कवि ने मालती और माधव के मार्मिक प्रणय की मधुर व्यञ्जना प्रस्तुत की है।

प्रासङ्गिक कथावस्तु की प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं—कामन्दकी की आज्ञानुसार बुद्धरक्षिता मदयन्तिका के मन में मकरन्द के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती है। मकरन्द कुसुमाकरोद्यान में सिंह के आक्रमण से मदयन्तिका

की रक्षा करता है। विक्षत मकरन्द संज्ञाशून्य हो जाता है। मदयन्तिका उसे चेतनावस्था में लाने का प्रयत्न करती है। मालतीवेश में मकरन्द का नन्दन के साथ विवाह होता है। मकरन्द की उपस्थिति में मदयन्तिका अपनी सखियों के समक्ष वियोग वेदना प्रस्तुत करती है। मदयन्तिका मकरन्द के साथ पलायन करती है। नगररक्षकों के साथ मकरन्द का युद्ध होता है। अन्त में मकरन्द और मदयन्तिका का शुभ विवाह हो जाता है। यहाँ भी कवि मकरन्द और मदयन्तिका के प्रणयादि की व्यञ्जना प्रस्तुत करता है।

यहाँ उल्लेख्य यह है कि प्रारम्भ में आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक दोनों ही कथाएँ स्वतन्त्र रूप से विकसित होती हैं परन्तु छठे अङ्क से कवि अपने अनुपमेय चातुर्य के द्वारा प्रासङ्गिक कथा को आधिकारिक के साथ अनुस्यूत कर देता है। इस प्रकार प्रासङ्गिक कथावस्तु की अभिवृद्धि में सहायक हो जाता है।

नान्दी

मालतीमाधव की नान्दी में दो पद्यों का प्रयोग हुआ है। भगवान् शङ्कर की जटाओं की स्तुति के द्वारा कवि ने मङ्गल-कामना की है। चन्द्रनामाङ्किता होने से यह नीली नान्दी है। पद्य में प्रयुक्त इन्दु शब्द रससिद्धि की दृष्टि से माङ्गलिक है। व्याख्याकार त्रिपुरारि का अभिमत है कि इस पद्य में जटाजूट से विभूषित शान्त शङ्कर के द्वारा धीर प्रशान्त कथानायक होने की व्यञ्जना हो रही है। जटा में बहुवचन होने से नायक नायिकाओं की अधिकता ध्वनित हो रही है। जिस प्रकार भूतेश की जटायें उनके अधीन हैं, उसी प्रकार नायक के कार्य भी स्वतन्त्र न होकर कामन्दकी के अधीन हैं। द्वितीय पद्य में विनायक का स्तवन हुआ है। इसमें भी कवि सामाजिकों के लिये और स्वयं के लिये मङ्गल कामना करता है।

प्ररोचना

नान्दी पाठ के पश्चात् 'कल्याणानां त्वमसि' इत्यादि पद्य में सूर्याराधना के साथ ही युक्तिपूर्वक काव्यार्थ सूचित किया गया है। 'उदितभूयिष्ठ' इत्यादि के द्वारा काल निर्देश और 'भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायाम्' के द्वारा देश का निर्देश कर दिया गया है। 'भूम्ना रसानां' इत्यादि के द्वारा कवि-प्रकरण-नटादि की प्रशंसा के द्वारा महाकवि भवभूति ने प्ररोचना की व्यञ्जना प्रस्तुत की है।

प्रस्तावना

प्रस्तावना का प्रारम्भ "तावद् भूमिकास्तथैव" इत्यादि नट की उक्ति से

प्रारम्भ हो जाता है। इसमें सूत्रधार और नट प्रकरण से प्रस्तुत होने वाले पात्रों के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। सूत्रधार कामन्दकी की और नट अवलोकिता की भूमिका ग्रहण कर लेता है। प्रस्तावना की समाप्ति पर विष्कम्भक के प्रारम्भ में ये ही दोनों पात्र प्रवेश करते हैं।

अर्थोपक्षेपक

मालतीमाधव में कवि ने अर्थोपक्षेपकों का समुचित प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क के मिश्र विष्कम्भक में कवि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों की सूचना दे देता है। ये सूचनायें इस प्रकार हैं–भूरिवसु और देवरात की प्रतिज्ञा, कामन्दकी का सहयोग, मालती से विवाह करने की नन्दन की कामना का राजा के द्वारा अनुमोदन, मालती का माधव के प्रति अनुराग मालती के द्वारा माधव का चित्राङ्कन, मदनोद्यान में मालतीमाधव के मिलन की योजना, सौदामिनी की विचित्र मन्त्रसिद्धि, श्मशान में अघोरघण्ट और उसकी शिष्या कपालकुण्डला की उपस्थिति और कामन्दकी की आज्ञा के अनुसार मदयन्तिका को मकरन्द के प्रति अनुराग युक्त करने के लिये बुद्धरक्षिता का प्रयत्न। इसी विष्कम्भक में कवि सामाजिकों को माधव के अनुचर कलहंस और विहार-दासी मन्दारिका का भी परिचय करा देता है। इस विष्कम्भक में कवि केवल सूचनायें ही नहीं देता है प्रत्युत भावी घटनाओं के विकास के लिये आवश्यक वातावरण का भी निर्माण करता है।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक का प्रयोग हुआ है। इस प्रवेशक में चार घटनाओं की सूचना मिलती है–१. कामन्दकी मकरन्द के द्वारा मदनोद्यान में मालती और माधव के मिलन का वृत्तान्त जान लेती है। २. मालती वियोग वेदना से अस्वस्थ हो जाती है। ३. वह माधव के विषय में और अधिक जानने के लिये उत्सुक है। ४. मालती के पिता राजा से कह देते हैं कि उनकी कन्या पर महाराज का अधिकार है। "अस्वस्थ मालती को देखने के लिये भगवती कामन्दकी मालती के भवन में आ रही हैं"–इस कथन के द्वारा वर्तिष्यमाण घटना की सूचना मिलती है।

प्रथम एवं द्वितीय दोनों ही अङ्कों के अन्त में अङ्कावतार का प्रयोग हुआ है। प्रथम अङ्क के अन्त में "तदत्र भगवती कामन्दकी नः शरणम्" मकरन्द का यह कथन आगामी अङ्क के इतिवृत्त को सूचित कर रहा है। द्वितीय अङ्क के अन्तिम वाक्य में कामन्दकी मालती और माधव में परिचय कराने के लिये कहती है और आगामी अङ्क में दोनों को मिलाकर यह कार्य पूर्ण किया जाता है।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक का प्रयोग हुआ है जिसके द्वारा इन

घटनाओं की सूचना मिलती है–१. कामन्दकी माधव को कुसुमाकरोपवन में प्रस्तुत होने का सन्देश भिजवाती है। पुष्पावचय के कार्य से मालती के साथ कामन्दकी भी उसी उपवन में पहुँचने वाली है। कामन्दकी की आज्ञानुसार बुद्धरक्षिता मदयन्तिका के हृदय में मकरन्द के प्रति प्रणय उत्पन्न कर देती है और वह उसे देखने के लिये उत्सुक हो उठती है, अतः कुसुमाकरोपवन में पहुँचने के लिये उद्युक्त है। अङ्क के अन्त में अङ्कावतार का प्रयोग हुआ है। इस अङ्क के अन्त में कामन्दकी माधव से कहती है–"अतिकातरोऽसि वत्स ! तदेहि तावत् पश्यामः।"

तृतीय अङ्क में भागे हुये सिंह की सूचना चूलिका के द्वारा दी गयी है। चतुर्थ अङ्क में चूलिका के द्वारा यह कामन्दकी से निवेदन किया गया है कि वह मालती को लेकर शीघ्र आवे।

पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक है। इसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि अघोरघण्ट कराला देवी को एक स्त्रीरत्न का उपहार देने वाला है और वह स्त्रीरत्न इसी नगर में सुलभ है।

षष्ठ अङ्क में शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है। इसका सूच्य है कि माधव ने अघोरघण्ट का वध कर दिया है परन्तु स्त्री जाति की होने के कारण कपालकुण्डला को छोड़ दिया है और उसने माधव के प्रति प्रतिशोध का निश्चय कर लिया है। यहीं नेपथ्य से यह सूचना दी गयी है कि मालती के विवाह के लिये तैयारी हो रही है और वह मङ्गल के लिये नगरदेवता के मन्दिर में जाने वाली है।

सप्तम अङ्क में प्रवेशक के द्वारा ये सूचनायें दी गई हैं–१. मालती के वेश में स्थित मकरन्द का नन्दन के साथ विवाह। २. नववधू (मकरन्द) द्वारा नन्दन की भर्त्सना। ३. मालती से सम्बन्ध न रखने के लिये नन्दन की प्रतिज्ञा। इसी प्रवेशक के द्वारा इस भावी घटना की भी सूचना दे दी गयी है कि बुद्धरक्षिता द्वारा मदयन्तिका और मकरन्द का मिलन करा दिया जायेगा।

अष्टम अङ्क के प्रारम्भ में अवलोकिता द्वारा सूचना दे दी गयी है कि कामन्दकी नन्दन के भवन से आ गयी हैं और मालती तथा माधव दीर्घिका-तटस्थ शिलातल पर विराजमान हैं।

नवम अङ्क में शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है जिसके द्वारा सूचना दी जाती है कि मालती के वियोग से व्यथित माधव ने परिचित स्थानों का परित्याग कर दुर्गम और निर्जन स्थानों का आश्रय लिया है और मकरन्द उसके साथ है।

अष्टम अङ्क में अङ्कावतार का प्रयोग चमत्कारपूर्ण है। इस अङ्क का अन्तिम वाक्य इस प्रकार है–"सौदामिनी स्फुरणमेव सौख्यम्……।" यहाँ सौदामिनी का अर्थ विद्युल्लता है। नवम अङ्क का प्रारम्भ सौदामिनी (पात्र) के प्रयोग से होता है। नवम अङ्क के अन्त में भी अङ्कावतार है। इस अङ्क के अन्त में मकरन्द कहता है–"तदत्र कान्तारगहने सहास्मद्वर्गेण प्रविष्टां भगवतीमनुसृत्य वृत्तान्तमेनं कथयामि।"

दशम अङ्क के प्रारम्भ में कामन्दकी, लवङ्गिका और मकरन्दिका प्रवेश करती हैं। इस अङ्क में चूलिका के द्वारा यह सूचित किया जाता है कि मालती के अपहरण के समाचार को सुनकर भूरिवसु संसार से विरक्त हो गये हैं और अग्नि में अपने प्राणों का परित्याग करने के लिये सुवर्ण बिन्दु की ओर गये हैं। चूलिका के द्वारा ही यह सूचित किया गया है कि सौदामिनी के वचनों को सुनकर भूरिवसु लौट रहे हैं।

पञ्चसन्धियाँ

१–मुखसन्धि

मालतीमाधव प्रकरण के प्रथम एवं द्वितीय अङ्कों में मुखसन्धि है। इस सन्धि की प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं–माधव मालती का प्रथम बार दर्शन करता है। माधव की बकुलमाला मालती के पास भेजी जाती है। मालती माधव के चित्र का निर्माण करती है और माधव उसी पर मालती का चित्र अङ्कित कर देता है। मालती और माधव की प्रणय-वेदना और मालती के हृदय में माधव के प्रति अनुराग बढ़ाने के लिये कामन्दकी विधिवत् प्रयास करती है।

कामन्दकी की इस कामना–"ईश्वर करे भूरिवसु की पुत्री मालती और देवरात के पुत्र माधव का शुभ विवाह हो" में बीज की स्थिति है। कामन्दकी द्वारा कहे गये इस वाक्य–"प्राणैस्तपोभिरथवाभिमतं मदीयैः कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत् कृतं स्यात्" में आरम्भ का निर्देश हो गया है। इस प्रकार बीज और आरम्भ के योग से मुखसन्धि की निष्पत्ति होती है। मुखसन्धि के अङ्गों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है। जहाँ कामन्दकी मालती और माधव के पाणिग्रहण की भावनाओं को व्यक्त कर बीज को उपन्यस्त करती है वहाँ उपक्षेप की व्यञ्जना हुयी है। भूरिवसु और देवरात के द्वारा की गयी प्रतिज्ञा और माधव के पद्मावती में आने की चर्चा के द्वारा बीज का विस्तार होने से परिकर है। माधव को पुनः पुनः देखने से मालती के हृदय में समुत्पन्न उत्कण्ठा[56] में परिन्यास है। प्रथम अङ्क में मालती के गुणकथन[57] में और

द्वितीय अङ्क में माधव के गुण कथन[58] में विलोभन की व्यञ्जना हुयी है। "वरेऽन्यस्मिन् दोषपितरि विचिकित्सा च जनिता"[59] कामन्दकी के इस कथन में अर्थों का सम्प्रधारण होने से युक्ति की व्यञ्जना हो रही है। मालती के अवलोकन से माधव के अन्तःकरण में आनन्द का आविर्भाव प्राप्ति का उदाहरण है। "दिग्धामृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्याः" में सुख-दुःख का मिश्रण होने से विधान की व्यञ्जना हुयी है। 'तत् सङ्गमं प्रति सखे नहि संशयोऽस्ति' इत्यादि में वीज का व्यवस्थापन होने से समाधान की व्यञ्जना हुयी है। मकरन्द की 'अहो ! अभिषङ्गः' इत्यादि स्वगतोक्ति में परिभावना की स्थिति है। 'अथ ताः······प्रतिनिवृत्त्य भर्तृदारिके' इत्यादि में गूढ़ बीज को प्रकाशित करने के कारण उद्भेद है। द्वितीय अङ्क में मालती और लवङ्गिका के वार्तालाप में कारण है। जहाँ कामन्दकी शकुन्तला, उर्वशी, वासवदत्ता आदि के उदाहरणों से मालती को प्रोत्साहित करती है वहाँ भेद नामक सन्ध्यङ्ग की स्थिति है।

२. प्रतिमुखसन्धि

प्रकरण के तृतीय अङ्क से प्रारम्भ कर चतुर्थ अङ्क पर्यन्त प्रतिमुख सन्धि है। जिसमें प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं–कुसुमाकरोपवन में माधव और मालती मिलते हैं। मदयन्तिका पर व्याघ्र झपटता है। मकरन्द उसकी रक्षा करता है। संज्ञाहीन माधव मालती के स्पर्श से चेतना प्राप्त करता है। नन्दन के साथ मालती का पाणिग्रहण निश्चित होने पर मालती और माधव निराश होते हैं और कामन्दकी उनको आश्वस्त करती है।

कुसुमाकर उद्यान में माधव के द्वारा मालती का दर्शन बिन्दु है। कामन्दकी और माधव का वार्तालाप जिसे माधव छिपकर सुनता है, मालती और माधव को समीप लाने का प्रयत्न है। कामन्दकी का वह प्रण भी प्रयत्न का व्यञ्जक है जिसमें वह कहती है कि मैं मालती और माधव के पाणिग्रहण के लिये प्रयत्न करूँगी, चाहे इसमें मुझे अपने प्राणों का ही उत्सर्ग क्यों न करना पड़े ?[60]

इस प्रकरण में प्रतिमुख सन्धि के इन अङ्गों का प्रयोग हुआ है–मालती को देखकर माधव द्वारा की गई इच्छा[61] में विलास की व्यञ्जना हो रही है। 'वत्स माधव दिष्ट्या[62]····' इत्यादि कथन में परिसर्प की स्थिति है। माधव की नैराश्यपूर्ण उक्तियों में विधूत की व्यञ्जना हुयी है और निराशा को दूर करने के लिये कामन्दकी के द्वारा दिया गया भाषण शम का व्यञ्जक है। मालती के पुष्पावचय के श्रम से उत्पन्न स्वेदबिन्दु को कामन्दकी प्रियतम माधव के दर्शन जनित बतलाती है अतः नर्म की स्थिति है। राजा नन्दन

और मालती का विवाह निश्चित कर चुका है। मदयन्तिका को दी गयी सूचना में निरोध है। बुद्धरक्षिता और मदयन्तिका के वार्तालाप में प्रगमन की स्थिति है। चतुर्थ अङ्क में[63] मकरन्द ने पर्युपासन का प्रयोग किया है। 'तत् किंकर्तव्यम् (विचिन्त्य) न खलु महामांस···' इत्यादि में उपन्यास की स्थिति है। चतुर्थ अङ्क के अन्त में सिन्धु सङ्गम पर स्नान करती हुयी वधुओं के वर्णन[64] में वर्णसंहार की व्यञ्जना हुयी है।

३. गर्भसन्धि

प्रकरण के पञ्चम, षष्ठ और सप्तम अङ्कों में गर्भसन्धि का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं–श्मशान में माधव के द्वारा मांस विक्रय, अघोरघण्ट का वध और मालती की प्राणरक्षा, नगर देवता के मन्दिर में मालती और माधव का मिलन और दोनों का वहाँ से प्रस्थान, मालती के वेश में मकरन्द का नन्दन के साथ विवाह, नन्दन का छिपकर पाणिग्रहण तथा मकरन्द के साथ मदयन्तिका का पलायन। कुसुमाकर उपवन में जो बीज दृष्ट था नन्दन के साथ मालती का विवाह निश्चित हो जाने पर वह अदृष्ट हो गया था। उसके अन्वेषण का व्यापार पञ्चम अङ्क में माधव के प्रवेश से प्रारम्भ होकर अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। मदयन्तिका और मकरन्द का प्रणय वृत्तान्त पताका है। यह यहाँ से प्रारम्भ होकर मूल कथा के साथ अन्त तक चलती है और उसके विकास में सहायता करती है। इस सन्धि में पताका और प्राप्त्याशा का योग रहता है। मांस-विक्रय के निमित्त श्मशान में पहुँचने पर भी माधव मालती को प्राप्त करने की आशा रखता है। मालती की कराला को बलि दी जाने वाली होती है कि माधव उसे बचा लेता है और वह विघ्न नष्ट हो जाता है अतः दोनों के मिलन की सम्भावना बढ़ जाती है। नन्दन के साथ मालती का विवाह निश्चित होने पर वह आत्महत्या के लिये समुद्यत होती है परन्तु माधव उसकी रक्षा करता है। इस प्रकार इस विघ्न का भी निराकरण हो जाता है। अतः प्राप्त्याशा और पताका के योग से गर्भ सन्धि की निष्पत्ति होती है।

कवि ने गर्भ सन्धि के इन अङ्गों का प्रयोग किया है। 'त्वं वत्सलेति[65]···' मालती के प्रति मकरन्द के इस कथन में तथा 'परिणतरमणीया[66]·····'माधव के प्रति कामन्दकी के इस कथन में प्रार्थना गर्भ सन्ध्यङ्ग की व्यञ्जना हो रही है। नगरदेवता के मन्दिर में माधव लवङ्गिका का स्थान ग्रहण करता है, अतः वह अभूताहरण की स्थिति है। इसी प्रकार मालती के वेश में मकरन्द नन्दन के साथ विवाह करने के लिये जाता है, वहाँ भी अभूताहरण है।

"त्वं वत्सलेति ···[67] मकरन्द के इस कथन में और 'परिणतरमणीया:'[68] में प्रार्थना की व्यञ्जना हो रही है। षष्ठ अङ्क में जब नगर देवता के मन्दिर में माधव लवङ्गिका का वेश धारण करता है तो वहाँ अभूताहरण की स्थिति रहती है। माधव की "मालत्या प्रथमावलोकन ···[69] इत्यादि उक्ति में मार्ग की व्यञ्जना हो रही है। मालती की अस्पष्ट ध्वनि को सुनकर माधव का यह कथन "नादरतावदविकल[70] इत्यादि रूप का उदाहरण है। माधव के द्वारा मालती का आलिङ्गन क्रम का उदाहरण है।[71] "इयमशेषसामन्त ··· तुभ्यं दीयते" में संग्रह की व्यञ्जना हो रही है। मकरन्द के द्वारा मालती की मनोव्यथा के अनुमान में अनुमान की व्यञ्जना हो रही है।[72] माधव के द्वारा मालती को दिये गये उपालम्भ में आक्षेप की व्यञ्जना हो रही है।[73] "भगवती सुलभमपि" इत्यादि में उद्वेग की स्थिति है। माधव और अघोरघण्ट के क्रोधपूर्ण वार्तालाप में तोटक की व्यञ्जना हुयी है।[74] मालती और कपालकुण्डला के मन में भय और शङ्का होने से सम्भ्रम की अभिव्यक्ति होती है।

अवमर्शसन्धि

अष्टम और नवम अङ्कों में अवमर्श सन्धि की स्थिति है। इसकी प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं– दीर्घिका तट पर माधव मालती के साथ प्रेम-वार्ता करता है। नगर रक्षकों के साथ मकरन्द का युद्ध होता है और माधव उसकी सहायता के लिये जाता है। कपालकुण्डला मालती का अपहरण करती है। तत्पश्चात् मालती का अन्वेषण होता है। मालती के वियोग से व्यथित माधव विलाप करता है और प्राण छोड़ने के लिये समुद्यत हो जाता हैं। उसी समय सौदामिनी का आगमन होता है और माधव की प्राणरक्षा हो जाती है।

प्रकरी और नियताप्ति के योग से अवमर्श सन्धि की अभिव्यक्ति होती है। रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में जब मकरन्द और मदयन्तिका पलायन करते हैं उस समय नगर रक्षक उन्हें देखकर रोकने का प्रयास करते हैं। मकरन्द उनके साथ युद्ध करता है उसी समय माधव भी उनकी सहायता के लिये आजाता है। मकरन्द और माधव के शौर्य से प्रभावित महाराज युद्ध समाप्ति का आदेश देते हैं। प्रकरण की यह घटना प्रकरी है।

कपालकुण्डला के द्वारा मालती का अपहरण कर लिया जाता है। अतएव मालती के वियोग से व्यथित माधव प्राणोत्सर्ग के लिये समुद्यत हो जाता है परन्तु सौदामिनी माधव के करकमलों पर बकुलमाला रखकर सन्देश देती हैं कि मालती की कपालकुण्डला से रक्षा करली गयी है और

वह श्रीपर्वत पर विराजमान है। यह घटना नियताप्ति है; क्योंकि इसमें नायक मालती रूपी फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती हैं। कवि ने अवमर्श सन्धि के अङ्गों का प्रयोग इस प्रकार किया है– अष्टम अङ्क में जहाँ 'कपाल-कुण्डला मालती का अपहरण कर लेती हैं, 'विद्रव' की स्थिति है। माधव के दोष कथन में 'अपवाद' की व्यंञ्जना हो रही है।[75] मालती के रोषपूर्ण कथन में 'सम्फेट' की व्यञ्जना हुयी है। "आ पापे तिष्ठ तिष्ठ" और "नन्वाक्रन्द आक्रन्द" में 'द्युति' तथा "यावत् श्रीपर्वतमुपनीय" इत्यादि में 'विचलन' की व्यञ्जना हो रही है। कपालकुण्डला के द्वारा मालती की अवज्ञा में 'छलन' की स्थिति है। कलहंस के द्वारा माधव के शौर्यादि कथन में 'प्रसंग' की व्यञ्जना हो रही है। महाराज के द्वारा युद्ध बन्द करने के आदेश में 'शक्ति' की व्यञ्जना हो रही है। नवम अङ्क के अन्त में 'प्ररोचना' की अभिव्यक्ति हो रही है।[76] मकरन्द की स्वगतोक्ति में 'आदान' की व्यञ्जना हो रही है।[77]

निर्वहणसन्धि

मालतीमाधव प्रकरण के दशम अङ्क में निर्वहण सन्धि की स्थिति है। इसकी प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं– सौदामिनी के सहयोग से माधव मालती को श्रीपर्वत से लाता है। मदयन्तिका और मकरन्द का मिलन होता है। मालती और माधव तथा मदयन्तिका और मकरन्द के विवाह के लिये नरेन्द्र आदेश देते हैं और नन्दन अनुमोदन करता है। इस अङ्क की गौण घटनायें इस प्रकार हैं– कामन्दकी, भूरिवसु आदि प्राण त्याग के लिये समुद्यत होते हैं और उनके प्राणों की रक्षा की जाती है। कार्य और फलागम के योग से निर्वहण सन्धि की अभिव्यक्ति होती है। जब राजा माधव को जामाता मान लेता है और नन्दन उसका अनुमोदन कर देता है तो वहाँ फलागम की स्थिति रहती है। मालती और माधव का मिलन ही कार्य है। कवि ने इस सन्धि के अङ्गों का यथास्थान इस प्रकार प्रयोग किया है– "इदमत्र रामणीयकम्···।" सौदामिनी की इस उक्ति में 'सन्धि' की व्यञ्जना हो रही है। "अये प्रत्यापन्नचेतना मालती · ।"[78] इत्यादि माधव के कथन में 'विबोध' की व्यञ्जना हो रही है। जहाँ मालती सभी की रक्षा की चर्चा करती है वहाँ 'निर्णय' की स्थिति है। कामन्दकी, माधव, मालती आदि के वार्तालाप में 'परिभाषा' की व्यंजना हो रही है। "एह्येहि भूरिजन · ।"[79] कामन्दकी के इस कथन में 'भाषण' की स्थिति है। "सा योगिनी·· ।[80] में 'उपगूहन' की व्यंजना हो रही है। माधव और मकरन्द की सहोक्ति[81] में 'समय' की अभिव्यक्ति हो रही है। "इदानीं सर्वथा कृतार्थोऽस्मि" माधव के इस कथन

में 'आनन्द' की व्यंजना हो रही है। नरेन्द्र द्वारा प्रेषित पत्र में 'कृति' की स्थिति है।[82] कामन्दकी, माधव और मकरन्द के द्वारा सौदामिनी की प्रशस्ति में 'प्रसाद' की व्यञ्जना हो रही है।[83] "यत्प्रागेव मनोरथैः··· ।[84] कामन्दकी के इस कथन में काव्यसंहार की व्यञ्जना हो रही है। नायक माधव के द्वारा प्रस्तुत भरतवाक्य[85] में 'प्रशस्ति' की अभिव्यक्ति हुयी है।

सन्ध्यन्तर

महाकवि भवभूति ने अपने प्रकरणरत्न मालतीमाधव में सन्ध्यन्तरों का यथास्थान प्रयोग किया है। अष्टम अङ्क में माधव के प्रेमार्द्र वचनों में 'साम' की व्यञ्जना हो रही है।[86] माधव के द्वारा मालती को बकुलमाला का प्रस्तुत किया जाना 'दान' का उदाहरण है। 'प्रत्युत्पन्नमतित्व' की वहाँ व्यञ्जना होती है जहाँ कामन्दकी मालती के वेश में मकरन्द को वधू बनाकर नन्दन के यहाँ भेज देती हैं। मकरन्द के द्वारा शार्दूल और माधव के द्वारा अघोरघण्ट के प्राणान्त में 'वध' नामक सन्ध्यन्तर है। माधव और अघोरघण्ट के वार्तालाप में 'ओज' और 'क्रोध' की अभिव्यक्ति हुयी है। कामन्दकी की चातुर्यपूर्ण योजनाओं में 'धी' की अभिव्यक्ति हो रही है। मालती की रक्षा के लिये अपने प्राणों की भी चिन्ता न कर माधव का अघोरघण्ट से युद्ध करना 'साहस' का उदाहरण है। अघोरघण्ट और माधव के युद्ध के समय कपालकुण्डला और मालती के मन में 'भय' की स्थिति रहती है। नगर-देवता के मन्दिर में लवङ्गिका के स्थान पर माधव के द्वारा मालती का आलिङ्गन 'माया' का उदाहरण है। मकरन्द को वधूवेश में मालती मान लेने पर मदयन्तिका और नन्दन को 'भ्रान्ति' होती है। कामन्दकी का कार्य प्रायः 'दूत्य' का उदाहरण है। जहाँ मालती माधव का और माधव मालती का चित्र निर्मित करते है, वहाँ 'चित्र' की स्थिति है। चित्रफलक पर माधव द्वारा लिखित श्लोक 'लेख' का उदाहरण है।

नाट्यलक्षण

कवि ने नाट्यलक्षणों का समुचित प्रयोग किया है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं– "महाभाग सुश्लिष्टगुणतया रमणीय··· "इत्यादि माधव के प्रति लवङ्गिका के इस कथन में 'भूषण' की व्यञ्जना हो रही है। चतुर्थ अङ्क में जहाँ मालती और माधव एक दूसरे के प्रति अपने भावों को अवलोकनों से प्रकट करते हैं, वहाँ 'शोभा' की स्थिति है।[87] नन्दन के साथ मालती का विवाह निश्चित हो जाने पर माधव और मालती के मन में 'संशय' की स्थिति रहती है।" लीनेव प्रतिविम्बतेव···।[88] इत्यादि

माधव के कथन में 'पदोच्चय' है। श्मशान में माधव से मालती का अकस्मात् मिलन 'सिद्धि' का उदाहरण है। वधूवेश में मकरन्द को मालती मान कर भ्रम होना 'सारूप्य' है। माधव के द्वारा मालती के गुणों के वर्णन में 'गुणकीर्तन' की व्यञ्जना हुयी है।[89] "पश्यामि तामित इत···[90] में 'दिष्ट' की व्यञ्जना हुयी है। "प्रेयो मित्रं बन्धुता ··· "[91] इत्यादि कामन्दकी के उपदेश में 'उपदिष्ट' की व्यञ्जना हो रही है। "ज्वलतु रात्रौ ···[92] इत्यादि में 'गुणातिपात' की व्यञ्जना हो रही है। "इत्थं त्वयैव कथित ··· इत्यादि मकरन्द के इस कथन में 'संक्षिप्ति' की व्यञ्जना हो रही है।

नाट्यालङ्कार

मालतीमाधव प्रकरण में नाट्यालङ्कारों का समुचित प्रयोग हुआ है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं– तृतीय अङ्क में बुद्धरक्षिता के कथन में[93] और पञ्चम अङ्क में मालती के कथन में[94] आक्रन्द नामक नाट्यालङ्कार की व्यञ्जना हो रही है। नगरदेवता के मन्दिर में माधव द्वारा लवङ्गिका का वेश धारण करना 'कपट' का उदाहरण है। प्रथम अङ्क में जहाँ लवङ्गिका माधव से मालती के लिये बकुलमाला की याचना करती है वहाँ 'याच्ञा' की स्थिति है।[95] "यच्च किल कौशिकी शकुन्तला ···" कामन्दकी के इस कथन में 'आख्यान' की व्यञ्जना हो रही है। कामन्दकी के द्वारा मालती और माधब तथा मदयन्तिका और मकरन्द के लिये किये गये प्रयत्नों में 'उद्यम' की व्यञ्जना हो रही है। माधव और अघोरघण्ट के वार्तालाप में 'क्षोभ' की व्यञ्जना हो रही है। पञ्चम अङ्क में जहाँ माधव मालती के आलिङ्गन की इच्छा करता है वहाँ 'स्पृहा' की स्थिति है। अष्टम अङ्क में माधव और मकरन्द के पराक्रम के वर्णन में 'उत्कीर्तन' है। षष्ठ अङ्क में कामन्दकी के द्वारा माधव और मालती को दिये गये उपदेश में 'उपदेश' नाट्यालङ्कार की व्यञ्जना हो रही है।

शिल्पकांग

मालतीमाधव प्रकरण में शिल्पकाङ्गों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। पञ्चम अङ्क में माधव के स्वगत कथन में 'आशंसा' की व्यञ्जना होती है।[96] 'प्रमथ्य क्रव्यादम्'[97] इत्यादि माधव के कथन में 'तर्क' की व्यञ्जना हो रही है। "लीनेव प्रतिबिम्बितेव ···[98] इत्यादि में प्रसक्ति की व्यञ्जना हो रही है। लवङ्गिका के साथ वार्तालाप में जहाँ मालती माधव के प्रति अपनी आसक्ति व्यक्त करती है, वहां 'उत्कण्ठा' नामक शिल्पकाङ्ग की व्यञ्जना हो रही है।[99] अष्टम अङ्क में मालती माधव के सान्निध्य में अपनी 'अवहित्था' व्यक्त करती है। 'हा प्रिये मालति' इत्यादि माधव की उक्तियों में 'विलाप'

की स्थिति है। मालती के वचनों से माधव के हृदय में 'आनन्द' आविर्भूत होता है[100] अत: 'प्रहर्ष' की अभिव्यक्ति हो रही है। कपालकुण्डला के द्वारा मालती का अपहरण और सौदामिनी के द्वारा उसके रक्षण में 'चमत्कार' नामक शिल्पकाङ्ग की व्यञ्जना हो रही है।

उत्तररामचरित

आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक इतिवृत्त

उत्तररामचरित महाकवि भलभूति का सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण नाटक है। इस नाटक की प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं– इस नाटक के प्रथम अङ्क में राम खिन्न सीता को आश्वस्त करते हैं। अष्टावक्र अयोध्या में पहुँचकर राम और सीता को गुरुजनों का सन्देश सुनाते हैं। लक्ष्मण के द्वारा चित्रदर्शन प्रसङ्ग प्रस्तुत किया जाता है। चित्रदर्शन से परिश्रान्त सीता राम के बाहु का आश्रय लेकर सो जाती हैं। इगी समय दुर्मुख आता है और वह राम को सीताविषयक अपवाद की सूचना देता है। राम सीता के परित्याग का निश्चय कर लेते हैं। राक्षसत्रास के समाचार को पाकर लवणासुर के वध के लिये वे शत्रुघ्न को आदेश देते हैं। अङ्क के अन्त में सीता को वन में छोड़ने के लिये लक्ष्मण उनके साथ भागीरथी की ओर प्रस्थान करते हैं। द्वितीय अङ्क में आत्रेयी और वासन्ती के द्वारा सीता के लव और कुश नामक पुत्रों की सूचना मिलती है। राम शम्बूक का वध कर उसे शाप से मुक्ति दिलाते हैं और अगस्त्य के आमन्त्रण से उनके आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। पूर्वपरिचित वनराजि को देखकर वे सीता की स्मृति से खिन्न हो जाते हैं। तृतीय अङ्क में पञ्चवटी के पूर्वपरिचित दृश्यों को देखकर राम सीता के वियोग से अत्यन्त व्यथित हो उठते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। छायासीता के स्पर्श से उन्हें चेतना प्राप्त होती है। राम की इस असह्य पीड़ा को देखकर सीता के मन में भी अत्यधिक कष्ट होता है। चतुर्थ अङ्क में जनक, अरुन्धती और कौशल्या की महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में लव से भेंट होती है। यद्यपि ये लोग लव को पहिचान नहीं पाते हैं तथापि इनके मन में उसके प्रति आकर्षण पैदा होता है। इसी समय अश्वमेघ के अश्व के आगमन की सूचना मिलती है। सैनिकों की वीरघोषणा से लव उत्तेजित हो जाता है। पञ्चम अङ्क में लव और चन्द्रकेतु का वीरोचित वार्तालाप होता है। दोनों ही वीर युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाते हैं और युद्ध के योग्य भूमि की ओर प्रस्थान करते हैं। षष्ठ अङ्क में राम के शुभागमन से युद्ध-विराम हो जाता है। चन्द्रकेतु अपने प्रियमित्र लव का राम से परिचय

करवाते हैं। क्रुद्ध कुश प्रवेश करता है। राम कुश और लव की आकृति में अपनी और सीता की छाया को देखकर विस्मित हो जाते हैं। चन्द्रकेतु और लव के युद्ध को रोकने के लिये वाल्मीकि आदि गुरुजनों के आगमन की सूचना पाकर उनसे भेंट करने के लिये कुश और लव के साथ राम वहाँ से प्रस्थान करते हैं। सप्तम अङ्क में राम महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित नाटक का अवलोकन करते हैं, जिसमें सीता निर्वासन के पश्चात् की घटनाओं का अभिनय होता है। अभिनय की समाप्ति पर महर्षि वाल्मीकि के द्वारा कुश और लव का वास्तविक परिचय दिया जाता है। इसी शुभ अवसर पर शत्रुघ्न भी लवणासुर का वध करके लौट आते हैं। इस प्रकार आनन्दमय वातावरण में नाटक की समाप्ति होती है।

उत्तररामचरित की कथावस्तु की समीक्षा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस नाटक में आधिकारिक कथावस्तु का प्राधान्य है। अतः प्रासङ्गिक कथाओं का विस्तार नहीं किया गया है। लवणासुर के उत्पात की प्रासङ्गिक कथा की सूचना मात्र प्रथम अङ्क के अन्त में दी गयी है और सप्तम अङ्क की समाप्ति पर केवल एक वाक्य के द्वारा ही शत्रुघ्नविजय की सूचना दे दी गयी है। शम्बूकवध की घटना के द्वारा कवि ने अत्यन्त चातुर्य के साथ राम को पञ्चवटी पहुँचाकर अपनी अद्भुत नाट्यकला के द्वारा प्रासंगिक कथा को आधिकारिक इतिवृत्त का सहायक बना दिया है। गुरुजनों को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्रित करने, लव और चन्द्रकेतु का युद्ध कराने और वाल्मीकि प्रणीत नाटक का अभिनय कराने में भी कवि का लक्ष्य आधिकारिक कथावस्तु ही प्रमुखतया रहा है। वस्तुतः ये समस्त प्रासङ्गिक कथायें आधिकारिक कथावस्तु को ही विकसित कर रही हैं। अतः कवि का उद्देश्य सहज में ही हृदयङ्गम किया जा सकता है।

नान्दी

उत्तररामचरित में द्वादशपदा नान्दी का प्रयोग हुआ है। इसमें कवि ने वाल्मीकि आदि पूर्ववर्ती कवियों की वाणी की वन्दना की है। सूर्यचन्द्र के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, अत यह शुद्धा नान्दी है। नान्दी की समाप्ति के पश्चात् 'अलमतिविस्तरेण' सूत्रधार के इस कथन से यह ध्वनित होता है कि कवि नाटकीय इतिवृत्त को सहृदयों के समक्ष शीघ्र ही प्रस्तुत कर देना चाहता हैं।

प्ररोचना

नान्दी पाठ के पश्चात् कवि यह सङ्केत करता है कि देवी सरस्वती उसकी वशवर्तिनी हैं। अतएव ऐसे कवि के द्वारा प्रस्तुत नाटक विशेष महत्त्व

रखता है। सूत्रधार के द्वारा ही कवि देश, काल एवं अपने वैदुष्य को प्रस्तुत कराता है जिससे सहृदय प्रेक्षक नाटक की ओर आकृष्ट हो सकें।

प्रस्तावना

उत्तररामचरित नाटक की प्रस्तावना नाटकीय दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व्यञ्जनायें प्रस्तुत करती है। इससे कवि को नाटकीय कथानक निर्मित करने के लिये अत्यन्त सहायता मिलती है। कतिपय विशेषतायें प्रस्तुत हैं–

१– राम के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने वाले अतिथियों को अपने घर लौटाकर कवि नाटकीय कथानक के लिये अभीष्ट वातावरण तैयार करता है।

२– ऋष्यश्रृंग के द्वादशवर्षीय यज्ञ में वशिष्ठ, अरुन्धती और राम की माताओं को सम्मिलित होने के लिये प्रेषित कर कवि उन समस्त गुरुजनों को राम के पास से हटा देता है, जो उन्हें सीतानिर्वासन के कठोर निर्णय से वर्जित कर सकते थे।

३– प्रस्तावना के इस कथन में कि "सीता कठोरगर्भा हैं" अनेक व्यञ्जकतायें हैं। यदि कदाचित् सीता कठोरगर्मा न होती तो ऋष्यश्रृंग के सत्र में गुरुजनों के साथ उन्हें भी जाना पड़ता। कठोरगर्भा सीता के निष्कासन को देखकर उनके प्रति दर्शकों की संवेदना तीव्र हो जाती है। सीता की इस अवस्था की स्मृति ही राम के व्यथित हृदय की वेदना को और अधिक बढ़ा देती है।

४– सीताविषयक लोकापवाद सर्वत्र फैल रहा है। राक्षसराज रावण के गृह में निवास उसका मूल है और अग्निशुद्धि का कोई निश्चय नहीं है। यही जनश्रुति सीता परित्याग का कारण बनती है।

५– यदि यह जनश्रुति महाराज तक पहुँच गयी तो अनर्थ होगा। इस कथन के द्वारा कवि सहृदयों को भावी घटना की कल्पना के लिए समुद्यत कर देता है।

६– "सर्वथा ऋषि और देवता कल्याण करेंगे" नट का यह कथन सूचित कर देता है कि यद्यपि सीता का निर्वासन होगा परन्तु उससे किसी भी प्रकार के अनिष्ट की आशंका नहीं करनी चाहिये। वाल्मीकि आदि ऋषि एवं भागीरथी आदि देवियाँ कल्याण करेंगी। यहाँ सूत्रधार और नट की उक्तियों में अङ्कमुख का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। आगामी अङ्कों में यह स्पष्ट हो जायेगा कि राम के द्वारा परित्यक्ता सीता की रक्षा के लिये भगवती भागीरथी और वसुन्धरा ने वियोग व्यथित राम को सान्त्वना देने

के लिए लोपामुद्रा, भागीरथी आदि ने तथा राम और सीता के पुर्नमिलन के लिए महर्षि वाल्मीकि अरुन्धती आदि ने कितने महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। यहीं कवि 'सर्वथा ऋषयो देवाश्च' नट के इस कथन के द्वारा नाटक के सुखान्त पर्यवसान की सूचना दे देता है।

७. प्रस्तावना में प्रस्तुत अन्तिम श्लोक भी नाट्यशिल्प एवं व्यंजना की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व रखता है। "स्नेह से अभिनन्दन करने के लिए आये हुये राजा जनक कई दिनों को आनन्दोत्सव में व्यतीत कर विदेह चले गये हैं। उनके चले जाने से सीता खिन्न हो गयी हैं और उन्हें समाश्वस्त करने के लिए राम न्यायालय से उठकर अन्तःपुर में गये हुये हैं।"[100] राज्याभिषेक के पश्चात् जनक का अयोध्या से विदेह के लिए प्रस्थान, पिता के वियोग में सीता का खिन्न होना और उन्हें सान्त्वना देने के लिये राम का अन्तःपुर में जाना, इन तीन स्वाभाविक क्रियाओं की सूचना के द्वारा कवि ने तीन मुख्य विषयों की ओर संकेत कर दिया है—१—सीता को इष्टजन का वियोग अत्यन्त असह्य है। इससे यह ध्वनित होता है कि भावी जीवन में सीता को अपने इष्टजन राम का वियोग अत्यधिक दुःखित करेगा। २—राम के राज्याभिषेक से प्राप्त होने वाले हर्षोल्लास के दिन अब व्यतीत हो चुके हैं, अब उनका दायित्व बढ़ गया है और उनके कन्धों पर प्रजापरिपालन का गुरुतर भार आ गया है। ३—राम सीता का अत्यधिक ध्यान रखते हैं, अतः वे न्यायालय से अन्तःपुर पहुँच जाते हैं। यहाँ यह भी अवधेय है कि राम धर्मासन को सीता से भी अधिक महत्त्व देते हैं। अतः वे न्यायालय को समाप्त कर ही सीता को सान्त्वना देने के लिये जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति ने प्रस्तावना का इतना स्वाभाविक एवं साभिप्राय प्रयोग किया है जो कि उनकी नाट्यकला को विधिवत् प्रकाशित कर रही है। यहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना का प्रयोग हुआ है।

अर्थोपक्षेपक

महाकवि भवभूति ने प्रथम अंक में सीधे अर्थोपक्षेपक का प्रयोग नहीं किया है परन्तु प्रस्तावना में ही नट और सूत्रधार के वार्तालाप के द्वारा विष्कम्भक जैसा कार्य कर दिया है। इसी अंक में प्रस्तुत चित्रदर्शन भी विष्कम्भक जैसा कार्य कर रहा है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में चूलिका का प्रयोग हुआ है। इसके पश्चात् कवि शुद्धविष्कम्भक का प्रयोग करता है। इस शुद्ध विष्कम्भक के द्वारा आत्रेयी और वनदेवता वासन्ती के वार्तालाप

के द्वारा इन तथ्यों की जानकारी होती है–१–कुश और लव नामक असाधारण मेधावी बालक, जिन्हें जन्म से ही जृम्भकास्त्र सिद्ध हैं, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में अध्ययन कर रहे हैं। उन्हें शैशवावस्था में कोई देवी वाल्मीकि के पास छोड़ गयी थीं। महर्षि वाल्मीकि ने ग्यारह वर्ष की आयु होने पर क्षात्रधर्म के अनुसार उनका उपनयन संस्कार कर उन्हें त्रयी विद्या में दीक्षित किया है। इस प्रसंग के द्वारा कुश लव का राम पुत्र होना ध्वनित होता है। २–ब्रह्मा के आदेश से महर्षि वाल्मीकि ने लौकिक छन्द में रामायण की रचना की है। ३–ऋष्यश्रृंग के यज्ञ के समाप्त हो जाने पर अरुन्धती और राजमातायें सीताशून्य अयोध्या में जाना नहीं चाहतीं, इसलिए वे महर्षि वसिष्ठ के साथ वाल्मीकि के आश्रम में निवास करने के लिए आयी हुयी हैं। ४–महाराज राम अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं जिसके लिये अश्व छोड़ दिया गया है और उसकी रक्षा के लिए सेना के साथ लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु को भेजा गया। ५–राम ने यज्ञ में सहधर्मचारिणी के रूप में स्वर्णनिर्मित सीता प्रतिकृति की स्थापना की है। ६–ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करने के लिये शूद्र तपस्वी शम्बूक के वध के लिये राम पुष्पक पर आरूढ होकर दण्डकारण्य की ओर आ रहे हैं।

इस शुद्धविष्कम्भक से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीता परित्याग के पश्चात् द्वादश वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में आये हुये बालकों को पहिचानने में सामाजिकों को कठिनाई नहीं होती, क्योंकि कवि प्रथम अंक के चित्रदर्शन में जृम्भकास्त्र प्रसंग को प्रस्तुत कर चुका है। इसी विष्कम्भक के द्वारा कवि ने महर्षि वाल्मीकि के द्वारा रामायण के प्रणयन, वसिष्ठ आदि का उनके आश्रम में आगमन, अश्वमेधीय अश्व का उत्सृजन आदि बीजों का वपन कर दिया है। स्वर्णनिर्मित सीताप्रतिकृति को प्रस्तुत कर कवि ने राम की सीताविषयक प्रीति को भी स्पष्ट कर दिया है। राम के दण्डकारण्य में प्रवेश को प्रतिपादित कर उनके मन में स्मृतिरूप में स्थित भावी सीतास्मृतिरूपी बीज का भी वपन कर दिया है। अंक के अन्त में प्रयुक्त अंकावतार चमत्कारपूर्ण है।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में शुद्धविष्कम्भक का प्रयोग हुआ है। इसमें तमसा और मुरला के द्वारा सूचना मिलती है कि प्रसववेदना को सहन करने में अक्षम सीता ने दुःखावेग से स्वयं को गंगाप्रवाह में डाल दिया और वहीं उन्होंने दो पुत्ररत्नों को जन्म दिया। भगवती वसुन्धरा सीता को रसातल में ले गईं और भगवती भागीरथी ने स्तन्यत्याग के पश्चात् दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ दिया। भगवती भागीरथी इस व्याज

से सीता को पंचवटी में ले जाती हैं कि आज कुश और लव की १२वीं वर्ष-गाँठ है, अतः वे स्वयं अपने हाथ से फूल चुनकर भगवान् सूर्य की पूजा करें। वे सीता को पंचवटी में रहने तक अदृश्य बना देती हैं और तमसा को उनके साथ रहने का आदेश देती हैं। इस विष्कम्भक के द्वारा कवि ने वृत्त कथा में कुश और लव के जन्म का रहस्य उद्घाटित कर दिया है और भावी कथा भाग में सीता को पंचवटी में लाने की योजना बना दी है। सीता के द्वारा परिपालित करिशावक पर किये गये आक्रमण की सूचना चूलिका के द्वारा दी गयी है। राम के द्वारा विमानराज को उतरने का आदेश भी चूलिका के द्वारा दिया गया है। इसी प्रकार जनस्थान के पूर्व परिचित भू-भागों को देखकर सीता की स्मृति से राम के व्याकुल होने की सूचना भी चूलिका के द्वारा दी गयी है।

चतुर्थ अंक में मिश्रविष्कम्भक के द्वारा दाण्डायन और सौधातकि के संवाद से यह सूचित होता है कि अरुन्धती और राजमाताओं के साथ महर्षि वसिष्ठ वाल्मीकि के आश्रम में आ गये हैं। सीता के दुर्भाग्यजनक समाचार को सुनकर राजा जनक वैखानस हो गये हैं और वे वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात् अपने मित्र वाल्मीकि से मिलने के लिए उनके आश्रम में आये हुए हैं। इस विष्कम्भक के द्वारा कवि ने यह सूचित कर दिया है कि वाल्मीकि के आश्रम में सभी गुरुजन उपस्थित हो गये हैं। पंचम अंक के प्रारम्भ में चूलिका के द्वारा चन्द्रकेतु के प्रवेश की सूचना दे दी गयी है। सुमन्त्र और चन्द्रकेतु के वार्तालाप के द्वारा लव और राम की सेना के युद्ध को वर्णित किया गया है। कवि का यह वर्णन विष्कम्भक का कार्य कर रहा है।

षष्ठ अंक के विष्कम्भक में कवि ने विद्याधर दम्पति के वार्तालाप के द्वारा लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध का वर्णन कर दिया है। अंक के अन्त में अरुन्धती, वसिष्ठ और राजमाताओं के आगमन की सूचना चूलिका के द्वारा दी जाती है। वहाँ यह भी बतलाया गया है कि राम की दशा को देखकर जनक मूर्च्छित हो गये हैं और वे चेतनता को प्राप्त कर मूर्च्छित राजमाताओं को आश्वस्त कर रहे हैं। सप्तम अंक में लक्ष्मण के कार्यव्यापार विष्कम्भक की व्यञ्जना कर रहे हैं। अंक के प्रारम्भ में लक्ष्मण बतलाते हैं कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने प्रभाव से समस्त प्रजाजनों तथा देवासुरों को बुला लिया है। लक्ष्मण ही वहाँ की व्यवस्था स्वयं करते हैं।

सन्धियाँ, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थायें एवं सन्ध्यङ्ग

मुखसन्धि

बीज और आरम्भ के योग से मुखसन्धि की व्यञ्जना होती है। मुख-

सन्धि की स्थिति नाटक के प्रथम अंक में है। महर्षि वसिष्ठ के सन्देश में[101] कवि बीज का वपन कर देता है तथा दुर्मुख के प्रति राम के आदेश "ब्रूहि लक्ष्मणं एष ते नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति"[102] में आरम्भ की स्थिति है। कवि ने मुखसन्धि के इन सन्ध्यंगों का प्रयोग किया है–'सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति' में 'उपक्षेप' की व्यञ्जना हो रही है। 'केवलं वीरप्रसवा भूयाः' महर्षि वसिष्ठ के आशीर्वाद में 'परिकर' की स्थिति है। वसिष्ठ के द्वारा सीता के गुणकथन में 'विलोभन' की व्यञ्जना हो रही है। सीता के प्रति ऋष्यश्रृंग के द्वारा कहे गये सन्देश में 'युक्ति' की व्यञ्जना हुयी है। जहाँ सीता के वचन और स्पर्श से राम आनन्द की अनुभूति करते हैं[103] वहाँ 'प्राप्ति' की अभिव्यक्ति हुयी है। 'अद्वैतं सुखदुःखयो' [104] इत्यादि राम के कथन में 'समाधान' की स्थिति है। दुर्मुख के आगमन से पूर्व सुख की और उसके द्वारा कहे गये सन्देश को सुनकर दुःख की अभिव्यक्ति होने पर उस प्रसंग में 'विधान' की अभिव्यक्ति हुयी है। 'आः कथमद्यापि राक्षसत्रासः' में 'परिभावना' की स्थिति है। 'हा, हा धिक् परगृहवास'[105]–इत्यादि राम के कथन में 'उद्भेद' की स्थिति है। दुर्मुख और सीता के वार्तालाप मे 'करण' की व्यञ्जना हो रही है।

प्रतिमुखसन्धि

बिन्दु और यत्न के संयोग से प्रतिमुख सन्धि की अभिव्यक्ति होती है। उत्तररामचरित के द्वितीय और तृतीय अंकों में प्रतिमुख सन्धि की स्थिति है। द्वितीय अंक में शम्बूक वृत्तान्त के द्वारा मूलकथा में विच्छेद हो जाता है। राम के द्वारा प्रस्रवण गिरि, गोदावरी नदी, जनस्थान पंचवटी आदि का अवलोकन कथानक का बिन्दु है, जो कि मूलकथा के सन्धान का हेतु वनता है। तृतीय अंक में लोपामुद्रा, भागीरथी, वासन्ती और तमसा के कार्य प्रयत्न हैं। इस प्रकार इन अंकों में बिन्दु और प्रयत्न के योग से प्रतिमुख सन्धि की स्थिति रहती है। इसके अंगों का प्रयोग कवि ने इस प्रकार किया है–'आकृष्टकृपाणपाणिः'[106] इत्यादि आत्रेयी के कथन में 'परिसर्प' की व्यञ्जना हो रही है। 'रे हस्तदक्षिण'[107] इत्यादि में 'विधूत' की स्थिति है। 'कृतं रामसदृशं कर्म' में 'शम' की व्यञ्जना हो रही है। वासन्ती और आत्रेयी के कथनों में 'प्रगमन' की व्यञ्जना हो रही है। तृतीय अंक में 'अयि वत्से एवमात्मा स्तूयते' सीता के प्रति तमसा के इस कथन में 'नर्म' की स्थिति है। तमसा के द्वारा सीता की मानसिक स्थिति के विश्लेषण में[108] 'पुष्प' की व्यंजना हो रही है। राम के प्रति वासन्ती के कठोर सम्भाषण में[109] 'वज्र' की अभिव्यक्ति हुयी है। अयोध्यावासियों के

प्रति राम के विनम्रतापूर्ण कथन में[110] 'पर्युपासन' की स्थिति है। सीता और राम के प्रति तमसा और वासन्ती की सहोक्ति में[111] 'वर्णसंहार' की व्यंजना हो रही है।

गर्भसन्धि

प्राप्त्याशा और पताका के संयोग से गर्भसन्धि की निष्पत्ति होती है। चतुर्थ अंक के प्रारम्भ से पञ्चम अंक के २८वें पद्य तक गर्भसन्धि की स्थिति है। लव के अभिज्ञान के विषय में गुरुजनों की मानसिकता द्विविधा में रहती है जिसमें उपाय और अपाय का सम्मिश्रण है। सेना और लव के युद्धप्रसंग में भी उपाय और अपाय की आशंका रहने से प्राप्त्याशा की स्थिति रहती है। चन्द्रकेतु और गुरुजनों के साथ लव के परिचय में पताका की स्थिति है इस प्रकार गर्भसन्धि की योजना होती है। कवि ने इसके अङ्गों का इस प्रकार प्रयोग किया है—चतुर्थ अंक में जहाँ लव को पहिचानते हुए भी जनक के द्वारा परिचय पूछे जाने पर अरुन्धती के इस उत्तर में "हम लोग तो आज ही आये हैं" 'अभूताहरण' की व्यञ्जना हुयी है। "वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च[112]' में 'मार्ग' की व्यञ्जना हो रही है। कौशल्या के कथनों में 'रूप' की स्थिति है। 'शिशुर्वा शिष्या वा ··[113]' इत्यादि अरुन्धती के कथन में 'उदाहृत' की व्यञ्जना हो रही है। पञ्चम अंक में जहाँ दोनों कुमार एक दूसरे को देख कर अपनी हार्दिक भावना को व्यक्त करते हैं, वहाँ 'क्रम' की स्थिति है। लव के प्रति चन्द्रकेतु के सामपूर्ण कथन में 'संग्रह' की व्यञ्जना हो रही है। लव के द्वारा जृम्भकास्त्र के प्रयोग में 'अधिबल' की स्थिति है। जनक के क्रोधपूर्ण कथनों में 'तोटक' की व्यञ्जना हो रही है। सैनिकों के देदीप्यमान शस्त्रों को देखकर वटुओं के मन में शंका और त्रास होती है, अतः वहाँ 'सम्भ्रम' की स्थिति है।

अवमर्श सन्धि

प्रकरी और नियताप्ति के योग से अवमर्श संधि की व्यञ्जना होती है। पञ्चम अंक में "क्या तुम्हें हमारे तात के प्रताप का उत्कर्ष भी अच्छा नहीं लगता ?" लवके प्रति चन्द्रकेतु के इस प्रश्न से षष्ठ अंक पर्यन्त अवमर्श संधि की स्थिति है। लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वृत्तांत प्रकरी है। कुश और लव का परिचय नियताप्ति की स्थिति निर्मित करता है। इस प्रकार अवमर्श संधि की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कवि ने संध्यंगों का प्रयोग इस प्रकार किया है। जहाँ लव राक्षसी वाणी के दोषों का कथन करता है, वहाँ 'अपवाद' की अभिव्यक्ति हुयी है। लव और चंद्रकेतु के कोपपूर्ण कथनों में

'सम्फेट' की व्यञ्जना हुयी है। चन्द्रकेतु के '...अतिनाम प्रगल्भसे' इस कथन में 'तर्जन' की स्थिति है। 'अयि मय्येव भृकुटीधरः संवृत्तः' लव के इस कथन में 'उद्वेजन' लव और चन्द्रकेतु के युद्ध में 'विद्रव' और लव के द्वारा राम की आलोचना में[114] 'द्रव' की व्यञ्जना हो रही है। षष्ठ अंक में 'अहो पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः' इत्यादि लव के कथन में 'प्रसंग' की व्यञ्जना हो रही है। 'विरोधो विश्रान्तः[115]' लव के इस कथन में शक्ति की स्थिति है। कुश द्वारा की गयी घोषणा में[116] 'विचलन' उसके अवज्ञापूर्ण कथनों में 'छल' और उसी के द्वारा अपने उत्कर्ष कथन में[117] 'व्यवसाय' की व्यञ्जना हो रही है। कुश और लव को लक्ष्य कर राम के स्वगत कथन में[118] 'प्ररोचना' की अभिव्यक्ति हो रही है। 'वसिष्ठो वाल्मीकिः....' इत्यापि नेपथ्य कथन में 'आदान' की स्थिति है।

निर्वहणसन्धि

कार्य और फलागम के योग से निर्वहणसन्धि की निष्पत्ति होती है। नाटक के सप्तम अंक के प्रारम्भ से अन्त तक निर्वहणसन्धि की स्थिति है। महर्षि वाल्मीकि गर्भनाटक के संयोजन से और अरुन्धती सीताचरित्र की पवित्रता के अनेक प्रमाणों के द्वारा कार्य को सम्पन्न करते हैं। कुश और लव के सहित सीता से राम का पुनर्मिलन फलागम है। इस प्रकार निर्वहणसन्धि की अभिव्यक्ति होती है। कवि ने इसके अंगों का प्रयोग इस प्रकार किया है– गर्भनाटक की प्रस्तावना की समाप्ति पर सूत्रधार के कथन में[119] 'सन्धि' की स्थिति है। अंक के प्रारम्भ में लक्ष्मण की प्रथम उक्ति में[120] 'ग्रथन' की स्थिति है। वसुन्धरा, भागीरथी और सीता के वार्तालाप में[121] 'परिभाषण' है। भगवती वसुन्धरा के कोपोपशम के लिए कहे गये भागीरथी के वचनों में[122] 'प्रसाद' की व्यञ्जना हो रही है। 'आर्य सत्यं विज्ञापयामि[123]'– इत्यादि लक्ष्मण के कथन में 'निर्णय' की स्थिति है। 'भोः किमेतत् कथं देवी ...' इत्यादि राम के कथन में 'आनन्द' और 'जानात्यार्यपुत्रः' सीता के इस कथन में 'समय' की व्यञ्जना हो रही है। 'नियोजय यथाधर्मम्'[124] इत्यादि अरुन्धती के आदेश में 'कृति' की स्थिति है। सीता के प्रति जृम्भकास्त्रों के कथन में 'पूर्ववाक्य' है। राम लक्ष्मण के 'ननु वत्सौ पुण्यैः प्राप्तौ स्थः' इस कथन में 'उपगूहन' की व्यञ्जना हो रही है। अंक की समाप्ति पर सीता के कथन में[125] 'काव्यसंहार' और राम के कथन में[126] 'प्रशस्ति' की व्यञ्जना हो रही है।

सन्ध्यन्तर

महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक में सन्ध्यन्तरों का समुचित

प्रयोग किया है। नाटक के प्रथम अङ्क में खिन्न हुई सीता के प्रति राम की उक्ति में 'साम' की व्यञ्जना हो रही है। चतुर्थ अङ्क में अपरिचित गुरुजनों में श्रेष्ठता का क्रम निर्धारित न कर सकने पर "यह लव आप लोगों को शिर झुकाकर प्रणाम कर रहा है" इस कथन में 'प्रत्युत्पन्नमतित्व' की अभिव्यक्ति हुई है। चतुर्थ अंक में लव की और षष्ठ अंक में कुश की उक्तियों में 'ओज' की व्यंजना हो रही है। चतुर्थ अंक में जनक और अरुन्धती, पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु, षष्ठ अंक में कुश और सप्तम अङ्क में वसुन्धरा की उक्तियों में 'क्रोध' की व्यञ्जना हुई है। युद्ध के प्रसंग में लव के व्यवहार में 'साहस' की अभिव्यक्ति हुई है। जिस समय चन्द्रकेतु को सुमन्त्र लव के साथ युद्ध करने के लिए आज्ञा देते हैं उस समय उनके मन में 'भय' की स्थिति रहती है। प्रथम अङ्क में राम दोहदपूर्ति के व्याज से सीता का परित्याग करते हैं, अतः वहाँ 'माया' की स्थिति है। तृतीय अङ्क में 'इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां तामेव' कहते-कहते वासन्ती का सहसा रुक जाना 'संवरण' को द्योतित कर रहा है। षष्ठ अङ्क में कुश-लव को सीतापुत्र मानने की कल्पना में राम ने 'हेत्वधारण' का प्रयोग किया है।

नाट्यलक्षण

उत्तररामचरित में कवि ने नाट्यलक्षणों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क में—

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम्।
तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥[127]

राम के इस कथन में 'हेतु' की व्यञ्जना हो रही है। राम और सीता के प्रणयालाप में 'शोभा' की व्यञ्जना हो रही है। द्वितीय अङ्क के 'वितरति गुरुः[128]' इत्यादि में 'उदाहरण' की स्थिति है। इसी अंक में महर्षि अगस्त्य की इच्छा से उनके आश्रम में प्रस्थान 'दाक्षिण्य' का उदाहरण है। तृतीय अंक में 'दिष्ट्या अपरिहीनधर्मः खलु स राजा' सीता के इस कथम में 'भूषण' की अभिव्यक्ति हुई है। 'त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्'[129] वासन्ती के इस कथन में 'पदोच्चय' की स्थिति है। सीता के करकमल के स्पर्श से राम के द्वारा सीता की उपस्थिति के अनुमान में 'प्राप्ति' नामक नाट्यलक्षण है। तमसा के द्वारा राम के प्रलापों की उपयोगिता सिद्ध करने में 'तुल्यतर्क' का प्रयोग हुआ है। चतुर्थ अङ्क में 'मया पुनर्ज्ञातं व्याघ्रो वा वृको वैष इति' इत्यादि सौधातकि के इस कथन में 'भूषण' की व्यञ्जना हो रही है। इसी अङ्क में सीता की पवित्रता के सम्बन्ध में जनक और अरुन्धती के कथन

'अक्षरसंघात' के उदाहरण हैं। जनक और कौशल्या के द्वारा लव से पूछे गये प्रश्नों में 'पृच्छा' की स्थिति है। वटुओं के द्वारा अश्वमेधीय अश्व के वर्णन में दृष्ट की स्थिति है। पंचम अङ्क में 'मनोरथस्य यद् बीजं[130]'...इत्यादि में 'निदर्शन' की अभिव्यक्ति हो रही है। इसी अङ्क में लव और चन्द्रकेतु के मिलने के आनन्द का वर्णन करते-करते सहसा, विषयान्तर कर युद्ध के उपस्थित कर देने से 'भ्रंश' की स्थिति हो जाती है। जहाँ लव के द्वारा राम की आलोचना की जाती है वहाँ 'गर्हण' की व्यञ्जना होती है। 'उत्पत्तिपरिपूतायाः...'[131] राम के इस कथन में 'प्रसिद्धि' की व्यञ्जना हो रही है। षष्ठ अङ्क में 'न तेजस्तेजस्वी'[132] राम के इस कथन में 'दृष्टान्त' की अभिव्यक्ति हुई है। कुश के पौरुषाधिक्य के वर्णन में 'अतिशय' की स्थिति है। लव और कुश के गुणों के वर्णन में 'गुणकीर्तन' की व्यञ्जना हो रही है। 'शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरीयम्'[133] इत्यादि राम के कथन में 'विशेष' का प्रयोग हुआ है। सप्तम अंक में 'आर्य सत्यं विज्ञापयामि' इत्यादि कथन में 'प्रयोग' की स्थिति है। 'न प्रमाणीकृतः पाणिः[134]' इत्यादि राम को लक्ष्य कर वसुन्धरा के इस कथन में 'गुणातिपात' की व्यञ्जना हो रही है।

नाट्यालंकार

उत्तररामचरित में नाट्यालंकारों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। प्रथम अङ्क में 'सतां केनापि कार्येण[135] इत्यादि में 'उपपत्ति' की व्यञ्जना हो रही है। दोहदपूर्ति के व्याज से सीता को गंगातट पर भेजने में 'कपट' की व्यंजना होती है। राम के आदेश से लक्ष्मण के द्वारा सीता का वन में परित्याग 'अनुवृत्ति' का उदाहरण है। लवणासुर से पीडित ऋषियों की रक्षा के लिए राम से की गई प्रार्थना में 'याच्ञा' की स्थिति है। 'स्नेहं दयां च सौख्यं च'[136] इत्यादि में 'अध्यवसाय' की स्थिति है। कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ के सन्देश में 'उल्लेख' की व्यञ्जना हो रही है। राम के प्रति 'युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्याः[137] इत्यादि महर्षि वसिष्ठ के सन्देश में 'उपदेश' की व्यञ्जना हो रही है। द्वितीय अङ्क में राम के द्वारा शूद्र तपस्वी के वध में 'नीति' का प्रयोग हुआ है। तृतीय अङ्क में राम और सीता को लक्ष्य कर वासन्ती और तमसा की अन्तिम उक्ति में 'आशीः' की व्यञ्जना हुई है। करिशावक पर आक्रमण के समय उसकी रक्षा के लिए सीता के द्वारा राम को पुकारे जाने पर 'आक्रन्द' की स्थिति है। राम के प्रति वासन्ती के उपालम्भ में 'परिवाद' की व्यञ्जना हो रही है। 'त्वमेव ननु कल्याणि[138]... इत्यादि में 'निवेदन' की स्थिति है। 'अस्मिन्नेवलतागृहे'[139]...इत्यादि वासन्ती के इस कथन में 'उत्कीर्तन' की व्यञ्जना हो रही है। गुरुजनों के साथ लव के प्रश्नोत्तर पूर्ण

वार्तालाप में 'आख्यान' की स्थिति है। 'तत्किमक्षत्रिया पृथ्वी यदेवमुद्घोष्यते' ... इत्यादि में 'अक्षमा' की व्यञ्जना हो रही है। 'ज्याजिह्वया वलयितोत्कट-कोटिदंष्ट्रं[140]' इत्यादि में 'क्षोभ' की स्थिति है। पंचम अङ्क में राम की सेना के साथ लव के युद्ध प्रसंग में 'अभिमान' की व्यञ्जना हो रही है। षष्ठ अङ्क में नेपथ्य में जहाँ कुश अपने दृढ़ निश्चय की घोषणा करता है, वहाँ 'युक्ति' की स्थिति है। 'मृष्यन्त्विदानीं लवस्य बालिशतां तातपादाः'...लव के इस कथन में 'परिहार' की स्थिति है। प्रथम, तृतीय और षष्ठ अङ्कों में अनेक स्थानों पर राम में प्रहर्ष की स्थिति पायी जाती है। सप्तम अङ्क के गर्भाङ्क की प्रस्तावना में सीता के कथन में आक्रन्द की व्यञ्जना प्राप्त होती है।

शिल्पकांग

उत्तररामचरित में महाकवि भवभूति ने औचित्य को ध्यान में रखकर शिल्पकाङ्गों का विधिवत् प्रयोग किया है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। नाटक के तृतीय अङ्क में नेपथ्य के द्वारा राम के गम्भीर स्वर को सुनकर सीता के हृदय में उन्हें देखने की उत्कण्ठा होती है, अतः यहाँ 'आशंसा' की स्थिति है। इसी अङ्क में 'अवशेनैवात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया' इत्यादि कथन में सीता की 'अवहित्था' अभिव्यक्त हो रही है। विलाप, आश्वासन और उच्छ्वास के अनेक उद्धरण तृतीय अङ्क में ही प्राप्त होते हैं। सीता और राम के अन्योन्य अनुराग में 'प्रसक्ति' की व्यञ्जना हो रही है। राम की वियोगवेदना की अभिव्यक्ति में स्थान-स्थान पर 'ताप' और 'उद्वेग' प्रकट हो रहे हैं। 'अथवा कुतः प्रियतमा नूनं संकल्पा-भ्यासपाटवोपादान एष रामभद्रस्य भ्रमः' इत्यादि राम के कथन में 'सन्देह' की व्यञ्जना हो रही है। लव और चन्द्रकेतु के परिचय में 'ग्रथन' की अभि-व्यक्ति हुई है। इन दोनों के युद्ध में 'सम्फेट' की व्यञ्जना हुई है। इन्हीं दोनों के द्वारा प्रयुक्त आश्चर्यजनक अस्त्रों में 'चमत्कार' की व्यञ्जना हो रही है। लव के द्वारा उचित समय पर जृम्भकास्त्रों के प्रयोग में 'वैशारद्य' की स्थिति है। षष्ठ अंक में लव के द्वारा राम के अश्रुपात का हेतु पूछे जाने पर कुश के उत्तर में 'तर्क' की स्थिति है। 'आदित्यैर्यदि विग्रहो नृप-तिभिः[141]...इत्यादि कुश के कथन में उत्कण्ठा की व्यञ्जना हो रही है। अरुन्धती के 'जगत्पते रामचन्द्र ! नियोजय यथाधर्मम्[142]....' इत्यादि कथन में 'प्रबोधन' की व्यञ्जना हो रही है।

(ख) कथोपकथन या संवाद की व्यञ्जकता

संवाद या कथोपकथन रूपकों का रुचिर रूप है। रूपकों में अभिनेयता, रमणीयता एवं स्वाभाविकता उत्पन्न करने के लिए कथानक को रोचक तथा

गतिशील बनाने के लिए, पात्रों को सजीव एवं प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने के लिए तथा हृद्य एवं मार्मिक अनुभूति के चित्रण में रमणीक शिल्पविधान के लिए संवाद या कथोपकथन का कलात्मक संयोजन होता है। अतएव उत्कृष्ट रूपक की कसौटी स्वाभाविक एवं मनोहर संवाद योजना होती है। विभिन्न पात्रों द्वारा प्रस्तुत ध्वनिकाव्य रूपकों में स्वाभाविक रूप में निखरता है।

महाकवि भवभूति के रूपकों की संवादयोजना विचित्र रसमाधुरी की सृष्टि करती है। प्रभावी संवादसंयोजना रसप्रसार में प्रायः अभिवृद्धि कर रही है। यहाँ कतिपय महत्त्वपूर्ण संवादों की व्यञ्जकता प्रस्तुत की जा रही है।

महावीरचरित नाटक के तृतीय अंक में परशुराम के आचरण से क्षुब्ध शतानन्द कहते हैं– आः! किसका सामर्थ्य है कि हमारे यजमान राजर्षि जनक की छाया भी छू सके, जामाता राम को तो छू सकना दूर रहे। उनके इस कथन पर विश्वामित्र कहते हैं– साधु गौतम वत्स! साधु। तुम जैसे पुरोहित से राजा जनक कृतकृत्य हैं। उसके राष्ट्र में न कोई पीड़ा होती है, न उस पर कोई आपत्ति आती है, न वह जीर्ण होने पाता है जिसका तुम्हारे जैसा विद्वान् ब्राह्मण राष्ट्ररक्षक पुरोहित होता है। क्रुद्ध परशुराम कहते हैं– गौतम! तुम्हारी तरह कितने राजपुरोहितों ने अपने तेज प्रकट किये थे, किन्तु प्राकृत तेज का अप्राकृत तेज में शमन हो जाता है। शतानन्द क्रोधपूर्वक उत्तर देते हैं-- अरे बैल! पुरुषाधम! निरपराधक्षत्रियकुलकदन! महापातकी! अशिष्ट! विकृतवेष! घृणित कर्म करने वाला! पाषण्डी! काण्डीर! आयुधोपजीवी! तुम इस क्षेत्र में धृष्टता क्यों कर रहे हो? क्यों रे? तू भी ब्राह्मण ही है? अहा ब्राह्मण का आचार कैसा है? माता का शिर काट लिया, गर्भस्थ प्राणियों की नृशंस हत्या और यज्ञप्रवृत्त राजवध तो ब्रह्महत्या सदृश है। परशुराम– आः! स्वस्तिवाचन करने वाले दुष्ट! सामन्तों के पुरोहित! अहल्या के पुत्र तुम्हारे लिये भी मैं आयुधजीवी हूँ। शतानन्द– दुष्ट! दुर्मुख! भृगुकुलकलंक! राजा जनक तथा ये गुरुजन अपनी महत्ता के कारण क्षमाशील हैं, अतः वे क्षमा किया करें, मैं शतानन्द अब क्षमा नहीं कर सकता।[148]

इस संवाद में शतानन्द की कर्तव्यनिष्ठा एवं राजभक्ति की सुन्दर व्यञ्जना हो रही है। साथ ही विश्वामित्र के समुचित मूल्यांकन एवं परशुराम के प्रचण्ड संरम्भ की भी मार्मिक व्यञ्जना हो रही है।

पञ्चम अंक में वाली और राम एक दूसरे को लक्ष्य कर कहते हैं-- तुम्हारे साथ युद्ध करना प्रशंसनीय है परन्तु अब तुम्हारे मिट जाने से पृथिवी

वीरशून्या हो जायेगी ।[144]

यहाँ राम और वाली का वीरपुरुषोचित उत्साह, सदाशयता एवं धीरोदात्तता अभिव्यञ्जित हो रही है ।

मालतीमाधव प्रकरण के पञ्चम अंक में कामन्दकी कहती है– वत्स ! माधव ! माधव उत्तर देते हैं--आज्ञा दें । कामन्दकी कहती है–इस (मालती) को स्वीकार करो । माधव--स्वीकार करता हूँ । कामन्दकी–वत्स माधव ! वत्से मालति ! माधव– आज्ञा करें । मालती–भगवती आज्ञा दें । कामन्दकी–स्त्रियों का पति और पुरुष की धर्मपत्नी, प्रियतम, मित्र अथवा सम्पूर्ण बन्धु-समूह, सम्पूर्ण अभिलाष के विषय और निधि अथवा जीवन ही है–यह परस्पर में वात्सल्यभाजन तुम दोनों को ज्ञात हो ।[145]

यहाँ इस संवाद में कामन्दकी के वात्सल्य एवम् उदात्तता की तथा माधव और मालती की गुरुजनभक्ति एवं सदाशयता की व्यञ्जना हो रही है ।

माधव और अघोरघण्ट एक-दूसरे को लक्ष्य कर कहते हैं–आः ! रे रे पापिजन ! कठोर अस्थिग्रन्थियों में सम्बन्ध होने से 'घणत्' शब्द से शब्दायमान तीक्ष्ण नसों के काटने से कुछ समय तक वेग की विश्रान्ति से युक्त, कीचड़ों के सदृश मांसखण्डों में प्रतिबन्धरहित होकर विचरण करता हुआ मेरा खड्ग तत्क्षण तुम्हारे प्रत्येक अङ्ग को टुकड़ा-टुकड़ा कर दिशाओं में फेंक दे ।[146]

यहाँ माधव और अघोरघण्ट के गर्व, शौर्य और उत्साह की व्यञ्जना हो रही है ।

उत्तररामचरित के पञ्चम अंक में जब लव को पदाति देखकर चन्द्रकेतु अपने रथ का परित्याग करते हैं । तो लव कहता है–आप रथ पर स्थित ही अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं । अधिक सम्मान करने की आवश्यकता नहीं । चन्द्रकेतु कहते हैं–तो आप भी दूसरे रथ को सुशोभित करें । लव सुमन्त्र से कहते हैं--आर्य राजकुमार को रथ पर चढ़ाइये । सुमन्त्र लव को उत्तर देते हैं–आप भी वात्सल्यभाजन चन्द्रकेतु के वचन का अनुसरण करें । जिस पर लव संतुलित उत्तर देते हैं-- अपने साधनों के प्रयोग में क्या विचार ? परन्तु हम अरण्यवासियों को रथ में चलने का अभ्यास कहाँ ? लव के उत्तर से प्रभावित सुमन्त्र कहते हैं–वत्स ! तुम दर्प और विनय के आचार को जानते हो ! इस प्रकार के तुम्हें यदि इक्ष्वाकुवंशीय राजा राम देखें तो उनका हृदय स्नेह से पिघल जाये । लव कहता है-- चन्द्रकेतो ! वे राजर्षि राम सज्जन सुने जाते हैं । (लज्जित की तरह होकर) यद्यपि दैत्यों के शत्रु रामचन्द्र में हम लोग भी प्रीति करने वाले हैं । कौन पुरुष गुणों के कारण उन राजा को

अधिक आदर नहीं करता है ? तथापि अश्वरक्षकों की उस उक्ति ने समस्त क्षत्रियों के तिरस्कार से क्रूरता के कारण मेरे क्रोध को उत्पन्न कर दिया।[147]

यहाँ लव और चन्द्रकेतु का सौजन्य, सदाशयता, गाम्भीर्य, औदार्य एवम् उत्साह की अभिव्यञ्जना हो रही है। सुमन्त्र के कथन से वात्सल्य, स्नेह एवम् औचित्य की अभिव्यक्ति हो रही है। लव की वीरोक्ति उसके वीरचरित्र की व्यञ्जना करती है।

लव और चन्द्रकेतु दोनों कुमार एक-दूसरे को लक्ष्य कर कहते हैं—सूक्ष्म और चिक्कण राजकीय वस्त्र के सदृश सुन्दर इस शरीर पर बाणों को किस प्रकार से छोड़ूँ ? जिसको पा लेने पर आलिङ्गन की इच्छा से मेरा अङ्ग रोमाञ्चित हो रहा है।[148]

यहाँ दोनों कुमारों के इस कथन से उनकी गुणग्राहकता, राजकुमारोचित गुणवत्ता, सदाशयता एवम् उदात्तता अभिव्यञ्जित हो रही है।

राम सीता को लक्ष्य कर कहते हैं—क्या प्रियभाषिणी मेरे वक्षःस्थल पर ही सो गयी। (देखकर स्नेहपूर्वक) यह सीता घर में लक्ष्मी है, यह नेत्रों में अमृतशलाका है। इसका यह स्पर्श शरीर के ऊपर गाढ़ा चन्दन का रस है और इसका यह बाहु गले पर शीतल और कोमल मुक्ताहार है। इसकी क्या वस्तु प्रियतर नहीं है ? परन्तु इसका वियोग तो परम असह्य है। राम के इतना कहने पर ही प्रतीहारी प्रवेशकर—महाराज ! उपस्थित हैं।[149]

यहाँ राम के इस कथन से उनकी सीताविषयक प्रगाढ़प्रीति अभिव्यंजित हो रही है। राम को सीता का वियोग परम असह्य है। अतएव वे कहते हैं—यदि परम असह्य है तो वह सीता का विरह। उसी समय प्रतीहारी का यह कथन "महाराज उपस्थित हैं।" यहाँ प्रतीहारी का यह कथन वस्तुतः उपस्थित हुए दुर्मुख के लिये है। परन्तु कवि ने उसे ऐसे प्रासंगिक रूप में ढाला है जिससे यह ध्वनित होता है कि जो सीतावियोग राम को परम असह्य है, वही उपस्थित हो गया है अर्थात् भविष्य में दुर्मुख के सन्देशश्रवण के पश्चात् राम को प्रियतमा सीता का परित्याग करना पड़ेगा।

वासन्ती राम से कहती है—अरे निष्ठुर ! तुम्हें यश प्रिय है परन्तु इससे अधिक भयङ्कर अपयश क्या होगा ? मृगनयनी सीता का वन में क्या हुआ ? हे नाथ ! कहिये आप क्या विचार करते हैं ? खेद है।[150]

यहाँ वासन्ती के इस कथन से उसका राम के प्रति आक्षेप, क्षोभ एवं विषाद की मार्मिक व्यञ्जना हो रही है।

प्रथम अंक के प्रारम्भ में कञ्चुकी प्रवेश कर पूर्वाभ्यासवश महाराज राम को 'रामभद्र' के द्वारा सम्बोधित करता है। परन्तु 'रामभद्र' इतना

आधा ही कहने पर आशंका के साथ पुनः 'महाराज' कहता है। उसके उक्त कथन पर राम मुस्कराकर कहते हैं–आर्य पूज्य पिता के सेवक आपका मेरे लिए 'रामभद्र' शब्द से व्यवहार करना ही शोभा देता है। अतः अभ्यास के अनुसार ही कहिये।[151]

यहाँ राम के उपर्युक्त कथन से उनकी उदारता एवं धीरोदात्तता ध्वनित हो रही है।

(ग) छन्दों की व्यञ्जकता

छन्दोयोजना का काव्यशिल्प में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनोरम छन्दों के द्वारा कवि वर्ण्यविषय को ललित रूप में प्रस्तुत करता है जिसका मानव अन्तस् पर सद्यः प्रभाव पड़ता है। छन्दों की ललित लय विषय की व्यञ्जकता को पूर्ण विकसित करने, उभारने तथा प्रभावी बनाने में सक्षम है। यही कारण है कि संस्कृतकाव्यशास्त्र में छन्दों की प्रकृति, स्वरूप एवं व्यञ्जकता पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस शाश्वत सत्य को उद्घाटित किया है कि अमुक छन्द अमुक रस अथवा भाव या इतिवृत्त की व्यञ्जना के लिये सक्षम है। उनका कथन है कि काव्य में रस तथा वर्ण्यविषय के अनुरूप छन्दों का विचारपूर्वक विनियोग करना चाहिये।[152]

अनुष्टुप्–सर्ग या अंक के प्रारम्भ में, कथाविस्तार के संग्रह में और उपदेश या वृत्तान्त कथन में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग प्रशस्य होता है।[153]

महाकवि भवभूति ने अपने रूपकों में मनोरम रसव्यञ्जना के लिये यथावसर अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है। महावीरचरित के प्रारम्भ में कवि अनुष्टुप् छन्द के द्वारा परब्रह्म को प्रणाम करता है।[154] इसी अंक के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्लोकों के द्वारा कवि नाटक का परिचय, प्रशंसा, कविप्रशस्ति आदि विषयों का निरूपण करता है।[155] इसी अंक में कवि उक्त छन्द के द्वारा राम, लक्ष्मण, सीता, उर्मिला का वर्णन करता है।[156] विश्वामित्र शतानन्द से कहते हैं–'उसके राष्ट्र में न कोई पीडा होती है, न उस पर कोई आपत्ति आती है और न वह जीर्ण होने पाता है जिसमें तुम्हारे जैसा विद्वान् ब्राह्मण राष्ट्ररक्षक पुरोहित होता है।[157]

मालतीमाधव में कामन्दकी मालती और माधव के प्रणयप्रवाद को अनुष्टुप् छन्द के द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत करती है–वात्सल्यभाजन मालती और माधव के प्रणय का प्रवाद तो सब लोगों में फैल गया है, जिससे राजा और नन्दन को प्रतारित करना चाहिये। इस प्रकार से हम लोगों का कल्याण होगा।[158]

भयानक अघोरघण्ट को छोड़कर दूसरे से यह मालतीहरणरूप कर्म नहीं हुआ। करालादेवी को बलिदानरूप उपहार से भिन्न इसका फल भी नहीं जाना जाता है।[159]

यहाँ अनुष्टुप् छन्द के द्वारा वृत्तान्त की गम्भीरता ध्वनित हो रही है।

उत्तररामचरित में राम भगवान् मैत्रावरुणि की आज्ञा को स्वीकार करते हुए कहते हैं–प्रजा के अनुरञ्जन के लिए स्नेह, दया, सुख अथवा सीता को भी छोड़ते हुए मुझे दुःख नहीं है।[160]

सीता की पवित्रता को प्रतिपादित करते हुए राम कहते हैं–जन्म से ही पवित्र इन सीता की पवित्रता के लिये अन्य पदार्थों की क्या आवश्यकता ? तीर्थ, जल और अग्नि दूसरे पदार्थों से पवित्रता नहीं प्राप्त करते हैं।[161]

यहाँ अनुष्टुप् छन्द के द्वारा विषय की गम्भीरता प्रकाशित हो रही है।

लव चन्द्रकेतु से कहते हैं–ऋषिजन उन्मत्त और अहङ्कारी पुरुष की वाणी को राक्षसी वाणी कहते हैं। वह सभी विरोधों का कारण है और वही लोक के तिरस्कार का कारण है।[162]

यहाँ चन्द्रकेतु के इस अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग से उपदेशात्मक कथन की व्यञ्जना हो रही है।

उपजाति–शृङ्गारादि के आलम्बनस्वरूप उदार नायिका के उदाररूप का वर्णन तथा शृंगार के अंगभूत वसन्तादि का वर्णन उपजाति छन्द में करना चाहिये।[163] महाकवि भवभूति ने इस छन्द के द्वारा गम्भीर विषयों का विवेचन किया है।

महावीरचरित में सूत्रधार सीता और उर्मिला के साथ कुशध्वज के आगमन की सूचना उपजाति छन्द के द्वारा देता है।[164]

जटायु रावण को देखकर कहता है–चित्र मृग पर आकृष्ट होकर राम बड़ी दूर चले गये,, लक्ष्मण भी उधर ही जा रहे हैं, यह संन्यासी पर्णशाला में प्रविष्ट हो रहा है, अरे, यह तो रावण के रूप में प्रकट हो रहा है।[165]

मालतीमाधव में कामन्दकी मालती को लक्ष्य कर कहती है--अन्य पर वचनों से प्रस्तुत शाकुन्तल आदि इतिहास वचनों को सुनकर मेरी गोद में अपने अंगों को रखकर मालती चिन्ता से निश्चेष्ट हो जाती है।[166]

माधव कहता है--मुझे धिक्कार है, प्रमाद हुआ है। नवीन लोध्रपुष्पों में मालती की कान्ति, मृगों में निरीक्षण, गजों में गति और लताओं में नम्रता इस प्रकार से वन में मथन कर मेरी प्रिया (मालती) को स्पष्टरूप से विभक्त कर दिया है।[167]

यहाँ उपजाति छन्द के द्वारा शृंगार की व्यञ्जना हो रही है।

कञ्चुकी कौशल्या से कहता है--पाँच सन्तानों के रहने पर भी उन राजा दशरथ को रामचन्द्र विशेष प्रिय थे, उसी प्रकार उनके चार बहुओं के रहने पर भी सीता ही पुत्री की तरह प्रिय थीं और कोई वैसी प्रिय नहीं थी।[168]

यहाँ उपजाति छन्द के द्वारा वर्ण्यविषय की गम्भीरता प्रकट हो रही है।

रथोद्धता–भव्य चन्द्रोदयादि उद्दीपन विभावों का वर्णन रथोद्धता छन्द में करना चाहिए।[169] महाकवि भवभूति ने उक्त विषय के अतिरिक्त खेदादि की व्यञ्जना में भी रथोद्धता का प्रयोग किया है।

राम सीता को लक्ष्य कर कहते हैं–भय और परिश्रम के कारण पसीने की बूँदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघलने वाली चन्द्रकान्त-मणियों की माला की तरह विलास वाले और मुझे जीवित करते हुए की तरह अपने बाहु को मेरे गले में डाल दो।[170]

कष्ट का अनुभव करता हुआ मकरन्द कहता है–बन्धुसमूह के चित्त में कौमुदीमहोत्सव, मालती के नेत्रों में सुन्दर चन्द्रमा, मकरन्द के आनन्दजनक और मनुष्यलोक के तिलकस्वरूप ये माधव आज लय को प्राप्त हो रहे हैं।[171]

वसन्ततिलका–प्रायः वीर और रौद्ररस के अभिव्यञ्जन में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग होता है। महाकवि भवभूति ने इसका उक्त स्थलों के अतिरिक्त भी प्रयोग किया है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में इसका अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है।

महावीरचरित में परशुराम राम से कहते हैं--अस्त्रप्रयोग की होड में सैन्य-गण समेत स्कन्द को मैंने जीत लिया, इससे गुणग्राही गुरुदेव भगवान् शिव ने हमारा आलिंगन कर यह कुठार उपहार में दे दिया।[172]

मालतीमाधव में कवि ने इस छन्द का प्रचुर प्रयोग किया है। माधव के चित्त का कवि इस प्रकार चित्रण करता है–चन्द्रतुल्य सुन्दर मुख वाली उस मालती का अधिक समय तक चिन्तन करके मेरा चित्त अनवसर में ही मन्द विवेकवाला होकर लज्जा को जीतकर, विनय को हटाकर और धैर्य को उन्मूलित कर बड़े कष्ट से लौटा है।[173]

सीता के सुवचनों की प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं--हे कमलनयने सीते ! तुम्हारे ये मधुर वचन म्लान जीवनकुसुम को विकसित कर देने वाले, संतृप्तकारक, सभी इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले, कानों के लिये अमृतस्वरूप तथा हृदय के लिये पौष्टिक रसायन के सदृश हैं।[174]

कुश की वीरचेष्टाओं का प्रतिपादन करते हुये राम कहते हैं--इस बालक (कुश) की दृष्टि तीनों लोकों के बल के उत्कर्ष को तृण के तुल्य तुच्छ कर रही है। धीर और उद्धत गति पृथ्वी को झुका सी रही है। बाल्यावस्था में

भी पर्वत की तरह गौरव को धारण करता हुआ यह क्या वीररस है ? अथवा साक्षात् अभिमान ही आ रहा है ?[175]

वंशस्थ–वंशस्थ छन्द का प्रयोग कवि ने न्यूनमात्रा में किया है। मालती-माधव में कामन्दकी के द्वारा प्रस्तुत वंशस्थ छन्द शोक की व्यञ्जना कर रहा है–हा चन्द्रमुखि ! सम्प्रति मैं निराश हो गयी हूँ। अकारण ही मन्दहास्य-युक्त और मनोहर मुख वाले, चूडा और ललाट में विन्यस्त श्वेत सर्षप वाले, माता का दूध पीने वाले तथा क्रोड में शयन करने वाले तुम्हारे पुत्र को भाग्यहीन होने से मैं नहीं देख पायी।[176]

अपरवक्त्र, मञ्जुभाषिणी एवं पुष्पिताग्रा

इन छन्दों का प्रयोग प्रायः शृंगारप्रधान विषयों में होता है। यही कारण है कि महावीरचरित में इन छन्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। (पुष्पिताग्रा का ३ बार प्रयोग हुआ है तथा मञ्जुभाषिणी एवम् अपरवक्त्र का प्रयोग तो हुआ ही नहीं है)। मञ्जुभाषिणी छन्द के द्वारा कवि माधव की अनुरक्ति को अभिव्यक्त कर रहा है–माधव कहता है कि सम्प्रति प्रियतमा के प्रथम वाक्य श्रवण से रोमाञ्चित हो जाने के कारण मैं मेघपंक्ति नूतन जल के सेवन के समय मुकुल धारण करने वाले कदम्ब वृक्ष का सादृश्य धारण कर रहा हूँ।[177]

पुष्पिताग्रा छन्द वात्सल्य एवं करुण की मार्मिक एवं हृदयविदारक व्यं-जना को प्रस्तुत कर रहा है–महाराज जनक सुता सीता को लक्ष्य कर कहते हैं कि अकारण ही हँसने और रोने वाले कोमल कलिकाओं के सदृश विरल दाँतों से सुशोभित तथा तुतलाते हुये बिना किसी क्रम के मनोहर वचन बोलने वाले शैशवावस्था के तुम्हारे कमलतुल्य मुख का स्मरण कर रहा हूँ।[178]

हरिणी–औदार्य, रुचि, और औचित्य आदि की व्यञ्जना में हरिणी छंद श्रेष्ठ है।[179]

मुग्धा सीता का राम इस प्रकार चित्रण करते हैं–यह सीता सूक्ष्म और विरल कपोलप्रान्तों तक विखरे हुये सुन्दर केशों से और पुष्पाभ दाँतों से सुन्दर दर्शन वाले मुख को धारण करती हुयी, अल्पवय वाली अत्यन्त सुन्दर चन्द्रिका के सदृश और स्वाभाविक विलासों से युक्त मधुर अंगों के द्वारा मुझे तथा माताओं को कौतूहल में डाल देती थी।[180]

इसी प्रकार राम भगवती भागीरथी का वर्णन इसी छन्द के द्वारा करते हैं–हे भगवति गङ्गे ! भगीरथ ने शरीर के कष्ट की चिन्ता न करते हुए तपस्या करके सगर के यज्ञ में अश्वमेधीय अश्व के अन्वेषण में संलग्न पृथ्वी

को खोदने वाले क्रोध से कपिल मुनि के तेज से दग्ध पिता (दिलीप) के पितामहों (सगरपुत्रों) को तुम्हारे जल के स्पर्श से बहुत दिनों के पश्चात् उद्धार किया था।[181]

यहाँ राम की सुरुचि एवम् औदार्य तथा औचित्य आदि की व्यञ्जना हो रही है।

मालिनी–मालिनी छन्द का प्रयोग सम्भोग शृंगार में उचित बतलाया गया है। महाकवि भवभूति ने मालिनी के द्वारा मनोरम व्यञ्जनायें अंकित की हैं। विप्रलम्भ तथा करुण में भी मालिनी का प्रयोग हुआ है।

माधव मालती के विषय में बतलाता है कि उसका हस्तपादादि अवयव परिमर्दित मृणाली के सदृश म्लान है। भोजन आदि क्रियाओं में परिजनों की प्रार्थनाओं से कष्टपूर्वक उसकी प्रवृत्ति है और तत्क्षण काटे गये करिदन्त खण्ड के सदृश उसका सुन्दर कपोल कलंक से रहित चन्द्रमा की शोभा को धारण करता है।[182]

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में तीन पद्यों में मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है। वे पद्य इस प्रकार हैं–

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा–
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता॥[183]

स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि॥[184]

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगा–
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भैर्व्यापृतैकैकदोष्णो–
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥[185]

महावीरचरित में कवि मालिनी छन्द के द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य का अभिव्यञ्जन कर रहा है–कदम्ब विकासोन्मुख हो रहे हैं, मधुर स्वर वाले नीलकण्ठ नाच रहे हैं, विकसित तथा प्रौढ तमाल वृक्ष की तरह श्यामवर्ण नवीन मेघपर्वत की चोटी पर आश्रयण कर रहा है।[186]

द्रुतविलम्बित छन्द–विषय के गाम्भीर्य की व्यञ्जना के लिए महाकवि भवभूति ने द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग किया है। मालतीमाधव में माधव कहता है–शास्त्र में प्रतिष्ठा, स्वाभाविक ज्ञान, प्रगल्भता, गुणों के अभ्यास से सम्पन्न वाणी, कार्य के उचित समय का अनुसरण और प्रतिभा की नवीनता–ये गुण कार्यों में मनोरथ को पूर्ण करने वाले हैं।[187]

उत्तररामचरित में राम को उपालम्भ देती हुयी वासन्ती इस प्रकार कहती है–अयि निष्ठुर ! तुम्हें यश प्रिय है परन्तु इससे अधिक भयंकर अपकीर्तिकर कार्य क्या है ? मृगनयनी सीता का वन में क्या हुआ ? हे नाथ ! कहिये, आप क्या विचार करते हैं ? हाय, कष्ट है।[188]

शिखरिणी–महाकवि भवभूति की शिखरिणी लोकप्रख्यात है। प्राचीन समीक्षकों ने उनके शिखरिणी छन्द की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[189] करुण, वीर और श्रृंगार के अभिव्यञ्जन में शिखरिणी अनुपमेय है। अतएव महाकवि भवभूति ने इन रसों की व्यञ्जना के लिए शिखरिणी का प्रयोग किया है। महावीरचरित में क्रुद्ध परशुराम कहते हैं–जो कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय हमारे तेज को न सह सकने के कारण दर्प से तपस्या अथवा शस्त्र को व्यर्थ में व्यय करना चाह रहे हों, करें, परन्तु मैं परशुराम संसार को राम तथा दशरथ से रहित करके भी तृप्त न होकर उनके वंशधरों को भी समाप्त करूँगा।[190]

मालतीमाधव में कन्दर्पव्याधि से पीड़ित मालती इस प्रकार कहती है कि असह्य और प्रमथनशील मनोरोग विष के सदृश अविरत व्याप्त हो रहा है, धूमरहित कम्पित अग्नि के सदृश जल रहा है और गुरुतर ज्वर के सदृश प्रत्येक अंग को पीड़ित कर रहा है। मेरी रक्षा करने के लिये न पिता, न माता और न आप ही समर्थ हैं।[191]

उत्तररामचरित में प्रियतमा सीता के स्पर्श से आनन्द की अनुभूति करते हुए राम कहते हैं--प्रिये ! यह क्या है ? तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श में इन्द्रियसमूह को मूढ़ करने वाला विकार मेरे ज्ञान को कभी तिरोहित करता है और कभी प्रकाशित करता है। यह विकार सुख है अथवा दुःख है मूर्च्छा है अथवा निद्रा है ? विष का प्रसरण है अथवा मादक द्रव्य के सेवन से उत्पन्न मद है ? यह निश्चय नहीं किया जा सकता।[192]

सीतावियोग से व्यथित राम के खिन्नचित्त का वर्णन करते हुये लक्ष्मण कहते हैं–इसके पश्चात् पापी राक्षसों ने स्वर्णनिर्मित मृग की कपटविधि से ऐसा किया जो कि प्रतिकार किये जाने पर भी अभी तक दुःख दे रहा है। निर्जन जनस्थान में विकलकरण वाले आर्य के चरित्रों से पत्थर भी विलाप करता है और वज्र का भी हृदय विदीर्ण होता है।[193]

शार्दूलविक्रीडित–वीर रस की व्यञ्जना और गहन विषयों के वर्णन में कवि ने प्रायः शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है। महावीरचरित में परशुराम के शौर्य आदि गुणों पर प्रकाश डालते हुए राम कहते हैं कि जमदग्नि आपके जन्मदाता हैं, महादेव गुरु हैं, आपके पराक्रम को वाणी से नहीं कहा जा सकता। सप्तसमुद्रवेष्टित इस पृथ्वी का निर्व्याज दान आपका त्याग है। क्षात्र और ब्रह्मतेज के निधान ! आपका सब कुछ लोकोत्तर ही है।[194]

मालतीमाधव में श्मशान के समीप बहने वाली नदी का कवि इस प्रकार चित्रण कर रहा है–कुञ्जकुटीर में अव्यक्त शब्द करने वाली उलूकपंक्ति के घूत शब्द से सञ्चलित और शब्द करने वाले श्रृगालों के घात शब्द के प्रसारण से प्रपूरित तट के अग्रभाग से भयंकर तटों से उपलक्षित अन्दर फेंके गये शव मस्तकों के कपालों की अस्थियों में प्लवन करने वाले अतएव अवरोधक तटभेदक प्रवाह के निकलने से भयंकर घर्घर शब्द वाली नदी श्मशान के प्रान्तभाग में बह रही है।[195]

उत्तररामचरित में कठोर दिवस पर प्रकाश डालते हुये महाकवि भवभूति इस प्रकार लिखते हैं–किनारे पर छाया में चञ्चु से आघात करने वाले कौआ आदि के मुख से जिन वृक्षों के कीड़े और छाल निकाले गये हैं और जहाँ पर धूप से ग्लानियुक्त कबूतर और मुर्गों का झुण्ड शब्द कर रहा है, ऐसे चिड़ियों के घोंसले वाले वृक्ष, हाथियों के खुजली वाले गालों की रगड़ के कम्प से गिरने वाले और धूप के कारण शिथिल वृन्तों से युक्त पुष्पों से गोदावरी की पूजा करते हैं।[196]

लव राम पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि वे वृद्ध रामचन्द्र आलोचनीय चरित्र वाले नहीं ! सुन्द की स्त्री ताड़का को मारने में भी अप्रतिहत यश वाले वो लोक में श्रेष्ठ ही हैं। खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे अथवा वाली के मारने में जो निपुणता की थी, उसमें भी लोग जानकार हैं।[197]

मन्दाक्रान्ता–वर्षा प्रवास और विपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द उपयुक्त होता है।[198] महाकवि भवभुति ने उक्त विषयों के अतिरिक्त भी मन्दाक्रान्ता का प्रयोग किया है। महावीरचरित में दशरथ परशुराम से कहते हैं कि दुर्दान्तों का दमन क्षत्रियों के ऊपर अवलम्बित होता है। तुम दुर्दान्त हो इसलिए हम क्षत्रिय तुम्हारे दमन के अधिकारी हैं, अतः शीघ्र शांत हो जाओ, नहीं तो अभी दमन किया जायेगा। कहाँ शान्ति परायण ब्राह्मण और कहाँ क्षत्रधारणीय शस्त्र ?[199]

माधव मालती को सम्बोधित करता हुआ कहता है–हे सुतनु ! ये

कबरीस्थित जलबिन्दु जब तक गिरते हैं, जब तक कुचकुड्मलों का मध्यभाग आर्द्रभाग का परित्याग नहीं करता है, जब तक तुम्हारी शरीरयष्टि गाढ और सूक्ष्म रोमाञ्चों से युक्त है, तब तक गाढ़ आलिंगन को एक बार भी दे दो, प्रसन्न हो जाओ।[200]

दण्डकारण्य के भूभागों का वर्णन करते हुए राम इस प्रकार कहते हैं–कहीं स्निग्ध और श्यामवर्ण वाले दूसरी ओर भयानक विस्तीर्णता से रूक्ष, स्थान-स्थान पर झरनों के कलकल शब्दों से शब्दायमान दिशाओं से युक्त, तीर्थ, आश्रम, पर्वत, सरित्, गड्ढ़े और कान्तार मार्ग से मिश्रित तथा परिचित भूमि वाले ये दण्डकारण्य के भाग दिखाई दे रहे हैं।[201] अश्व के स्वाभाविक रूप का चित्रण करता हुआ कवि इस प्रकार लिखता है कि वह शरीर के पीछे विशाल पूँछ धारण करता है और उसे निरन्तर हिलाता रहता है। उसकी गर्दन लम्बी होती है। उसके चार ही खुर होते हैं। वह घास खाता है और आम के फलों के बराबर लीद के टुकड़ों को छोड़ता है। अधिक कहने से क्या? वह पुनः दूर जा रहा है। आओ, आओ, हम जाते हैं।[202]

स्रग्धरा–वीर, बीभत्स एवं भयानक रसों की अभिव्यञ्जना के लिये कवि ने स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है। महावीरचरित में क्रुद्ध परशुराम कहते हैं कि कैलास पर्वत को उठाने में समर्थ और त्रिलोक विजय में निष्णात बाहुधारी रावण के रणमद को सहसा ही दूर कर देने वाला दुर्धर्ष कार्तवीर्य जिसके क्रोध करने पर कुठारप्रहार से महान् स्कन्ध, गल, बाहुदण्ड आदि के कट जाने पर कटे-छटे वृक्ष के सदृश कर दिया गया ···वे ही परशुराम रोषवश राम को पूछते हुये आ रहे हैं।[203]

राम और लक्ष्मण के शौर्यसंरम्भ का वर्णन करता हुआ वासव कहता है कि इन दोनों राघवों ने अपने बाणों से रावण और मेघनाद के शिरों को आच्छादित कर काट दिया है और वे पुनः अनन्त होकर प्रकट हो रहे हैं। यह देखकर भी अचिन्त्य प्रभाव के कारण न तो इनका धैर्य निवृत्त हो रहा है और न ही इनके बाण शिरश्छेदन व्यापार से निवृत्त हो रहे हैं।[204]

मालतीमाधव में श्मशान के बीभत्स विषय का वर्णन करता हुआ माधव कहता है कि स्नायु, अन्त्र, और नेत्रों को ग्रहण कर, दाँतों को दिखाकर कोई द्ररिद्रपिशाच पहले शव के चमड़े को काट-काट कर तदनन्तर शरीर की बड़ी ऊँचाई से प्रचुर, उत्कट दुर्गन्ध वाले कन्धे, कटिस्थ मांसपिण्ड, पीठ आदि विशाल अवयवों में सुलभ मांसों को खाकर अपनी गोद में अवशिष्ट शव के शरीर से अस्थि में विद्यमान, निम्नोन्नत तथा विषमस्थान में लगे हुए मांस को भी धैर्यपूर्वक खा रहा है।[205]

(घ) भाषागत व्यञ्जकता

भाषाज्योति के द्वारा ही सहृदय कवि अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से अनुप्राणित भावों को लोक के समक्ष प्रस्तुत करता है। अतः रसव्यञ्जना में भाषा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान ठहरता है। भावुक कवि भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग कर नाट्यशिल्प को पूर्ण प्रभावी एवं चारुतम रूप में चित्रित करता है। ध्वनिवादी आचार्यों का अभिमत है कि शब्दों से गुण व्यंग्य होते हैं और गुणों से रस। माधुर्य, ओजस् और प्रसाद के व्यञ्जक शब्द होते हैं। इस प्रकार व्यंग्य-परम्परा के अनुसार गुण भी व्यंग्य तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। इन माधुर्यादि के व्यञ्जक विशिष्ट वर्ण होते हैं और उस विशिष्ट वर्णरचना को रीति कहते हैं।

महाकवि भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह तो उनकी वशवर्तिनी है।[206] अतः वे वर्ण्यविषय के अनुसार उसे यथावसर कहीं प्रसाद-गुणोपेतवैदर्भी रीति के रूप में, तो कहीं ओजोगुणोपेत गौडीरीति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहीं-कहीं मृदुला लाटी तो कहीं पाञ्चाली का प्रयोग करते हैं। उनके नाटकों में विषयानुरूप कहीं-कहीं माधुर्यव्यञ्जक कोमल वर्णों से अलंकृत ललित भाषा दिखलायी देती है तो कहीं-कहीं कठोरतापादक परुष वर्णों से संयुक्त क्लिष्ट भाषा दृष्टिगोचर होती है। वे शृंगार एवं करुण रस की व्यञ्जना में कोमलकान्त आह्लादमयी पदावली का प्रयोग करते हैं तथा वीर, भयानक एवं बीभत्स रसों की व्यञ्जना के लिये गौडीरीति के आडम्बर से युक्त पदों का प्रयोग करते हैं। यहाँ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं—

उत्तररामचरित में कोमलकान्तपदावली से विभूषित अधोविन्यस्त रचना का अवलोकन करें, जिसमें राम कानों को रस से आप्यायित कर देने वाली सुन्दरी सीता की मधुर वाणी की प्रशंसा कर रहे हैं—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥[207]

वियोगवेदना से व्यथित करुणमूर्ति जानकी की प्राणवती मूर्ति का सुन्दर चित्राङ्कन कवि स्वाभाविक रूप में इस प्रकार कर रहा है—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥[208]

माधव के द्वारा लिखित पत्र उसके हृदय के मार्मिक भावों की व्यञ्जना कर रहा है–

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥[209]

माधव के अनुराग में पूर्णरूप से निमग्न मालती के हृदय को प्रस्तुत करता हुआ कवि गम्भीर भाव की व्यञ्जना कर रहा है–

मनोरोगस्तीव्रो विषमिव विसर्पत्यविरतं
प्रमाथी निर्धूमो ज्वलति विधुतः पावक इव।
हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानित इतो
न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती ॥[210]

उत्कण्ठित रावण सीता के स्वाभाविक सौन्दर्य को अत्यन्त कुशलता के साथ अभिव्यक्त कर रहा है–

मुखं यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने
किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरङ्गभङ्गी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसंयताः कुन्तलाः
किमम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरियं किं श्रिया ॥[211]

माल्यवान् के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं निगूढ वेदना को व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

यो वालिनं हन्ति हता वयं च तेन ध्रुवं तत्र तु सर्वनाशे।
एकः स जीव्यात्कुलतन्तुरस्मै रामः श्रियं धर्ममयो ददातु ॥[212]

स्नेह के स्वरूप की मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत करता हुआ कवि इस प्रकार कहता है–

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु–
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥[213]

करुण रस के चित्रण में कवि ने सुन्दर शब्द विन्यास के द्वारा काव्यनैपुण्य दिखलाया है। मार्मिक दुःख की अनुभूति करते हुये राम कहते हैं–

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ।।[214]

वासन्ती के उपालम्भ में कवि ने मार्मिक व्यञ्जना उपन्यस्त की हैं—

अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम् ?
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः ?
कथय नाथ ! कथं बत ! मन्यसे ?[215]

इस श्लोक में प्रयुक्त कठोर हरिणीदृशः नाथ कथं मन्यसे बत ? ये शब्द गम्भीर भावों को अभिव्यक्त कर रहे हैं ।

महाकवि भवभूति ने वर्ण्यविषय के अनुसार यथावसर गौडी रीति तथा ओजोगुण का भी प्रयोग किया है । इस प्रकार की भाषा वीर, भयानक एवं रौद्र रसों के अभिव्यञ्जन में प्रयुक्त हुयी है । कवि राक्षसी ताटका का वर्णन इस प्रकार कर रहा है—

अन्त्रप्रोतबृहत्कपालनलकक्रूरक्वणत्कङ्कण—
प्रायप्रेङ्खितभूरिभूषणरवैराघोषयन्त्यम्बरम् ।
पीतोच्छर्दितरक्तकर्दमघनप्राग्भारघोरोल्लल—
द्व्यालोलस्तनभारभैरववपुर्दर्पोद्धतं धावति ।।[216]

चित्ररथ के द्वारा चित्रित युद्धाङ्गण का अवलोकन निम्नलिखित श्लोक में करें—

वीराणां रुण्डतुण्डप्रविघटनपटुस्फारदोर्दण्डखण्ड—
व्यापारक्षिप्यमाणप्रतिभटविकटाटोपवर्मप्ररूढः ।
कूटः कोऽप्येष युद्धाजिरभुवि जरठश्चित्रकूटानुकारी
लीयन्ते यत्र शत्रुप्रपतनविवशाः कोटिशः शूरकीटाः ।।[217]

बीभत्स रस की व्यञ्जना में कवि ने तदनुरूप भाषा का प्रयोग किया है—

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा—
न्यंसस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।
आत्तस्नाय्वान्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्काकरङ्का—
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ।।[218]

कवि देवि चामुण्डा की स्तुति में उनके स्वरूप के अनुसार क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करता है–

प्रचलितकरिकृत्तिपर्यन्तचञ्चन्नखाघातभिन्नेन्दुनिष्यन्दमानामृत–
श्च्योतजीवत्कपालावलीमुक्तचण्डाट्टहासत्रसद्भूरिभूतप्रवृत्तस्तुतिः ।
श्वसदसितभुजंगभोगांगदग्रन्थिनिष्पीडनोत्फुल्लफुल्लत्फणापीठनि–
र्यद्विषज्योतिरुज्जृम्भणोड्डामरव्यस्तविस्तारिदोः खण्डपर्यासितक्ष्माधरम् ।।
ज्वलनदलनपिशंगनेत्रच्छटाभारभीमोत्तमांगभ्रमिप्रस्तुतालातचक्र–
क्रियास्यूतदिग्भागमुत्तुंगखट्वांगश्रृंगध्वजोद्धूतिविक्षिप्ततारागणम् ।
प्रमुदितकटपूतनोत्तालवेतालतालस्फुरत्कर्णसंभ्रान्तगौरीघना–
श्लेषहृष्यन्मनस्त्र्यम्बकानन्दितवस्ताण्डवं देवि भूयादरिष्ट्यैहृष्ट्यै च नः ।।[219]

गोदावरी नदी की कलकल छलछल ध्वनि भाषा को भी प्रतिनदित कर रही है–

एते ते कुहरेषु गद्गदनद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः ।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोकोलाहलै–
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः ।।[220]

लव और चन्द्रकेतु के अस्त्रशस्त्रों की ध्वनि भाषा को प्रतिध्वनित कर देती है–

झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकं धनु–
र्ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम् ।
वितत्य किरतोः शरानविरतं पुनः शूरयो–
र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम् ।।[221]

राम की मार्मिक विरहदशा का चित्रण करते हुए कवि इस प्रकार लिखता है–

हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ?।।[222]

प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त भाषा राम की करुणपूर्ण अन्तर्दशा अभिव्यञ्जित कर रही है ।

वासन्ती की राम के प्रति आक्षेपपूर्ण उक्ति देखें–

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥[223]

अधीर एवम् अवसन्न राम को जब वासन्ती धैर्य के लिये कहती है तो राम कहते हैं—क्या कह रही हो धैर्य धारण करें ?

देव्याः शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥[224]

यहाँ राम की निस्सीम वेदना, करुणा एवं दीनता अभिव्यञ्जित हो रही है।

वीररस की प्रधानता के कारण महावीरचरित में ओजोगुण का, शृंगार रस की प्रधानता के कारण मालतीमाधव में माधुर्य गुण का और करुणरस की प्रधानता के कारण उत्तररामचरित में प्रसाद गुण का प्राधान्य है। महाकवि भवभूति ने रसव्यञ्जना की दृष्टि से उपयुक्त गुण और रीति का प्रयोग किया है। ओजोगुण युक्त गौडीरीति में रचित अधोविन्यस्त पद्य का अवलोकन करें—

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभंगोद्यत—
ष्टङ्कारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः।
द्राक्पर्यस्तकपालसम्पुटमितब्रह्माण्डभाण्डोदर—
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति ॥[225]

माधुर्यगुणोपेत लाटीरीति से सुशोभित निम्नलिखित श्लोक देखें—

स्खलयति वचनं ते संश्रयत्यंगभंगं
जनयति मुखचन्द्रोद्भासिनः स्वेदविन्दून्।
मुकुलयति च नेत्रे सर्वथा सुभ्रु ! खेद—
स्त्वयि विलसति तुल्यं वल्लभालोकनेन ॥[226]

इसी प्रकार उत्तररामचरित के एक हृद्य पद्य का अवलोकन करें—

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा—
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥[227]

प्रसादगुणोपेत वैदर्भीरीति से अलंकृत अधोविन्यस्त श्लोक का अवलोकन करें—

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ।
शिशुत्वं वा स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ।।[228]

महाकवि भवभूति की भाषा सरस, मञ्जुल, प्राञ्जल, परिष्कृत एवं स्निग्ध है। उनकी भाषा किस प्रकार अन्तःकरण को रससिक्त कर देती है? इसका निदर्शन निम्नलिखित श्लोक है–

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक–
प्रभवमवसृजन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा ।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ।।[229]

मुहावरों के सफल प्रयोग के द्वारा उनकी भाषा में प्रौढ़ता आ गयी है–

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।[230]
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।[231]
अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते ।।[232]
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ।।[233]
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते ।।[234]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति ने मानव अनुभूतियों का अत्यन्त स्वाभाविकता, गम्भीरता एवं व्यापकता के साथ विशद चित्रण किया है, जिसके चित्रण में उनकी शक्तिमती समृद्ध भाषा ही कारण रही है। उनकी अनुभूतियों और भावनाओं के अभिव्यञ्जन में भाषा सर्वत्र अप्रतिहत रही है। उन्होंने अपने नाटकों में वर्ण संघटन, पद संघटन, वाक्य संघटन और लोकोक्तियों आदि के चयन में अपनी काव्य शक्ति का प्रयोग किया है। यही कारण है कि कवि की भाषा प्रतिपाद्य विषय को जितना व्यक्त कर रही है उससे कहीं अधिक प्रतिपाद्य की व्यञ्जना में सक्षम हो रही है।

(घ) देशकालगतव्यञ्जकता

मानवजाति का देश, काल तथा वातावरण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसके निर्माण एवं विकास में देशकालादि का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। देश-कालादि के अनुसार ही उसका चरित्र निर्मित होता है तथा वह विभिन्न

क्रियाकलापों में प्रवृत्त होता है। रूपक में मानवजाति की मार्मिक अनुभूतियों एवं उससे सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं का निरूपण होता है, अतः रूपकों की घटनायें तथा पात्रों की अनुभूतियाँ देशकालादि से अवश्य प्रभावित होती हैं। इन देश, काल तथा वातावरण का ध्वनिसंयोजन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। यहाँ महाकवि भवभूति द्वारा प्रतिपादित कतिपय देशकालादि की मार्मिक व्यञ्जनाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है।

महाकवि भवभूति अपने तीनों नाटकों का अभिनय भगवान् कालप्रियनाथ के यात्रोत्सव प्रसंग में प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनकी भगवान् शंकर के प्रति भक्ति अभिव्यक्त होती है। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ होने वाला है जिसमें यज्ञ की रक्षा के निमित्त रामलक्ष्मण को बुला लिया गया है। सीता और उर्मिला के साथ राजा कुशध्वज भी वहाँ पहुँचते हैं। इस आश्रम में दोनों राजकुल मिलकर एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। कवि रामलक्ष्मण से सीता और उर्मिला को मिलाकर एक दूसरे के हृदय में प्रेमभाव अंकुरित कर देता है जो कि आगे चलकर परिणय के रूप को प्राप्त कर लेता है। आश्रम में ही विश्वामित्र राम लक्ष्मण को दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं। इससे यह प्रकाशित होता है कि राम इन दिव्यास्त्रों से राक्षसों का विनाश करेंगे।

विवाह के पश्चात् राम कन्यान्तःपुर में विराजमान हैं। दशरथ आदि उनके अभिभावक मिथिलाधीश के यहाँ आतिथ्य प्राप्त कर रहे हैं। इसी समय कवि प्रचण्ड कोप वाले परशुराम को प्रस्तुत करता है। राम एक ओर सीता के प्रगाढ प्रेम से आकृष्ट होकर अन्तःपुर में रहने का विचार करते है और दूसरी ओर उनका हृदय पराक्रमी परशुराम से मिलने के लिये उत्कण्ठित होता है। वे क्षात्रधर्म के अनुसार कन्यान्तःपुर में रहने की अपेक्षा परशुराम से मिलना उचित समझते हैं और वैसा ही करते हैं। इससे उनका औदात्त्य, शौर्य एवं गाम्भीर्य ध्वनित होता है।

चतुर्थ अङ्क में माल्यवान् की योजना के अनुसार शूर्पणखा मन्थरा के रूप को धारण कर राम के यहाँ पहुँचती है और कैकेयी से महाराज दशरथ के द्वारा दिये गये दो वरदानों को लेने के लिये कहती है। उसकी योजना के अनुसार एक वर के द्वारा भरत को राज्य और दूसरे वर के द्वारा राम को चौदह वर्षों के लिये वनवास दिया जाता है। कवि ने यहाँ माल्यवान् की कूटनीति के द्वारा कैकेयी के चरित्र की रक्षा की है।

पञ्चम अङ्क के जटायु के आगमन का कवि इस प्रकार वर्णन कर रहा है– पंखों को समेटने और फैलाने के कारण दिशायें कभी दिखाई देती हैं और कभी लुप्त हो जाती हैं। मेघ चूर्ण-चूर्ण होकर पाले की स्थिति में पहुँच गया

है जिससे बिजली स्थायिनी बन गयी है। सामने आने वाली शिलायें चकनाचूर हो गयी हैं। इस प्रकार जटायु के पंख चल रहे हैं जिनसे उनका आना अनुमित हो रहा है।[235] इस प्रसंग से जटायु का अलौकिक उत्कर्ष ध्वनित होता है और यह भी ज्ञात होता है कि वह बलवान् राक्षसराज रावण से लोहा ले सकता है।

सीताहरण से खिन्न राम कहते हैं कि हा प्रिये सीते ! तुम कहाँ हो ? मधुर वाणी को सुनाओ। हमारे सदृश कलंकी के लिए वार्तासुख भी दुर्लभ ही है। रावण प्रशंसनीय है और मैं निन्दनीय हूँ क्योंकि उसने बढ़े हुए वैर का समुचित प्रतिकार किया है।[236]

सीताहरण के समय पर राम के द्वारा प्रस्तुत इस वाक्यविन्यास से उनकी मार्मिक अन्तर्व्यथा ध्वनित हो रही है।

राम को देखकर वाली कहते हैं कि हे राम ! आज मैं तुम्हें आनन्द, आश्चर्य और दुःख के साथ देख रहा हूँ। तुम्हें देखने से मेरे नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हैं। तुम्हारी सङ्गति के सुख को मैं नहीं प्राप्त कर पा रहा हूँ। परशुराम विजय से प्रख्यात अपने हाथों में धनुष ग्रहण करो।[237] यहाँ राम के दर्शन के समय वाली जिस सन्तोष और सुख का अनुभव करते हैं, उसे व्यक्त करते हैं, तथापि अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हो रहे हैं।

षष्ठ अङ्क में मन्दोदरी के द्वारा समझाये जाने पर भी मदोन्मत्त रावण राम और लक्ष्मण को तृणवत् मानता है और अपने दर्प से उन्मत्त होकर युद्ध में कुलसमेत विनाश को प्राप्त होता है।

सप्तम अंक में विभीषण राम से कहते हैं कि ये हिमालय के पवित्र शिखर हैं जिनके चरणों को सुरसिन्धु धो रही है और जो कर्पूरखण्ड की तरह स्वच्छ हैं और जहाँ पुरातन मूर्जवल्कल सुशोभित हो रहे हैं। यहाँ अध्यात्म विद्या के प्रेमी तत्त्वज्ञान से अज्ञान को दूर करने वाले ब्रह्मज्ञानियों के स्वभाव से सुन्दर तेज बिखर रहे हैं।[238] यहाँ विभीषण के इस कथन से हिमालय की नैसर्गिक दिव्यता प्रकट हो रही है।

मालतीमाधव प्रकरण में कामन्दकी की आज्ञा से अवलोकिता मालती और माधव में परस्पर अनुराग उत्पन्न करने के लिये माधव को मालती के भवन के समीपवर्ती मार्ग से सञ्चरण कराती है। उसका यह विश्वास है कि माधव की सौम्य और कमनीय आकृति को देखकर मालती उस पर अवश्य ही अनुरक्त हो जायेगी। यह स्वाभाविक भी है कि कोई सुन्दरी अपने अनुरूप सौम्य, उदात्त और कमनीय कुमार को देखकर उस पर अनुरक्त हो जाये। मालती माधव पर सामान्यरूप से अनुरक्त ही नहीं होती, अपितु

उसका वियोग उसके लिये असह्य हो उठता है। मदनोद्यान में कवि मालती और माधव का मिलन कराता है। अवलोकिता की योजना के अनुसार माधव मदनोद्यान में पहुँचता है। वह उद्यान में बकुलवृक्ष के नीचे बैठकर बकुल-प्रसूनों की माला बनाता है। उसी समय सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित हथिनी पर आरूढ़ होकर मालती वहाँ पहुँचती है। उस उद्यान में माधव भी मालती के अनुपमेय सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है और प्रथम दर्शन में अनुरक्त हो जाता है। मालती इस समय माधव के सौन्दर्यसुधा का पान कर स्वयं को सँभाल नहीं पाती और उसके स्तम्भ, स्वेद और रोमाञ्च आदि सात्त्विकभावों का आविर्भाव होने लगता है। मालती के चले जाने पर माधव वियोगवेदना का अनुभव करता है। मालती के द्वारा लिखे गये चित्र को लेकर माधव का अनुचर कलहंस वहाँ आता है जिसे देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है और अपने हस्तकौशल से मालती का चित्र भी अङ्कित कर देता है तथा एक श्लोक लिख देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह देशकाल मालती और माधव में प्रणय अंकुरित करने में अत्यधिक सहायता करते हैं। मालती और माधव का यह प्रणयांकुर शनैः शनैः विकसित होने लगता है। तृतीय अङ्क में माधव शिव-मन्दिर के समीप खड़े होकर पुष्पावचय करती हुयी मालती को देखता है और उस समय मन्द पवन पुष्प, भ्रमर आदि उद्दीपक पदार्थों के वर्णन से लवङ्गिका मालती को कामाविष्ट करती है। लवङ्गिका मालती के अञ्चल में माधव के चित्र और उसके द्वारा गुम्फित बकुलपुष्पों की माला भी दिखलाती है।

तृतीय अङ्क में अपने पिंजड़े को तोड़कर भयानक सिंह निकल पड़ता है। वह मदयन्तिका की ओर झपटता है। वीर युवक मकरन्द साहस के साथ अपनी तलवार लेकर सिंह से लड़ता है और मदयन्तिका के प्राणों की रक्षा करता है। सिंह के भीषण प्रहार से वह मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रसंग के द्वारा कवि मकरन्द के शौर्य और उत्साह को तो अभिव्यक्त करता ही है साथ ही मदयन्तिका भी उसके इस वीरकार्य से प्रभावित होती है और उसके प्रति अनुरक्त हो जाती है।

पञ्चम अङ्क में कपालकुण्डला और अघोरघण्ट देवी कराला के मन्दिर में मालती की बलि देना चाहते हैं। परन्तु इसी समय माधव वहाँ पहुँच जाता है और वह मालती की प्राणरक्षा करता है। इस योजना के द्वारा कवि मालती और माधव के प्रेम को और प्रगाढ़ कर देता है।

सप्तम अङ्क का वह प्रसंग अत्यन्त ही मनोरञ्जक है जिसमें मालतीरूप-

धारी मकरन्द का विवाह नन्दन के साथ होता है। मकरन्द नन्दन को प्रताडित भी करता है। वहीं कवि मदयन्तिका को प्रस्तुत करता है। मालती वेशधारी मकरन्द मदयन्तिका से प्रणयालाप करता है। अष्टम अंक में कवि राजपुरुषों के साथ माधव और मकरन्द के युद्ध को दिखलाता है जिसमें वे दोनों अलौकिक शौर्य का प्रदर्शन करते हैं। उनके शौर्य से प्रभावित राजा उनके विवाह के लिये स्वीकृति प्रदान करते हैं।

कपालकुण्डला मालती का अपहरण कर लेती है जिससे माधव विक्षिप्त हो जाता है। वह मालती के विषय में मेघ, विद्युत्, कोकिल आदि से प्रश्न करते हैं। इस प्रकार मालती को पुकारते हुए, उसका गुणकीर्तन करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। यहाँ कवि ने माधव के प्रगाढ प्रेम का चित्रण किया है। दशम अंक में अमात्य भूरिवसु अपनी कन्या के दुःखद समाचार को सुनकर अग्निप्रवेश के लिये समुद्यत हो जाते हैं, उस समय सौदामिनी उनकी पुत्री के शुभ समाचार को सुनाकर उनके प्राणों की रक्षा करती है।

उत्तररामचरित 'के प्रथम अङ्क में राम के राज्याभिषेक के पश्चात् आगन्तुकजन अपने-अपने देशों को प्रस्थान कर जाते हैं। पिता जनक के विदेह को चले जाने से सीता खिन्न होती है। उनकी परिसान्त्वना के लिए राम न्यायालय से अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। इस प्रसंग के द्वारा कवि राम के सीता प्रेम को प्रकाशित करता है।

लक्ष्मण के द्वारा प्रस्तुत चित्रदर्शन के प्रसंग से सीता परिश्रान्त हो जाती हैं। अतः राम उनसे कहते हैं कि अयि प्रिये ! वातायन के समीप सो जाओ। राम सीता के सान्निध्य और उनके अमृतोपम वचनों से परम आनन्द की अनुभूति करते हैं। प्रेमपूर्वक उन्हें उपधान के लिये अपनी बाहु को प्रस्तुत करते हैं और अपने वक्षःस्थल पर ही शयन करने देते हैं। उन्हें सीता की प्रत्येक वस्तु प्रियतर है और वियोग परम असह्य है। कवि इस प्रसंग को प्रस्तुत कर राम के भावी वियोग की असह्य वेदना की प्रस्तावना प्रस्तुत करता है।

द्वितीय अङ्क में राम दण्डकारण्य में पहुँचते हैं। जहाँ वे पूर्वपरिचित तीर्थ, आश्रम, पर्वत, सरित्, गर्त और कान्तार का अवलोकन करते हैं। उन दृश्यों को देखकर उन्हें सीता का स्मरण हो आता है और वे कहने लगते हैं कि सीता को वन प्रिय थे। अपने नेत्रों में आँसू भरकर वे कहते हैं–"आपके साथ पुष्परसों के गन्धों से युक्त वनों में मैं रहूँगी।" इस प्रकार सीता यहाँ प्रसन्न रहा करती थीं। उनका वैसा वह प्रेम था। जो मनुष्य जिसका प्रिय होता है वह कुछ न करता हुआ भी अपनी उपस्थिति के द्वारा होने वाले सुखों से उसके दुःखों का विनाश करता है अतएव वह उसका अनिर्वचनीय द्रव्य है। [३३०]

पञ्चवटी को देखकर राम की मार्मिक करुणा और अधिक बढ़ जाती है। वे कहते हैं कि इस समय तो तीव्र बहुत समय के पश्चात् वेदना की शीघ्रता को उत्पन्न करने वाला और सर्वत्र प्रसृत विषरस की तरह कहीं से अत्यन्त वेग से चले हुये बाणाग्र के टुकड़े की तरह उपव्रण वाले और हृदय के मर्मस्थल में स्फुटित फोड़े की तरह पुरातन शोक भी नवीन के सदृश होकर पुनः मुझे विकल कर रहा है।[240]

कवि ने करुणरस की व्यञ्जना समुचित देश एवं ठीक समय में की है। पञ्चवटी को छोड़ते हुये राम कहते हैं–खेद है कि छोड़ते हुये भी मुझको पञ्चवटी प्रेम से मानो हठात् खींच रही है। जिस पञ्चवटी में मैंने उन सीता के साथ अपने गृह की तरह उन दिनों को व्यतीत किया, निरन्तर जिस पंचवटीविषयक बड़ी-बड़ी कथाओं से हम अयोध्या में रहते थे। सम्प्रति प्रियतमा को नष्ट करने वाला अतएव अकेला पापी राम उस पञ्चवटी को कैसे देखे? अथवा उसका अनादर करके कैसे चला जाये?[241]

तृतीय अंक में तो करुणरस कवि का अभिलषित रस ठहरहता है। पंचवटी में राम के कृश शरीर और शोचनीय अवस्था को देखकर सीता मूर्च्छित हो जाती हैं। राम भी पुनः पुनः विलाप करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता के पाणिस्पर्श से राम चेतनता को प्राप्त करते है। इसी प्रसंग में कवि सीता के द्वारा परिपालित करिशावक का वर्णन करता है जो कि इस प्रसंग को और अधिक कारुणिक बना देता है। इसी समय वासन्ती सीता के द्वारा बढ़ाये गये मोरनी से युक्त मयूर को दिखलाती है और इसी प्रसंग में वासन्ती राम से निर्वासित सीता का वृत्तान्त पूछती है जिससे सीता का स्मरण कर राम अत्यधिक खिन्न होते हुये मूर्च्छित हो जाते हैं। तमसा के कहने से सीता अपने पाणिस्पर्श के द्वारा उन्हें पुनः चेतनता प्रदान करती हैं। अतिशय शोक के कारण राम पुनः पुनः विलाप करते हैं। यहाँ पञ्चवटी का शान्त स्थान सीता द्वारा परिपालित करिशावक एवं गिरिमयूर का प्रस्तुतीकरण वासन्ती के द्वारा पुनः पुनः सीताविषयक प्रश्न राम के शोक को और अधिक उद्दीप्त कर रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने उचित देश एवं ठीक समय में करुण रस की व्यञ्जना की है।

चतुर्थ अङ्क में महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में अरुन्धती एवं दशरथ की पत्नियों के सहित महर्षि वसिष्ठ पहुँचते हैं। राजा जनक भी उसी दिन वहाँ पहुँचते हैं जो कि सीता के लिये अत्यधिक शोक प्रकाशित करते हैं। वाल्मीकि के आश्रम में ये लोग ब्राह्मणवटुओं के साथ लव को देखते हैं। जनक के द्वारा लव के परिचय पूछे जाने पर महर्षि वाल्मीकि यह बतलाते हैं कि उपयुक्त

समय में उसका परिचय प्राप्त होगा । महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में समस्त गुरुजनों को एकत्रित करने में कवि का विशेष उद्देश्य है । यहीं आगे चलकर राम भी आते हैं और षष्ठ अङ्क के अन्त में सब मिल जाते हैं ।

षष्ठ अङ्क में कवि राम को उचित समय पर युद्धस्थल में प्रस्तुत करता है, जिनके आगमन से युद्ध स्थगित हो जाता है । लव राम को अभिवादन करता है और वे उसका आलिंगन करते हैं । इसी बीच क्रुद्ध कुश वहाँ आ पहुँचते हैं । लव राम के समक्ष उन्हें शान्त रहने के लिये कहते हैं । राम कुश और लव में सीता का सादृश्य देखने से उनके सीतापुत्र होने की सम्भावना करते हैं । प्रस्तुत प्रसंग समुचित देश काल में रक्खा गया है जो कि रसनिष्पत्ति में अत्यन्त सहायक है ।

सप्तम अङ्क के गर्भाङ्क में राम की उपस्थिति में सीता की करुण दशा का चित्रण किया है । सीता अपनी माता वसुन्धरा से अपने अङ्ग में लीन करने की याचना करती हैं जिस पर वसुन्धरा कहती हैं कि स्तन्यत्यागपर्यन्त तुम्हें दोनों पुत्रों की देखरेख करनी चाहिये । इसके पश्चात् तुम चाहे जैसा करना । इसके अनन्तर सीता गङ्गा और पृथ्वी के साथ प्रस्तुत होती हैं। सीता की लोकान्तरप्राप्ति की सम्भावना कर राम पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं। अरुन्धती की आज्ञा से सीता अपने पाणिस्पर्श से राम को चेतनता प्रदान करती है । उचित समय पर अरुन्धती सीता के पातिव्रत्य की प्रशंसा करते हुये लोकमत की जानकारी करती हैं । उस समय समस्त नागरिक और लोक-पाल सीता का अभिनन्दन करते हैं । उसी समय अरुन्धती की आज्ञा से राम सीता को स्वीकार कर लेते हैं । इसी बीच लवणासुर का वध करके शत्रुघ्न भी आ जाते हैं । इस प्रकार नाटक का सुखान्त पर्यावसान होता है । यहाँ समुचित देशकाल के द्वारा कवि ने मार्मिक एवं हृदय को द्रवित करने वाले भावों की स्वाभाविक व्यञ्जना प्रस्तुत की है ।

सन्दर्भ

१. महावीरचरित १।८,९ २. वही १।८
३. वही पृ. १२ ४. वही पृ. १३
५. वही १।१६, १७, १८, ६. वही १।१३
७. वही पृ. ३९ ८. वही पृ. ४०
९. वही २।२२ १०. वही पृ. ८६ ११. वही २।२७
१२. वही पृ. ८९ १३. वही १४. वही
१५. वही १६. वही ३।५ १७. वही ४।१

१८. वही ४।१ १९. वही ४।१ २०. वही पृ. १७४ से १७५
२१. वही ५।१८ २२. वही ५।१९ २३. वही ४।४७
२४. वही ५।१६ २५. वही ५।२२ २६. वही ४।७
२७. वही ६।१ २८. वही पृ. २४५ २९. वही ६।२२
३०. वही ६।४९ ३१. वही ६।२५ ३२. वही ६।१४, १५
३३. वही ६।२०, २१ ३४. वही पृ. २९४ ३५. वही ७।१
३६. वही ७।३ ३७. वही पृ. १०४ ३८. वही पृ. ३०५
३९. वही ७।८ ४०. वही पृ. ३१९ ४१. वही ७।२५, २६
४२. वही ७।३१-३२-३४ ४३. वही ७।३८ ४४. वही ७।४१
४५. वही पृ. १०८-११० ४६. वही ३।३५ ३६ ४७. वही ४।२७
४८. वही ५।१ ४९. वही ३।३७ ५०. वही ४।५०
५१. वही पृ. २९७-२९८ ५२. वही ६।९ ५३. वही ५।२२, २४
५४. वही ५।२८, ६१ ५५ वही १।५५ ५६. मा०मा० १।१८
५७. मालतीमाधव १।२४ ५८. वही २।९, १०, ११
५९. वही २।१३ ६०. वही ४।५
६१. वही ३।६-७ ६२. वही ४।१ से पूर्व
६३. वही ४।६ ६४. वही ४।१० ६५. वही ६।१४
६६. वही ६।१६ ६७. वही ६।१४ ६८. वही ६।१६
६९. वही ६।३ ७०. वही ५।२० ७१. वही ६।१२
७२. वही ६।६ ७३. वही ६।१३ ७४. वही ५।२९
७५. वही ८।८ ७६. वही ९।५२ ७७. वही ९।३८
७८. वही १०।२३ के पूर्व ७९. वही १०।२० ८०. वही १०।१७
८१. वही १०।१९ ८२. वही १०।२३ ८३. वही १०।२१, २२
८४. वही १०।२४ ८५. वही १०।२५ ८६. वही ८।२-४
८७. वही ४।२ ८८. वही ५।१० ८९. वही १।२४
९०. वही १।४३ ९१. वही ६।१८ ९२. वही २।२
९३. वही ३।१६ के पूर्व ९४. वही ५।२१ ९५. वही ५।७, ८, ९
९६. वही ४।९ ९७. वही ५।१० ९८. वही २।१
९९. वही ६।८ १००. उत्तररामचरित १।७
१०१. उत्तररामचरित १।११ १०२. वही १।४३ के पश्चात्
१०३. वही १।३५-३८ १०४. वही १।
१०५. वही १। १०६. वही
१०७. वही २।१० १०८. वही ३।१३

१०९. वही ३।२६, २७ ११०. वही ३।३२ १११. वही ३।४८
११२. वही ४।२२ ११३. वही ४।११ ११४. वही ५।३४
११५. वही ६।११ ११६. वही ६।१६ ११७. वही ६।१८
११८. वही ६।२३ ११९. वही १२०. वही
१२१. वही १२२. वही १२३. वही
१२४. वही ७।१६ १२५. वही १२६. वही ७।२०
१२७. वही १।४१ १२८. वही २।४ १२९. वही ३।२६
१३०. वही ५।२० १३१. वही १।१३ १३२. वही ६।१४
१३३. वही ६।२७ १३४. वही ७।५ १३५. वही १।४१
१३६. वही १।१२ १३७. वही १।११ १३८. वही ३।१०
१३९. वही ३।३७ १४०. वही ४।२१
१४१. वही ६।१८ १४२. वही ७।२०
१४३. महावीरचरित पृ. ११५–११६ १४४. महावीरचरित ५।५२
१४५. मालतीमाधव पृ. २९२–२९३ १४६. मालतीमाधव ५।३४
१४७. उत्तररामचरित पृ. ३८३–३८४ १४८. उत्तररामचरित ५।१८
१४९. वही पृ. ९१–९३ १५०. वही ३।२७
१५१. वही पृ. ३२ १५२. सुवृत्ततिलक ३।७
१५३. आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तारसंग्रहे ।
समोपदेशवृत्तान्ते सन्तः शंसन्त्यनुष्टुभम् ।। सुवृत्ततिलक ३।१७
१५४. महावीरचरित १।१
१५५. वही १।२–४ १५६. वही १।१६, १७, २०, २१ २२, २३
१५७. वही ३।१८ १५८. मालतीमाधव १।१४
१५९. वही ५।३३ १६०. उत्तररामचरित १।१२
१६१ वही १।१३ १६२. वही ५।२९
१६३. सुवृत्ततिलक ३।१७ १६४. महावीरचरित १।९
१६५. वही ५।१९ १६६. मालतीमाधव ३।३
१६७. वही ९।२७ १६८. उत्तररामचरित ४।१६
१६९. सुवृत्ततिलक ३।१८ १७०. उत्तररामचरित १।३४
१७१. मालतीमाधव ९।२१ १७२. महावीरचरित २।३४
१७३. मालतीमाधव १।१९ १७४. उत्तररामचरित १।३६
१७५. वही ६।१९ १७६. मालतीमाधव १०।६
१७७. वही ३।७ १७८. उत्तररामचरित ४।४
१७९. सुवृत्ततिलक ३।२० १८०. उत्तररामचरित १।२०

१८१. वही १।२३

१८२. मालतीमाधव १।२३

१८३. उत्तररामचरित १।२४

१८४. वही १।२६

१८५. वही १।२७

१८६. महावीरचरित ५।४२

१८७. मालतीमाधव ३।११

१८८. उत्तररामचरित ३।२७

१८९. भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे सा मयूरीव नृत्यति ॥ सुवृत्ततिलक ३।३३

१९०. महावीरचरित ३।२४

१९१. मालतीमाधव २।१

१९२. उत्तररामचरित १।३५

१९३. वही १।२८

१९४. महावीरचरित १।३६

१९५. मालतीमाधव ५।१९

१९६. उत्तररामचरित २।९

१९७. उत्तररामचरित ६।३४

१९८. सुवृत्ततिलक ३।२१

१९९. महावीरचरित ३।३४

२००. मालतीमाधव ८।२

२०१. उत्तररामचरित २।३४

२०२. उत्तररामचरित ४।२६

२०३. महावीरचरित २।१६

२०४. वही ६।६१

२०५. मालतीमाधव ५।१६

२०६. उत्तररामचरित १।२

२०७. वही १।३६

२०८. वही २।४

२०९. मालतीमाधव १।३७

२१०. वही २।१

२११. महावीरचरित ६।९

२१२. उत्तररामचरित ४।१०

२१३. वही ६।१२

२१४. वही ३।३१

२१५. वही ३।२७

२१६. वही १।३५

२१७. वही ६।३२

२१८. मालतीमाधव ५।१६

२१९. वही

२२०. उत्तररामचरित २।३०

२२१. वही ६।१

२२२. वही ३।३८

२२३. वही ३।२६

२२४. वही ३।३३

२२५. महावीरचरित १।५४

२२६. वही ३।८

२२७. उत्तररामचरित १।२४

२२८. वही ४।११

२२९. वही ३।२३

२३०. वही २।७

२३१. वही २।१९

२३२. वही ३।१७

२३३. वही ६।३२

२३४. वही ६।३८

२३५. महावीरचरित ५।१

२३६. वही ५।२८

२३७. वही ५।४९

२३८. वही ७।२७

२३९. उत्तररामचरित २।१८, १९

२४०. वही २।२६

२४१. वही २।२८

श्री राज्यपाल

सत्यमेव जयते

उत्तर प्रदेश



राजभवन

लखनऊ

मई ८, १९९०

नाटक का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व सर्वविदित है। इस सम्बन्ध में ऐसा विश्वास है कि सतयुग में आसुरी प्रवृत्तियों से जब मानवीय कष्टों में वृद्धि होने लगी तो उसके निवारण हेतु इन्द्र देवता के अनुरोध पर ब्रह्मा जी ने चारों वेदों से चार अतिविशिष्ट तत्त्व–कथोपकथन, संगीत, अभिनय और रस लेकर नाट्यवेद का उपदेश दिया। और फिर तभी नाट्य विधा का जन्म हुआ। भारत में तीसरी शताब्दी से पूर्व संस्कृत भाषा में नाटकों की संरचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

वास्तव में नाटक मानव-जाति को आनन्दित करने का एक सशक्त माध्यम है। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि नाटक में जन-मानस को आत्म-विभोर करने की पूरी शक्ति विद्यमान हो। प्राचीन संस्कृत नाटकों में, चाहे वे महाकवि भास, श्रीहर्ष के नाटक हों अथवा कालिदास की शकुन्तला या भवभूति के महावीर-चरित आदि नाटक–सभी में कथावस्तु, भाषा एवं शैली हृदय-स्पर्शी है और इन सबकी अपनी एक अलग ही साहित्यिक विशिष्टता और महत्ता है।

प्रसन्नता की बात है कि डा० शिवबालक द्विवेदी ने "महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनितत्त्व" समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखकर अत्यधिक सराहनीय कार्य किया है। मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य में काफी उपयोगी सिद्ध होगा तथा लोकप्रियता अर्जित करेगा।

—बी० सत्यनारायण रेड्डी